

डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'

'पायसपायी' उपन्यास का मैं दो बार अविकल पाठ कर गया। एक बार स्वतः, दूसरी बार महाराज जी के समक्ष। उपन्यास में डॉ. विजय वर्गीय की लेखनपटुता, विषय-प्रसंगों का समायोजन, घटनाओं की संगति, भाषा की सहजता देखते ही बनती है। स्वामी रामानन्द जैसे आकाशधर्मी महात्मा पर कथाकार की लेखनी कमाल कर गयी है। मुझे तो उपन्यास पढ़ते हुए लगा कि लेखक पर स्वामी जी की कृपा बरस रही है।

सम्पूर्ण उपन्यास लेखक के सिद्ध कथाशिल्पी होने का प्रमाण है। शिल्पविधान और वस्तुविधान दोनों मनोहारी हैं। कृति के माध्यम से राष्ट्रीयता एवं स्वामी रामानन्द के व्यक्तित्व की विराटता का संदेश पाठक के मानस पर छा जाता है। घटनाओं का नियोजन और समुचित प्रसंगों से अलंकरण रचना को विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं। अतीत के कथा सूत्रों से वर्तमान कथालोक का सृजन रचनाकार के लिए एक चुनौती होती है—उसे कथाकार ने सहर्ष स्वीकार किया है। हिन्दी कथा साहित्य में ऐसी कृतियाँ सम्प्रति नहीं दिखायी पड़ती हैं। विश्वास किया जाना चाहिए कि समस्त औपन्यासिक लक्षणों से समन्वित यह रचना यशस्विनी होगी।

—उदय प्रताप सिंह

पायसपायी

डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'
कोटा, राजस्थान

प्रकाशक
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास
पंचगंगा घाट, काशी (वाराणसी)

प्रकाशक
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास
पंचगंगा घाट, काशी (वाराणसी)

प्रथम संस्करण : 500 प्रतियाँ
संवत् 2064 वि., सन् 2008 ई.

द्वितीय संस्करण : 500 प्रतियाँ

मूल्य-150 रु. (एक सौ पचास रु. मात्र)

सौजन्य से :
गोकुल मोदी
299-ए, विनोबा विहार, मालवीय नगर, जयपुर

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बी-3, सुदर्शनपुरा इण्डस्ट्रीयल एरिया, 22 गोदाम, जयपुर
फोन : 0141-2210284

PAYASPAYEE
Novel by Daya Krishna Vijai Vargia 'Vijai'

Published by :
Jagadguru Ramanadacharya Smarak Seva Nyas
Panchganga Ghat (Varanasi)
Phone : 0542-2402730

॥ नमोऽस्तु रामाय ॥

अतीव सुखद है कि 'पायसपायी' के रूप में सात सौ नौ वर्षों के बाद रामावतार रामानंदाचार्य जी महाराज का वाङ्मय अवतार हुआ है। हिन्दी जगत् में आचार्य प्रवर के अवदान की चर्चा सतत् गूँजती रही है। इसके बाद भी ऐसी शिथिलता चिन्तनीय है। डॉ0 दयाकृष्ण विजय वर्गीय 'विजय' ने इस ऐतिहासिक प्रमाद को श्लाघनीय दक्षता से परिपूर्ण किया है जिसके लिए हिन्दी जगत् इनका सर्वदैव ऋणी रहेगा। ऐसी सेवा की प्राप्ति परम प्रभु श्रीराम तथा आचार्यवर के विशेष अनुग्रह के बिना सम्भव नहीं।

इसके पहले भी 'श्री रामानन्द दिग्विजय' के रूप में संस्कृत काव्यात्मक अवतार आचार्य प्रवर का हो चुका था, जिसके मूल उपासक जगद्गुरु रामानंदाचार्य पदप्रतिष्ठित स्वामी भगवदाचार्य जी महाराज थे, जो रामभक्त परम्परा ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय, हिन्दी वाङ्मय - समस्त राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आकाश के अनुपम प्रकाशक थे। 'श्रीआचार्य विजय' चम्पू काव्य के रूप में आचार्यश्री की जीवनगाथा प्रकट हो चुकी थी जिसके प्रणेता महामनीषी लब्धख्याति रचनाकार गोस्वामी श्रीहरिकृष्ण शास्त्री थे। हिन्दी में भी 'काशी मार्तण्ड' तथा 'शंखनाद' के रूप में दो वाङ्मय प्राकट्य आचार्यश्री का सुश्री अमिता शाह के द्वारा कराये गये हैं जो प्रशंस्य हैं। इन सभी ग्रंथों से पूर्व 'प्रसंग-पारिजात' में आचार्यश्री के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी बहुत पहले ही प्रकट हो चुकी है।

परन्तु 'पायसपायी' का प्राकट्य अपूर्व है। लेखक डॉ. विजय की अद्भुत ज्ञान राशि अनुपम अभिव्यक्ति क्षमता, हिन्दी की व्यापक परिधि, औपन्यासिक जगत् का विशिष्ट आकर्षण एवं आचार्य प्रवर के समान ही लेखक की राष्ट्रीय तथा मानवीय संवेदना में ग्रंथ की अपूर्वता की परम प्रकाशिका है।

'पायसपायी' से अन्वित होकर समाज उन समस्याओं से उबरने की विशिष्ट क्षमता से मण्डित होगा जो रामराज्य की अनुपम भूमि को लांछित कर रही हैं। शनैः-शनैः आज भी वे सभी काले बादल चतुर्दिक मण्डरा रहे हैं जो आचार्य प्रवर के काल में उपस्थित थे, जिनका एकमात्र समाधान आचार्य प्रवर का चिन्तन-चरित्र-प्रयोग एवं आध्यात्मिक शक्ति ही है।

जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी श्रीरामनरेशाचार्य

पायसपायी

आधुनिक काल में हिन्दी कथा साहित्य प्रतिष्ठित विधा के रूप में अपनी पहचान बना चुका है। जीवन के विविध पक्षों एवं आयामों को कथा साहित्य ने बड़ी प्रगल्भता से प्रतिबिम्बित किया है। आज एक प्रकार से कविता का स्थानापन्न गद्य हो गया है। कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रिपोर्ताज, लघुकथा न जाने कितनी गद्यशैलियाँ हिन्दी साहित्य को समलंकृत और समृद्ध कर रहीं हैं; पर इन सभी में उपन्यास अपना एक अलग ही वर्चस्व बनाये हुए है। उपन्यास का पाठक कथारस और पठनीयता में इतना अधिक निमग्न हो जाता है कि उसे कविता जैसी आनन्दानुभूति होने लगती है। संस्कृत साहित्य में महाकवि वाणभट्ट ने 'कादम्बरी' लिखकर इसकी अनुभूति और प्रतीति बहुत पहले ही करा दी थी।

'पायासपायी' उपन्यास के रचयिता डॉ. दयाकृष्ण विजय वर्गीय 'विजय' हिन्दी के सिद्ध कवि और प्रसिद्ध लेखक हैं। गत साठ वर्षों से उनकी लेखनी अविराम गति से चल रही है। जीवन के आठवें दशक की यह रचना निश्चित रूप से उनकी परिपक्वता और अनुभव की सघनता को मूर्तिमन्त करती है। सम्प्रति हिन्दी लेखन में जीवन की क्षुद्रताओं, संकीर्णताओं, वैयक्तिक जीवन की विसंगतियों व असंगतियों तथा समाज के कृष्ण-पक्षों को ही उकेरा जा रहा है। उसके विपरीत जीवन में सौमनस्य, साधुचरित्र, धर्म-अध्यात्म, तपस्चर्या और राष्ट्रीय चेतना की महत्ता को 'पायसपायी' में प्रमुखता के साथ प्रकट किया गया है। इस कृति में एक ऐसे महनीय व्यक्तित्व का आख्यान है जिसकी प्रभविष्णुता से पूरा मध्यकाल आलोकित होता रहा है। स्वामी रामानन्द की प्रगतिशील सर्वस्पर्शी जीवन दृष्टि, समन्वय की भावना, राष्ट्रीय एवं मानवीय चेतना तथा चमत्कारी व्यक्तित्व ने तत्कालीन सम्राटों तथा सम्प्रदायों को निष्प्रभ सा कर दिया था। मुसलमान शासकों की हिन्दुओं के प्रति क्रूर और प्रतिशोधी दृष्टि राजाज्ञाओं की विसंगतियाँ, धर्म के नाम पर तमाम प्रकार के आडम्बर, स्वामी जी के एक ही शंखनाद से इस उपन्यास में तिरोहित होते दिखायी पड़ते हैं। इस प्रकार के विविध प्रसंगों की सर्जनाएँ तथा स्थापनाएँ उपन्यास की पठनीयता में रोचकता उत्पन्न करती हैं।

औपन्यासिक तत्वों से भरपूर यह रचना एक प्रकार से स्वामी रामानन्द का जीवन चरित ही है। कहना न होगा कि आज भी शताधिक सम्प्रदायों तथा करोड़ो

नागरिकों का जीवन स्वामी जी के उपदेशों और संदेशों से ही पाथेय ग्रहण कर जीवन्त बना हुआ है। किसी रचना की सफलता का निकष उसके आलोकमय तत्वों और तथ्यों से ही निर्धारित होता है। आलोकमय जीवन का प्रतिमान उदात्त भाव के सृजन में खोजा जाना अपेक्षित है। इस दृष्टि से भी यह रचना बेजोड़ साबित हुई है। इस कृति की सबसे बड़ी विशिष्टता भाव एवं कथाशिल्प की समन्वयशीलता में परिलक्षित होती है। भाषा की सहजता एवं प्रवहनशीलता, कथ्यों एवं संवादों की सार्थकता और अर्थवत्ता, घटनाओं का संयोजन और उनकी लयात्मकता तथा स्वामीजी की वाणियों को विविध प्रसंगानुकूल संदर्भों से जोड़ने की अद्भुत निपुणता ने इस कृति को ऊँचाई प्रदान की है। रचना में पाठकीय संवेदना और कथारस की धारा समानांतर चलती है। सम्पूर्ण रचना पढ़ने के उपरान्त मध्यकालीन भारतीय समाज का एक स्पष्ट चित्र उभरता है। इस बिम्ब में संन्यासी स्वामीरामानंदाचार्य का व्यक्तित्व व महत्व, धर्म-अध्यात्म का पारंपरिक प्रवाह और तत्कालीन शासन की विद्रूपताएँ एक साथ परिलक्षित होती हैं। साहित्यिक ऊँचाई के साथ ऐतिहासिक दस्तावेज के अनुच्छेद भी इस कृति में खोजे जा सकते हैं।

डॉ० विजय ने ऐसे पुण्यश्लोक पर लेखनी चलाकर स्वयं को 'जीवेमशरदः शतम्' कर लिया है।

स्वामी रामानंदाचार्य की ७०९वीं जयंती — **उदय प्रताप सिंह**

दिनांक २९.०१.०८

पंचगंगा घाट, वाराणसी

प्राक्कथन

लोकनायक स्वामी रामानंदाचार्य को केन्द्र में रखकर लिखा, यह जीवनी परक उपन्यास, बंधुवर डॉ. उदय प्रताप सिंह (सारनाथ, वाराणसी) की प्रेरणा का ही सुफल है। इस प्रेरणा की पृष्ठभूमि में एक लघु कथा है। डॉ. सिंह ने श्रीमठ की प्रकाशनाधीन एक स्मारिका के लिए लेख मांगा था। वह लेख जब भिजवाया तब उसके साथ मैंने अपनी पूर्व प्रकाशित औपन्यासिक कृति 'रमताराम' भी भेजी थी। वह कृति उन्हें बहुत पसंद आयी और उन्होंने उसे श्रीमठ पीठाधीश्वर स्वामी रामनरेशाचार्य जी को भी दिखाया। उन्हें वह कृति बहुत अच्छी लगी, और उन्होंने डॉ. सिंह के माध्यम से कहलवाया कि वे इसी प्रकार का एक उपन्यास श्रीमठ के यशस्वी संत स्वामी रामानंदाचार्य पर भी लिखें। यह आग्रह मेरे लिए एक सुखद संवाद था। मैंने अपनी विनम्र स्वीकृति तत्काल पहुँचा दी।

स्वामी रामानंदाचार्य के जीवन पर कुछ लिखने से पहले मैंने उनके जीवन के सम्बन्ध में अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए रामधाम कोटा के संत स्वामी अवधेश कुमार जी से सम्पर्क किया। उन्होंने कृपा पूर्वक अपने पुस्तकालय से सम्बन्धित पुस्तकें दीं और अपने पूर्ण सहयोग का आश्वासन भी दिया। बाद में तो वे यहाँ तक कहने लगे थे कि वे ही उसे छपवायेंगे तथा कोटा में ही लोकार्पित करवायेंगे। स्वाभाविक था मेरा उत्साह द्विगुणित हो जाये। सृजन कर्म प्रारम्भ करने का शुभ मुहूर्त भी उन्होंने ही बताया।

उनके बताये दिन से ही सृजन कर्म द्रुतगति से चला। उनकी मंगलकामनाएँ काम आयीं और कृति कुछ ही समय में पूर्ण हो गयी। कहीं कोई बाधा नहीं आयी। आयु प्रभाव से शरीर थकान अनुभव करता, वह भी नहीं हुई। सृजन समाप्त होते ही मैंने डॉ. सिंह को अवगत कराया और जेरोक्स प्रति उनके पास भिजवा दी। डॉ. सिंह ने अध्ययन के उपरांत अतीव प्रशंसात्मक पत्र भिजवाकर लिखा कि उपन्यास को श्रीमठ ही छपवायेगा। उन्होंने एक बार काशी आकर श्रीमठ के आचार्य जी से मिलने के लिए अवश्य मुझे कहा। वर्षा ऋतु थी। गाड़ियों का आवागमन अवरुद्ध जैसा था, इसलिए

मैंने अगस्त में स्वामी जी की सेवा में पहुँचने के लिए उन्हें आश्वस्त किया। इसी अवधि में डॉ. सिंह ने स्वामी जी के सम्मुख उसका द्वितीय वाचन भी कर उनकी भी प्रशंसा अर्जित कर ली।

रामधाम से लाये ग्रंथों के अध्ययन के उपरांत मैंने देखा कई प्रश्नों पर सभी ग्रंथ एकमत नहीं है। कथागत तथ्य समान नहीं है। पात्रों के नाम समान नहीं है। तिथियाँ समान नहीं है। मेरे सामने बड़ा धर्म संकट खड़ा हो गया था। स्वामी रामानंद के पूज्य पिता श्री को कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखूं, शर्मा लिखूं या वाजपेयी। स्वामी रामानंद की मातुश्री का नाम मूर्वी लिखूं अथवा सुशीला। स्वामी जी के विवाह के लिए उनके माता-पिता ने जिस शांडिल्य गोत्रीय कन्या को ढूंढ़ा, उसका नाम माधुरी लिखूं या साल्वी। इसी तरह श्रीमठ का पीठाधीश बनने के बाद स्वामी जी के पास जो महारानी अपने यक्ष्मा पीड़ित राजकुमार को लेकर आयी थी, वह सुधावल की थी या सुधौली की। स्वामी रामानंद के साथ गागरोन से साथ गये संत पीपा अपनी पत्नी के साथ सीधे द्वारिका गये थे अथवा दक्षिण यात्रा के बाद द्वारिका पहुँचे थे। इसी तरह स्वामी रामानंद की निर्वाण तिथि संवत् 1456 थी अथवा संवत् 1515 की रामनवमी। यद्यपि उपन्यास की दृष्टि से इन सब बातों का कोई विशेष महत्व नहीं है, तो भी जब जीवनी परक उपन्यास लिखा जाये तो ये बातें बड़े महत्व की हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में मैंने स्वयं ही कुछ निर्णय लिये हैं। जो आपको यथा स्थान मिलेंगे। स्वामी जी के जीवन की घटनायें भी प्राप्त ग्रंथों में क्रमबद्ध नहीं मिलीं। मैंने औपन्यासिक दृष्टि से उन घटनाओं को एकत्रित कर एक ही स्थान पर आलेखित किया है। इससे जहाँ विषय के साथ न्याय हुआ है, वहीं उस कथावस्तु की गुणात्मकता में भी सहज वृद्धि हुई है। मैंने अध्यायों को नाम न देकर आंकिक संख्या से विभाजित कर दिखाया है। मुझे विश्वास है कि सुधी पाठक अध्ययन के उपरांत उस अध्याय को स्वयं ही शीर्षक दे लेंगे।

इस कृति को आकार की दृष्टि से बहुत बढ़ाया जा सकता था। मुस्लिमों के आगमन तथा हिन्दुओं पर उनके आक्रमण, धर्मांतरण, अत्याचारों एवं व्यभिचार प्रसंगों से कई पृष्ठ रंगे जा सकते थे। इसी तरह भारत में भक्ति आंदोलन का उदय, उत्तर भारत में दक्षिण से भक्ति का आना तथा उसके विस्तार पर भी कई पृष्ठ लिखे जा सकते थे। इससे उपन्यास आकार में तो अवश्य वृहद् हो जाता, पर कथानायक का व्यक्तित्व इस धुंधलके में कहीं खो जाता। वैसे भी आज की व्यवस्था मोटी पुस्तकों को पूरा कहाँ पढ़ने दे रही है। उच्च शिक्षा प्राप्ताभिलाषी युवाओं को तो सिर उठाने तक का अवकाश

नहीं है, इसलिए मैंने अपना ध्यान संक्षिप्तता एवं सामासिकता के साथ उपन्यास के आवश्यक तत्वों पर ही केन्द्रित रखा है। वे ओझल न हो जायें, यह चिंता विशेष रही है। उन्हें उभारने की मेरी प्रारम्भ से ही भरसक चेष्टा रही है।

यह तो सही है कि स्वामी रामानंदाचार्य मूलतः विशिष्टाद्वैती मत के विरक्त आध्यात्मिक संत थे लेकिन उन्हें इसी सीमा तक सीमित कर देखना, मेरी दृष्टि से उनके औदात्य के साथ न्याय करना नहीं था। स्वामी जी ने प्राप्त अपनी सारी आध्यात्मिक शक्तियों को अपने तक सीमित न रख, देश धर्म तथा समाज की रक्षा तथा राष्ट्र की अस्मिता को अक्षुण्ण बनाये रखने में झोंक दिया था। इससे वे मात्र विशिष्टद्वैती संत न रहकर, समाज सुधारक राष्ट्रीय संत की श्रेणी में पहुँच गये थे। वे ज्ञान के सुमेरु, उदारता के मूर्तिमान करुण रस तथा लोक मंगल के लिए खड़े नगपति से विराट पुरुष हो गये थे। उन्होंने समन्वय, साम्प्रदायिक सद्भाव तथा समाज कल्याण के लिए जो कीर्तिमान स्थापित किये हैं, वे अपने आप में असाधारण तथा अप्रतिम हैं। गहरी सहिष्णुता का परिचय देते हुए, उन्होंने जिस सूझबूझ तथा जिस कौशल से उपस्थित उग्र वातावरण को शांत किया, वह भी असाधारण ही कहा जायेगा। रूढ़ियों की कट्टरता को त्याग, धार्मिक क्षेत्र में जिस क्रांतिकारिता का परिचय दिया है, वह तो स्वयं में एक इतिहास बन गया है। राजनैतिक समस्याओं के समाधान में भी उन्होंने अपनी अद्भुत यौगिक क्षमताओं का चमत्कारिक परिचय दिया है। उन्होंने समाज को विद्वेष की ज्वाला में जलने तथा धर्मांतरण के भयावह दुष्कृत्य से सड़कों को रक्त रंजित होने से बचा, जो महनीय धर्म निभाया है, वह अपूर्व है। इन परोपकारी कार्यों से वे अहिंसक क्रांति के अग्रदूत के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। हम उन्हें रक्तहीन धार्मिक क्रांति के पुरोधा रूप में स्मरण कर सकते हैं। संतों ने नारी को सदा महाठगिनी माया के रूप में देख कर, उसे तिरस्कृत एवं बहिष्कृत किया है। लेकिन स्वामी जी ने उन्हें न केवल शिष्यत्व ही दिया, सिद्धत्व तक पहुँचा, नारी के महिमामय अस्तित्व को स्वीकारा है, उसे उसका स्वाभिमान तथा गौरवपूर्ण सम्मान लौटाया है। उन्होंने सारी वर्जनाओं तथा अर्गलाओं को तोड़ा है। उन्होंने कट्टरपंथी धार्मिकों के विरोध को भी अहिंसा के स्तर पर झेला है। उनमें हम कहीं आक्रोशी उग्रता नहीं देखते। जात-पांत की सारी संकीर्णताओं को मिटा, वंचित, दलित तथा शोषित को उसका स्वातंत्र्य तथा प्रतिष्ठापूर्ण स्वाभिमान लौटाया है। मठ के बाहर वे लोक कल्याण के भाव से निकले हैं। उनकी धर्म यात्रा की पृष्ठभूमि में भी आध्यात्मिक एकता तथा राष्ट्रीय अखण्डता का भाव ही मुख्य रहा

है। भगवान् आशुतोष की नगरी काशी में रहते हुए उस दिव्य पुरुष ने, आध्यात्मिक सेवा का जो उपनिषद् लिखा है, वह मानवता का महाभागवत बन गया है।

जीवन परक इस उपन्यास का क्या नामकरण किया जाये, इस पर भी गहरा मंथन हुआ है। कोई स्वामी रामानंद के आगे समाज सुधारक राष्ट्र संत जुड़वाना चाहते थे, वहीं कुछ लोकनायक नाम देना उपयुक्त मानते थे। इस सम्बन्ध में डॉ. उदय प्रताप सिंह की प्रशंसा करूँगा कि उन्होंने उपन्यास को एक नया ही औपन्यासिक नाम देना चाहा और अंत में 'पायसपायी' नाम देना ही तय रहा। श्रीमठ, दक्षिणावर्त, तथा रामानंद : एक जीवनी,जैसे नाम अपने आप पीछे छूट गये।

कथन का समाहार करते हुए मैं श्रीमठ के पीठाधीश्वर स्वामी श्रीरामनरेशाचार्य जी, गागरोन पीठाधीश्वर महामण्डलेश्वर श्रीअवधेश कुमार जी तथा डॉ. उदयप्रताप सिंह जी का अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने मुझे यह उपन्यास लिखने हेतु प्रेरित एवं उत्साहित किया तथा इसके प्रकाशन का पथ प्रशस्त किया।

यह जीवनी परक उपन्यास 'पायसपायी' आपके सम्मुख है। यदि इसका अध्ययन मनन समाज जीवन को अध्यात्म की ओर उन्मुख कर सका, संत समाज को स्वामी रामानंदाचार्य जी के विराट जीवन से अनुप्राणित कर, उस ओर अग्रसर कर सका तथा राष्ट्र जीवन में साम्प्रदायिक सद्भाव, सौहार्द तथा सहिष्णुता का संचार कर सका तो मैं इस लघु प्रयास को सार्थक मान लूंगा। सर्व को नमन् ।

श्रीरामानंदाचार्य जयंती
जनवरी, सन् २००८ ई.

दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'
सिविल लाइन्स कोटा - ३२४००१
राजस्थान

एक

प्रयाग। त्रिवेणी संगम के ऊपर पंडित पुण्य सदन शर्मा का आवास। वे पूजा कक्ष में भगवान् वेणीमाधव के सामने ध्यानस्थ वैठे, मौन मंत्र जाप कर रहे हैं। तभी पुत्र रामदत्त घुटनों के बल अपनी माँ सुशीला देवी के पास से चलता हुआ, पूजा कक्ष में भगवान् वेणीमाधव के सामने रखे, दक्षिणावर्त शंख को उठा बजाने लगता है। शंख ध्वनि सुन शर्मा की एकाग्रता भंग होती है। वे बालक रामदत्त को शंख बजाते देख, अचम्भित रह जाते हैं। आश्चर्य तथा विक्षोभ एक साथ मुँह पर खेल जाते हैं। आश्चर्य इसलिए कि उस सालभर के बालक ने, बड़ों-बड़ों से नहीं बजने वाला वह शंख बजा दिया। विक्षोभ इसलिए कि वह दक्षिणावर्त शंख सामान्य नहीं था। स्वयं भगवान् वेणी माधव ने उनकी पत्नी सुशीला की पूजा आराधना से प्रसन्न होकर, प्रसादी माला के साथ, उसकी याचना करती झोली में डाला था। शर्मा ने तभी से उस शंख को वहीं पूजा कक्ष में वेणी माधव की प्रतिमा के सामने रख दिया था। तब से वे उसकी भी विधिवत् पूजा करते आ रहे थे। शर्मा को क्रोध तो बहुत आया, पर अबोध बालक पर क्रोध निकालते हाथ सहसा ठिठक गया। उन्होंने पत्नी सुशीला को आवाज दी। वह जैसे ही आयीं, वे रोष में भरकर बोले- 'ले जाओ इसे यहाँ से। देखा नहीं अपने लाड़ले का करतब। पूजा के शंख को झूठा कर दिया।'

'शंख क्या इसीने बजाया था?

'और नहीं तो कौन बजाता?'

'बड़ा शैतान हो गया है अभी से। आगे चल कर न जाने क्या करेगा?' यह कहते हुए सुशीला झुंझलाहट के साथ उसे उठा ले गई। शर्मा ने पूजा तो जैसे-तैसे पूरी कर ली, लेकिन न जाने कहाँ-कहाँ की शंकायें दिन भर मन को मथती रही, आंदोलित करती रहीं। न जाने कैसे-कैसे बुरे विचार आते रहे। बड़ी प्रार्थनाओं एवं साधनाओं के बाद सौभाग्य से घर में किलकारियाँ गूंजी हैं। सुशीला ने कितने देवरे ढाके हैं। कितने व्रत उपवास किये हैं, कितनी मनौतियों के बाद उसकी गोद हरी हुई है। कहीं देवता अप्रसन्न न हो जायें। कहीं कोई अनिष्ट न कर दें। इन्हीं चिन्तनाओं में वे

दिनभर खोये रहे। सुशीला ने उन्हें सहज करने के लिए इधर-उधर की कई बातें कीं। कहा 'बच्चा है, बच्चे तो भगवान् के रूप होते हैं। भगवान् इनकी त्रुटियों को कभी गम्भीरता से नहीं लेते। आप भी अधिक ही भावुक हो रहे हैं। ऐसा क्या हो गया।' रात्रि को भी सुशीला ने उन्हें प्रसन्न रखने के लिए क्या नहीं किया। देर रात तक उनकी संतुष्टि की बातें करती रहीं। पर पुण्य सदन सहज नहीं हो पाये। एक गम्भीर सोच लिये सो गये। उसी रात को गहरी नींद में उन्हें स्वप्न हुआ। स्वयं भगवान् वेणीमाधव ने दर्शन देते हुए कहा- 'श्रीराम ने ही शंख बजाया है। तुझे याद नहीं है, पूर्व जन्म में तुम दोनों हृषिकेश के ब्राह्मण दम्पत्ति थे। बद्रिकाश्रम में तुमने पुत्र की कामना से कठिन तप किया था। तब तुमने पुत्र के रूप में राम जी को अपने यहाँ चाहा था। रामदत्त के रूप में तुम्हारे पिछले जन्मों की तपश्चर्या के आधार पर परम प्रभु सर्वावतारी राम जी ही आए हैं। तुम दोनों भी वही ब्राह्मण दम्पति हो। इसे शंख बजाने दो।' यह कहकर भगवान् वेणीमाधव तो अन्तर्धान हो गये, किन्तु शर्मा की नींद खुल गयी। उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं था। उन्होंने झिंझोड़कर पत्नी सुशीला को जगा लिया।

बोले- 'सुशीला, रामदत्त भगवान् राम का ही सगुण विग्रह है। मुझे स्वप्न में भगवान् ने दर्शन देकर कहा है।'

'सच'

'तो क्या मैं तुझसे झूठ बोल रहा हूँ?' यह सुनते ही पुत्र रामदत्त के प्रति सुशीला का श्रद्धाजनित ममत्व जाग उठा। उसने सोते हुए रामदत्त को उठा, छाती से चिपका लिया। करवट लेकर दोनों के बीच लिटा दिया और ऊँचा उठ, प्यार से कई चुम्बन उसके गालों पर जड़ दिये। उसकी आँखों में हर्ष के आँसू झलक आये। बोली 'जीवन धन्य हो गया, प्रभु बड़ा कृपालु है।' शर्मा तो करवट बदल सो गये, पर सुशीला को रातभर नींद नहीं आयी। वह बार-बार पुत्र रामदत्त को प्रसन्न नेत्रों से देखती, चूमती, छाती से लगा भविष्य के सुखद सपनों में खोई रही। मैं इसके सारे संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न कराऊँगी। सारी विद्यायें पढ़ा, इसे सच में ही पूर्ण पुरुष बनाऊँगी यह कहते हुए उनकी आँखें उनींदी हो गयीं।

भुवन भास्कर ने पृथ्वी को अपनी स्वर्ण रश्मियों से स्पर्श किया, तो पृथ्वी जगमगा उठी। सुशीला ने पति पुण्य सदन को नित्य नैमित्तिक कार्य से निपटा देख, मुख पर प्रसन्नता लाते हुए आँखों में स्मिति भरी आँखें डालते हुए कहा- 'रात आपको तो निद्रा आ गई....।'

'तो क्या तुम्हें नींद नहीं आयी?'

'रातभर न जाने कहाँ-कहाँ के विचार आते रहे। वे सब बातें दुहरती रहीं, जिस दिन भगवान् वेणीमाधव ने, पूजा के समय मेरी पसरी झोली में आशीर्वाद स्वरूप प्रसादी माला और यह दक्षिणावर्त शंख डाला था उसी दिन मुझे भगवत प्रकाश का दर्शन तथा गर्भ की स्थिति का भान हो गया था। सर्दी में आंगन में बैठी जब धूप सेक रही थी, तब कैसे सूर्य प्रभा से एक तेज पुंज पिण्ड, मेरी ओर आया और मेरा मुंह अपने आप खुल गया, वह ज्योति पिण्ड सहसा मेरे जठर में प्रवेश कर गया। भगवान् वेणी माधव ने आपके स्वप्न में आकर उन सब घटनाओं को सार्थक सिद्ध कर दिया है। वे अनावश्यक नहीं थी। यह राम जी के आगमन की तैयारियाँ थी।'

'महाभाग, अवतारी पुरुष जब धरती पर आते हैं, तब परिवार की आश्वस्ति के लिए ऐसी घटनाएँ होना स्वाभाविक है। अवतारी पुरुष अकेले नहीं आते। उनके साथ उनकी सहयोगी शक्तियाँ भी, विविध रूपों में धरती पर अवतरित होती हैं। तुम्हें अपने प्रयाग की ही वह घटना तो याद है न, जब मुस्लिम धर्मावलम्बी, मनसुख को मुस्लिम धर्म स्वीकार न करने पर मौत के घाट उतारने को उद्यत थे, तब उसने कैसे अपने परिवार के बीच में से चुपचाप निकल, वन में भागकर, अपने प्राणों की रक्षा की थी। कैसे उसने वहाँ वन में अकेले रहकर, अपनी आराधना से भगवान् को प्रसन्न कर, देशवासियों तथा सनातन धर्म की रक्षा के लिए आशीर्वाद प्राप्त किया था। हम नहीं जानते कौनसी शक्ति, किस रूप में कहाँ अवतरित होंगी। ये सब बातें बाद में ही ज्ञात होती हैं।'

'इतिहास इसे ही नहीं, हमें भी लिखकर अमर करेगा। भगवान् राम के साथ, माता-पिता, भाई-बहन अमर नहीं हुए क्या?' यह कहते हुए जब सुशीला ने गोदी में लिये हुए रामदत्त को हर्ष से चूमा, तब ममत्व अपने साक्षात् रूप में मूर्त हो उठा था। सुशीला की आंखें अनायास हर्ष के आँसुओं से गीली हो गयी थीं। प्रयाग के ज्योर्तिविद पण्डितों ने उस दिन कितने विचार के बाद इसका नाम रामदत्त रखा था। कह रहे थे, इसके जन्म के समय सिद्धि योग था।'

'भगवान् वेणी माधव ने जब स्वप्न में आकर कह दिया, उसके बाद कौनसा सिद्धि योग शेष रह जाता है।' सुशीला ने कटि के झूले पर रामदत्त को झुलाते हुए, आनंद विभोर हो, एक बार फिर उसे चूमते हुए कहा।

'सुशीला, ऐसी महान आत्माओं का जन्म भी असाधारण होता है। तभी तो इसके

जन्म के पूर्व ही, कितने ब्राह्मण एवं सिद्ध पुरुष घर की परिक्रमा करते हुए द्वार पर आकर डट गये थे। मैं तो समझा था कि आज माघ कृष्ण सप्तमी है। पर्व का दिन है। त्रिवेणी स्नान के लिए संत आ रहे होंगे। तुम तो जन्म के समय, इसके नहीं रोने से, इसे मृत समझ रोने लगी थी। सारा घर शोक में डुबो दिया था। यदि वे सिद्ध पुरुष पहले से ही द्वार पर नहीं होते, तो इस समाधिस्थ शिशु को समाधि की स्थिति से कौन उतारता।'

'मेरे तो प्राण नहीं निकले, यही बहुत समझो। नौ महीने माताएँ कितना कष्ट उठाती हैं। नारी की प्रसव पीड़ा को आज तक किस ने समझा है। लोग नाटक भर मानते हैं।' सुशीला ने भाव भरे स्वर में कहा।

'ऐसा नहीं है सुशीला, पुरुषों की चिन्ता आंतरिक होती है। स्त्रियों की पीड़ा आँखों से आंसू बनकर बाहर छलक आती है। जो सबको दिख जाती है।'

'यह नहीं रोया होता तो, मैं तो रोते-रोते मर जाती। मैं समाधि वमाधि को क्या जानूं। धरती पर आते ही शिशु को रोना ही चाहिए, यही जीवन का प्रमाण है।

'सुशीला ये संत भी कोई दिव्य संत ही थे। इन्हें सब पता था। वे तो प्रतीक्षा में ही बैठे थे कि कोई उन्हें बुलाये। उनके भीतर पहुँचते ही शिशु ने अपनी आँखे नहीं खोल दी थी! आँखों से ऐसा प्रखर तेज निकल रहा था कि मेरी तो आँखें ही चुंधिया गई। जाते हुए सिद्ध कह रहे थे कि हमें इसके पृथ्वी पर जन्म लेने से पूर्व ही यहाँ उपस्थित रहने का आदेश हुआ था।'

'तो वे क्या कोई देवदूत थे?'

'सुशीला महाशक्तियाँ जब आती हैं, तब तृण तक भी उनका सहायक हो जाता है। उन्हें बड़े-बड़े काम जो करने होते हैं। हमें भी पण्डितों द्वारा बताये समय पर सारे शास्त्रोक्त संस्कार पूरी निष्ठा के साथ पूरे करने हैं। तुम्हें याद है न, वे तीनों बातें, जो द्विज प्रमुख वारुक जी ने कही थी।'

'हाँ याद है, यही न, तीन वर्ष तक घर से बाहर नहीं निकलने देना। अन्न नहीं, दूध ही देना तथा शिशु को कुदृष्टि से बचाये रखना।'

'वैसे यह बातें बहुत सामान्य है। मुख्य बात यही है बच्चा स्वस्थ तथा नीरोग रहे। हाँ, प्रभु वेणी माधव ने, इससे चारों समय प्रातः, दोपहर, संध्या तथा शयन के समय शंख बजवाते रहने के लिए, जो स्वप्न में निर्देश दिया है, उसकी पालना कर

रही हो या नहीं?'

'पूरी तरह पालना करवा रही हूँ। जब यह शंख ध्वनि करता है, तब स्वर्गिक शांति का अनुभव होता है। तन मन प्रसन्न हो जाता है। शंखध्वनि बड़ी विमुग्धकारी है।'

श्रीपंचमी का दिन है। बालक रामदत्त को चौथा वर्ष लगा है। महापण्डित वारुक ने अन्नप्राशन एवं कर्ण छेदन संस्कार के लिए, यही दिन श्रेष्ठ बताया था। प्रातः से ही घर में चहल-पहल थी। मुहूर्त से पहले ही सुशीला ने आंगन को गाय के गोबर से लिपवा, गेरू एवं पांडू के घोल से सुन्दर मण्डन मंडवा दिया था। सूखने पर सेविका ने सुशीला के निर्देश पर मण्डन पर चौकी रख आसन बिछा दिया। सुशीला ने रामदत्त को गोदी में ले, चंदन पीठ पर बैठ, लौकिक वैदिक विधानुसार, देव मूर्तियों की पूजा अर्चना की। सेविका ने भोग का थाल रख, आगे बढ़ा दिया। उसे देख शिशु रामदत्त ने अपना हाथ खीर की कटोरी की ओर बढ़ाया। सुशीला ने शिशु की इच्छानुसार चम्मच से थोड़ी-थोड़ी खीर लेकर उसे खिलाई। शर्मा खड़े-खड़े यह दृश्य देख रहे थे। मुंह में चम्मच देते ही, उन्होंने ताली बजाकर स्वागत किया। सुशीला ने बाद में चम्मच से थोड़ा-सा दाल का पानी भी दिया। कर्णभेदन संस्कार के लिए स्वर्णकार पहले ही आ बैठा था। शर्मा ने स्वर्ण की छोटी छोटी दो बालियाँ बनवा रखी थी। उन्होंने शिशु को दिखाते हुए कहा- 'बालियाँ पहनोगे?' शिशु ने ज्योंहि दृष्टि ऊँची की, वैसे ही शर्मा ने शिशु को उठा गोदी में ले लिया तथा स्वर्णकार के पास बैठ गये। इधर तो पिता शिशु को पानी पिलाने का उपक्रम करते रहे, उधर स्वर्णकार ने एक झटके में ही कान में बाली डाल दी। शिशु रामदत्त जब विचलित हुआ तो बालक को बाहों में दबा दिया। स्वर्णकार ने दूसरे कान में बाली डाल, सूखी हल्दी दोनों कानों में लगा दी।

पण्डित वारुक के निर्देशानुसार पिता ने शिशु रामदत्त को घर पर ही रामायण महाभारत मनुस्मृति आदि कंठस्थ कराना प्रारम्भ कर दिया। वे स्वयं प्रयाग में संस्कृत के माने हुए विद्वान् जो थे। बालक रामदत्त को भी ऐसी कुशाग्र एवं प्रखर बुद्धि मिली थी कि वह एक बार जिसे सुन लेता था, उसे कण्ठस्थ सुना देता था। तीन साल तक यही क्रम चलता रहा! तब तक शिशु रामदत्त को रामायण कण्ठस्थ हो गयी थी। शर्मा चाहते थे कि बालक रामदत्त की विद्वता, प्रयाग के विद्वत समाज के सामने आये। वे बालक की कुशाग्रता पहचानें तथा उसे मान्यता दें। इसलिए उन्होंने अपने निकटस्थ विद्वत् मित्रों को घर पर बुलाया और बालक रामदत्त से रामायण पाठ सुनवाया। सब

धन्य-धन्य कहने लगे। धीरे-धीरे यह चर्चा प्रयाग भर में फैल गयी। बिना बुलाये बालक को देखने, सुनने बड़े-बड़े विद्वान् घर पर आने लगे। शर्मा ने रामायण के बाद क्रमशः श्रीमद्भागवत, मनुस्मृति तथा व्याकरण सहित अध्ययन करवा दिया। बालक की विद्वता से सभी चमत्कृत थे। यही कहते थे, यदि बालक को धर्म दर्शन का तत्त्वज्ञ बनाना ही है, तो इसे एक बार काशी भेजकर योग्य पंडित से धर्म दर्शन का भी अध्ययन करवाएँ। वैसी पढ़ाई की व्यवस्था प्रयाग में नहीं है। बालक रामदत्त के मन में भी यह बात धीरे-धीरे घर करने लगी थी और यह विचार दृढ़मूल होता जा रहा था कि उसे काशी जाकर दर्शनशास्त्रों का भी पूरा अध्ययन करना चाहिए। बालक की भावनाओं को समझ शर्मा ने दर्शनशास्त्र के अध्ययन की व्यवस्था भी घर पर ही करवा दी। न्यायशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता समझ, उन्होंने स्वयं ही उसे न्यायशास्त्र पढ़ाना आरम्भ कर दिया। वे मानते थे कि उलझे हुए प्रश्नों का तत्काल न्यायिक बुद्धि से उत्तर देने हेतु प्रत्येक के लिए न्यायशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। बालक रामदत्त सातवां वर्ष पूर्ण कर रहा था। उपनयन संस्कार का समय आ रहा था। शर्मा ने महाद्विज वारुक को बुलवाकर उपनयन संस्कार का मुहूर्त निकलवाया। उन्होंने जन्म तिथि के सत्रह दिन बाद अर्थात् माघ शुक्ल द्वादशी को यज्ञोपवीत संस्कार का मुहूर्त निकाला। वे स्वयं भी मानते थे कि संस्कार जीवन को सात्विक भावों से भरने तथा एक अच्छा नागरिक बनाने में सहयोगी होते हैं। इसलिए मुहूर्त के दिन प्रातः से ही यज्ञोपवीत संस्कार की तैयारियाँ होने लगी थीं। नाई ने आकार बालक रामदत्त का मुण्डन कर गीली हल्दी का लेप कर दिया। स्नान के उपरांत नई सनी धोती पहनाई गयी। चंदन पीठ पर बिठाकर, पं. वारुक जी ने उपनयन संस्कार सम्पन्न कराया। बटुक ने उपस्थित विद्वानों के चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया। उपनयन के बाद यह परंपरा रही कि बटुक पलाश दण्ड ले कुछ दूर ग्राम से बाहर जाकर काशी पढ़ने जाने की परम्परा पूरी करता है। बालक रामदत्त ज्योंहि प्रयाग से बाहर काशी के पथ पर पहुँचा, तो उसने वापस लौटने से मना कर दिया और काशी जाकर ही अपना अध्ययन पूर्ण करने की हठ करने लगा। सभी ने बहुत समझाया, पर किसी की बात उसने नहीं मानी। अन्ततः शर्मा दम्पत्ति को उसके हठ के आगे झुकना पड़ा। उसे काशी भेजने का पूरा विश्वास दिलाकर बड़ी कठिनाई से वापस लौटाया।

बड़ी विकट समस्या खड़ी हो गयी थी। बालक रामदत्त अभी आठ वर्ष का ही हुआ था। एक ही संतान थी। कभी घर से बाहर अकेला नहीं भेजा था। दोनों रातभर इसी चिंता में डूबे रहे। कई विकल्पों के बाद, इसी निर्णय पर पहुँचे कि काशी में मामा

ओंकारेश्वर त्रिपाठी के यहाँ बालक को रखा जाये। वे स्वयं भी काशी के मान्य नैयायिक विद्वान् हैं। उन्हीं के परामर्श से वहाँ किसी अच्छे गुरु के पास रख अध्ययन की उचित व्यवस्था करवाई जाये। बालक रामदत्त को लेकर शर्मा दम्पत्ति योजनानुसार मामा ओंकारेश्वर त्रिपाठी के घर पहुँच गये। बालक रामदत्त दक्षिणावर्त शंख को अपने सामानों के साथ ले जाना नहीं भूला। माता-पिता को भी इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। भगवान् वेणी माधव ने स्वप्न में वह शंख बालक को ही देने की आज्ञा जो दे रखी थी। महानैयायिक का आवास काशी में पंचगंगा घाट के निकट ही था। वहीं परम वेद विद् विद्वान दण्डीस्वामी रहते थे। उन्हें उचित अध्यापक मान, बालक रामदत्त को त्रिपाठी जी ने इनके पास अध्ययन हेतु भेजना प्रारम्भ कर दिया। यहीं विद्वानों से रामदत्त ने वेदवेदांग का विधिवत् अध्ययन किया।

●

दो

पूर्वी समुद्र तट पर स्थित पुरी में भगवान् जगन्नाथ का मंदिर। रथयात्रा महोत्सव चल रहा था। बड़े विशाल सुसज्जित रथ में भगवान् जगन्नाथ, अग्रज बलराम तथा बहिन सुभद्रा की त्रिमूर्तियाँ विराजमान थीं। भक्तगण तथा पुजारीगण जय निनाद के साथ उस विशाल रथ को खींच गुन्टिचा नामक स्थान पर ले जा रहे थे। जहाँ पन्द्रह दिन तक भगवान् विराजते हैं। रथ चलते-चलते एकाएक रुक गया। खींचे नहीं खिच रहा था। सारे भक्त पसीना-पसीना हो गये थे। यह विचित्र स्थिति देख सब निराश हो रहे थे। उनका सारा उत्साह समाप्त हो गया था। ओजस्वी जयकारे मौन हो गये थे। तभी भीड़ में से एक सिद्ध संत, जिनका नाम हर्यानंद था, आगे आये तथा बोले- 'आप सब लोग हट जायें। भगवान् का रथ स्वयं चलेगा।' उपस्थित जन समुदाय, भक्तगण तथा पुजारी स्वामी हर्यानंद के इस कथन पर चकित थे। कहाँ तो विशालकाय गगन चुम्बी रथ और कहाँ रथ के स्वयं चलने की बात, सब इसे असम्भव मान रहे थे। सबकी आँखें उस महासंत पर जा टिकी। उसे कोई महायोगी समझा, तो कोई साक्षात् भगवान् जगन्नाथ स्वामी ही। दूर-दूर खड़े श्रद्धालु एक-दूसरे को धकेलते हुए, उस यौगिक चमत्कार को देखने के लिए आगे बढ़ने लगे। पंडों तथा आरक्षियों के हटाये लोग नहीं हट रहे थे। कई तो रथ के आगे आकर खड़े हो गये थे। पुरी में यह प्रथा है कि रथयात्रा के पूर्व वहाँ के राजा के द्वारा भगवान् की पूजा-अर्चना की जाती है। उसके बाद ही रथ आगे बढ़ता है। रथ के रुकने से राजा मन ही मन अपराध बोध से ग्रसित हो रहे थे, सोच रहे थे, उनसे ऐसी क्या त्रुटि हो गई, जो भगवान् का चलता हुआ रथ एकाएक रुक गया। ऐसा कभी पूर्व में नहीं हुआ था। भगवान् प्रसन्न-प्रसन्न अपने ससुराल जाते थे। बड़ा महोत्सव होता था। उपस्थित जन-समुदाय स्वामी हर्यानंद की यौगिक शक्ति का चमत्कार देखने के लिए उमड़ा पड़ रहा था। थोड़ी देर बाद भगवान् का रथ स्वयं चलने लगा। फिर क्या था उपस्थित जन-समुदाय इस चमत्कार से प्रभावित होकर स्वामी हर्यानंद की जय-जय कार गुंजाने लगा। कुछ अधिक भावुक व्यक्ति, स्वामी हर्यानंद के चरण स्पर्श करने लगे। इतने बड़े रथ का चल पड़ना निश्चय ही एक बड़ा चमत्कार था। योग सिद्धि का एक अनूठा उदाहरण था। पंडा समुदाय ने करबद्ध आभार माना।

जन-समुदाय में तरह-तरह की बातें होने लगी। भगवान् ही हर्यानंद के रूप में स्वयं आये हैं। कोई कहता हर्यानंद की महिमा बढ़ाने के लिए भगवान् ने ही यह लीला रची है। पुरी के लोगों के लिए स्वामी हर्यानंद अपरिचित थे। इसलिए इस तरह की कल्पना प्रसूत बातें अधिक हो रही थीं।

वास्तव में स्वामी हर्यानंद काशी के महायोगी श्री श्रियानंदाचार्य के शिष्य थे। इनका श्रीमठ आश्रम पंचगंगा घाट पर था। हर्यानंद जब काशी में गुरु श्री श्रियानंदाचार्य के आश्रम में शिष्य रूप में रहते थे, तब ये श्री हरि के प्रेमानंद में डूबे निरंतर तुर्यावस्था में रहते थे। इनकी भक्ति तथा योगावस्था को देख, गुरु श्री श्रियानन्द ने इन्हें हर्यानंद नाम से पुकारना प्रारम्भ कर दिया था। ये शरीर से भी बड़े बलिष्ठ, आकर्षक तथा दिव्य प्रतिभा सम्पन्न थे। इनकी सेवा और योग साधना से प्रसन्न होकर स्वामी श्री श्रियानंदाचार्य ने अपने निर्वाण से पूर्व ही इन्हें अपने मठ का उत्तराधिकारी बना, स्वयं दक्षिण चले गये थे।

स्वामी हर्यानंद की ख्याति सुनकर ही इनका शिष्यत्व ग्रहण करने की कामना लेकर श्री राघवानंदाचार्य, जो दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे तथा निगमागम के परम विद्वान् थे, काशी आये। स्वामी हर्यानंद ने श्री राघव को पहली दृष्टि में देखते ही अपना शिष्य बना, पंच संस्कार युक्त मंत्र दीक्षा प्रदान कर राघवानन्द नाम दे दिया। स्वामी राघवानंद स्वामी हर्यानंद के बाद श्रीमठ के आचार्य बने थे, काशी के विद्वत् समाज में अपनी पहचान स्थापित करने के भाव से एक यौगिक चमत्कार कर दिखलाया। उनके पास तीन अलग-अलग स्थानों से एक ही समय पर प्रवचन करने के लिए निमंत्रण आये थे। आपने तीनों निमंत्रण स्वीकार कर लिये। वे अपनी यौगिक शक्ति से उन तीनों स्थानों पर एक ही समय में उपस्थित हुए तथा अपने ज्ञानात्मक धार्मिक प्रवचन दिये। यह बात दूसरे दिन काशी की गली-गली में गूंज गयी। काशी का विद्वत् समाज ही नहीं, सामान्य जन भी इन्हें एक चमत्कारी संत मानने लगा। इससे श्रीमठ में प्रतिदिन भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी।

काशी में रामदत्त, श्री ओंकारेश्वर त्रिपाठी के यहाँ रहते हुए, दण्डी स्वामी के यहाँ शास्त्राध्ययन करने लगे। दण्डी स्वामी का आवास पंचगंगा घाट के पास ही था। स्वामी राघवानंद की बढ़ती ख्याति तथा बढ़ती श्रद्धालुओं की भीड़ देख, युवा रामदत्त के मन में भी उनके दर्शन की अभिलाषा जगी। समय निकाल गुरु दण्डी स्वामी से आज्ञा लेकर रामदत्त मठ में प्रवचन सुनने के लिए जाने लगे। स्वामी राघवानंद भी युवा रामदत्त के सामुद्रिक, विद्वता तथा लगन को देख बहुत प्रभावित थे। युवा रामदत्त ने भी स्वामी जी

के प्रवचनों से प्रभावित हो,मठ में अधिक समय देना प्रारम्भ कर दिया था। दण्डी स्वामी के यहाँ का शास्त्राध्ययन समाप्त होने को ही था उसी बीच किशोर रामदत्त ने, प्रवचन के पश्चात् रुककर, स्वामी राघवानंद के चरण स्पर्श करते हुए उनसे शिष्य बना लेने की प्रार्थना की। स्वामी राघवानंद पहले से ही प्रभावित थे। वे न नहीं कह सके। यह कहते हुए उन्होंने उसे उसके सिर पर हाथ धर दिया 'तेरी भौतिक जगत की कर्मकाण्डी मीमांसिकी आयु पूर्ण हुई। आज तेरा नया आध्यात्मिक जन्म हुआ है। आज से तेरा नाम रामदत्त नहीं, रामानंद हो गया है।'

ओंकारेश्वर त्रिपाठी से आज्ञा लेकर रामानंद, गुरु राघवानंद के श्रीमठ में ही शिष्य के रूप में रहने लगे। त्रिपाठी ने यह समाचार प्रयाग शर्मा के पास भिजवाया। समाचार मिलते ही शर्मा दम्पत्ति दोहरी चिंता में डूब गये। उदासी के काले मेघों ने उन्हें घेर लिया। उन्हें चिन्ता हुई कि वे कुमारी साल्वी के पिता श्री शांडिल्य को क्या उत्तर देंगे, जिससे उन्होंने रामदत्त का विवाह करना पक्का कर लिया है। सुशीला तो साल्वी के रूप, गुणशील से इतनी प्रभावित थी कि उसने तो सास के रूप में अनेकों सुखद सपने संजो लिये थे। पंडित शांडिल्य के पास समाचार गया तो वे चिंतित हुए। शांडिल्य दम्पत्ति ऐसे वर को नहीं खोना चाहते थे। रामदत्त को वे साल्वी के लिए एक उपयुक्त वर के रूप में स्वीकार कर चुके थे। आस-पड़ोस के लोगों से वे रामदत्त की शिक्षा तथा विद्वता की प्रशंसा करते नहीं थक रहे थे। यह समाचार उन पर बिजली बनकर गिरा था। पहाड़ बनकर टूटा था। एक मिनट भी वहाँ रुकना उनके लिए दूभर हो गया था। दोनों भागे-भागे शर्मा के आवास पर आये। दोनों परिवारों ने घण्टों मंत्रणा की, क्या किया जाये। रामदत्त अब बालक तो था नहीं। पूर्ण शिक्षित युवा था। शास्त्रों का उसे पूरा ज्ञान हो गया था। प्रकाण्ड पंडित था। फिर भी शर्मा के मन में यही बात बार-बार उठती थी कि उसे किसी ने भ्रमाया है। वह अवश्य मेरी बात नहीं टालेगा। बोले 'मैं एक बार वहाँ हो आता हूँ। जो बात मैंने आपसे कर ली है, उसे पूरा कर के ही रहूँगा।' सुशीला ने भी श्रीमती शांडिल्य को इन्हीं शब्दों से आश्वासन दिया। शांडिल्य यह कहते रहे कि हम भी आपके साथ चलेंगे। साल्वी को भी साथ ले चलेंगे। हो सकता है, साल्वी को एक बार देख रामदत्त का युवा मन पिघल जाये। शर्मा ने शांडिल्य को रोकने की पूरी चेष्टा की। पर वे नहीं माने। शर्मा विद्वान थे। रातभर विचारते रहे थे कि रामदत्त को किस विधि से मनाया जाय। उनके मन में यह भी विचार आया कि शास्त्री को शास्त्र से ही पराजित किया जा सकता है। प्रयाग में मीमांसक कुमारिल भट्ट का प्रभाव कम नहीं हुआ था। उनकी मीमांसा पुस्तक प्रयाग के पण्डितों के मन मस्तिष्क पर छाई हुई

थी। उन्होंने उसी रात को अपने पुस्तकालय से वह पुस्तक निकाल, साथ में रख ली थी। कुमारिल भट्ट ने उसमें स्पष्ट शब्दों में यह उल्लेख कर रखा है कि प्रत्येक मनुष्य को सन्यास से पूर्व जीवन में एक बार गृहस्थ जीवन अवश्य स्वीकारना चाहिए। रामदत्त को जब यह बताऊँगा, तब वह अवश्य इस पर विचार करेगा। दूसरे दिन ही वे पांचों जने काशी के लिए प्रस्थान कर गये।

काशी में ओंकारेश्वर त्रिपाठी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। इन्हें देख बहुत प्रसन्न हुए। वे साल्वी का परिचय प्राप्त कर, पहली दृष्टि में ही प्रभावित हो गये थे। वे भी उसे रामदत्त के लिए उपयुक्त वधू मानने लगे थे। बहुत रात गये तक तीनों मंत्रणा करते रहे। पंडित शांडिल्य का यही कहना रहा 'जब श्री रामदत्त श्रीमठ के स्वामी राघवानंद के विधिवत् दीक्षा प्राप्त शिष्य हो गये हैं और वहीं रहने लगे हैं, तो अब उनका वहाँ से लौट आना मुझे कठिन लगता है। 'हम एक बार चलकर उससे मिल लेते हैं। मुझे विश्वास है कि वह मेरे कहने को नहीं टालेगा।' इस पर ओंकारेश्वर त्रिपाठी ने बीच में ही बात काटते हुए कहा- 'हम अब भले ही वहाँ चले, परन्तु मुझे नहीं लगता कि वह हम किसी की बात मान, वहाँ से घर लौट आयेगा'। साल्वी कुछ दूर बैठी सारी चर्चायें सुन रही थी। उसके संजोये विवाह के सारे सपने किरच किरच हो रहे थे। वह चिंता के अथाह समुद्र में डूबी थी। बड़ी रात गये, बड़ी मुश्किल से उसकी नींद लगी थी। नींद में ही उसे स्वप्न हुआ, संत जैसे किसी व्यक्ति ने उससे कहा 'तेरा विवाह होते ही तू विधवा हो जायेगी।' यह सुनते ही उसकी आँखें खुल गयी। ह्रदय में वेदना घनीभूत हो उसका मानस मथने लगी। सोच नहीं पा रही थी। क्या करें क्या न करें। पूरी रात इसी चिंता में डूबी रही। विकल्पों ने उसे मथ डाला। अन्ततः उसने निश्चय किया कि वह विवाह कर किसी की मृत्यु का कारण नहीं बनेगी। आजन्म ब्रह्मचारिणी ही रहकर, अपना जीवन काटेगी।

तीनों परिवार साल्वी के साथ स्वामी राघवानंद के श्रीमठ पहुँचे। उन्हें आया देख रामानंद ने दौड़कर सभी के चरण स्पर्श किये तथा उन्हें ससम्मान भीतर ले गये। साल्वी पीछे खड़ी थी। उस पर रामानंद ने दृष्टि तक नहीं डाली। साल्वी अवश्य ही उसे दृष्टि भर देखती रही। रामानंद के मुख मोड़ते ही वह निराश हो गयी। उसके मन में एक नई चिन्ता ने जन्म ले लिया। वह स्वप्न के वैधव्य तथा युवा रामदत्त के आकर्षक व्यक्तित्व को क्षति न पहुँचाने के द्वन्द्व के बीच उलझती चली गयी। कभी सोचती, स्वप्न कब सत्य होते हैं। कभी सोचती, इस युवा शरीर की समाप्ति का उसे क्या अधिकार है। इस हत्या से तो अच्छा है वह स्वयं अविवाहित रह जीवन जी ले। विचारों का एक

गहरा अन्तर्द्वन्द्व उसे रह-रहकर मथ रहा था। उसका मन वहाँ नहीं लग रहा था। वह वहाँ से वापस लौटने का मन बनाने लगी थी।

रामानंद ने समय देखकर सबको गुरुवर स्वामी राघवानंदाचार्य से मिलाया। मुंडित केश श्रीराघवानंद ऊँचे काष्ठासन पर मेरुदण्ड सीधा किये विराज रहे थे। योग दीप्त ललाट पर तिलक चमक रहा था। श्वेत उत्तरीय से शरीर ढका था। अधोवस्त्र कटि से लिपटा घुटने ढक रहा था। एक-एक कर सबने चरण स्पर्श किये तथा भूमि पर बिछे फर्श पर काष्ठासन के आगे बैठते गये। रामानंद आसन के बांयी ओर खड़े हो गये। स्वामी राघवानंद ने रामानंद की ओर देखते हुए पूछा-

आप कौन?

ये (पुण्य सदन की ओर इंगित करते हुए) मेरे इस जन्म से पूर्व के पिताश्री हैं। प्रयाग से पधारे हैं। ये (ओंकारेश्वर त्रिपाठी की ओर इंगित करते हुए) मेरे मामा हैं। यहीं काशी में रहते हैं।

'आप काशी में ही हैं, कहाँ रहते हैं?'

'यहीं पंचगंगा घाट के ऊपर, कुछ दूरी पर।'

'कैसे पधारना हुआ?'

'वह जो बालिका दिख रही है, उसके साथ रामदत्त का सम्बंध करना तय किया है। ये (श्री शांडिल्य की ओर इंगित करते हुए) इस बालिका के पिता हैं। आपसे इस संबंध की स्वीकृति लेने आये हैं।'

'आप इस बालिका से ही पूछ लो। रामानंद जितनी भौतिक आयु लेकर आया था, वह तो पूरी हो चुकी है। यह तो इसका नया आध्यात्मिक जन्म है। (पुण्य सदन की ओर इंगित करते हुए) तुम्हारा यह पुत्र तो आपरूप भगवान् ही है। देश को वर्तमान विषम परिस्थितियों से उबार, सनातन संस्कृति की रक्षा हेतु इसका अवतरण हुआ है। मैं इसके हाथों में देश, धर्म और समाज का उज्ज्वल भविष्य सुरक्षित देख रहा हूँ। जीवन की परम शांति इसका वरण करने को प्रतीक्षातुर है।'

'स्वामी जी, यह पुण्य सदन, शांडिल्य जी को वचन दे चुका है।' (बीच में ही ओंकारेश्वर त्रिपाठी ने कहा।)

'आप दोनों ने (पुण्य सदन दम्पत्ति की ओर इंगित करते हुए) भगवान् वेणुगोपाल से इसे मांगा था न? तब भगवान् वेणु गोपाल ने आपसे क्या कहा था?' स्वामी

राघवानंद के यह कहते ही पुण्य सदन ने उठकर स्वामी जी के चरण पकड़ लिये। कहा- आप त्रिकालज्ञ हैं। आप सब जानते हैं। आप से क्या छिपा है। मैं एक पिता हूँ। मेरी भी कुछ भावनायें हैं।'

'यह सब भौतिक माया है। जो तुम्हें बांधे है। इसका मार्ग पूर्व निर्धारित है। आप हम तो निमित्त भर हैं। हमें भी विरक्त भाव से अपने निमित्त का निर्वाह करना है।' यह कहते हुए स्वामी राघवानंद ने अपना करतल जैसे ही पुण्य सदन के सिर पर रखा, उसका सारा मोह जाता रहा।

'आपने मेरी आँखें खोल दी। (शांडिल्य की ओर मुड़ते हुए) मुझे क्षमा करें। मैं अपनेवचन को नहीं निभा पाऊँगा। पुण्य सदन के यह कहते ही शांडिल्य तथा ओंकारेश्वर अवाक रह गये। (श्री राघवानंद के चरण स्पर्श करते हुए) 'कृतज्ञता के भार से दबा अपने को अनुभव कर रहा हूँ। अब मुझे भी आपकी सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं रुच रहा।

'आप आते जाते रहें। इसके प्रति ऐसा ही वात्सल्य भाव बनाये रखें। पर व्यवहार में आप इसे वेणीमाधव ही समझें।' स्वामी राघवानंद के ये कहते ही उपस्थित परिजनों के हृदय अपूर्व आनंद से भर गये। सबके मन में रामानंद के प्रति एक आध्यात्मिक भाव जग आया। सब एक टक रामानंद को देखते रह गये। स्वामी राघवानंद के चरणों में प्रणाम कर सबने विदा ली। सुशीला की आँखों से बहते हुए आँसू ने स्वामी राघवानंद के चरण भिगो दिये। उन्होंने आशीर्वाद रूप में जैसे ही उसके सिर पर हाथ धरा, उसके हृदय का मोह भी पंख लगाकर उड़ गया। साल्वी ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह अब आजीवन ब्रह्मचारिणी ही रहेगी। वह कभी रामानंद के पथ की बाधा नहीं बनेगी। पंडित शांडिल्य का मन अवश्य भारी था। आशाओं पर तुषारापात जो हो गया था। भारी मन से वे सभी के साथ जैसे ही ओंकारेश्वर त्रिपाठी के आवास पर पहुँचे पुण्यसदन से कहा 'लो यह पुस्तक रख लो।'

'यह क्या है?' ओंकारेश्वर ने पूछा।

'प्रयाग के कुमारिल भट्ट की पुस्तक मीमांसा। ये (पुण्यसदन) साथ लाये थे, कह रहे थे रामदत्त को बताऊँगा।' बीच में ही शांडिल्य ने कहा।

'इसमें क्या है?' ओंकारेश्वर ने पूछा।

'आपने नहीं पढ़ी क्या?' पंडित शांडिल्य से पूछा।

'नहीं।'

'लिखा है मनुष्य को जीवन में सन्यास से पूर्व एक बार गृहस्थ धर्म अवश्य अपनाना चाहिए।'

'यह तो ठीक है शांडिल्य जी। गृहस्थ धर्म नहीं अपनायेंगे, तो संसार चलेगा कैसे। संसार भी तो ईश्वर का ही सृजन है। उसी की लीला है। इसी बीच पुण्य सदन बोल उठे- 'अच्छा हुआ अभी ही बात साफ हो गयी। गौतम बुद्ध की तरह चोरी-छिपे जाता, तो साध्वी जीवन भर तड़पती रहती।' यह बात सुनते ही थोड़ी देर के लिए मौन छा गया। पंडित शांडिल्य का मन विद्रोह कर रहा था, पर बोले नहीं। ओंकारेश्वर ने ही मौन भंग करते हुए कहा-

'भारत में श्रमण एवं वैदिक दोनों जीवन पद्धतियाँ आदि से ही चली आ रही हैं।' समाज को मार्ग दर्शन के लिए, जहाँ सिद्ध पुरुष आवश्यक हैं, वहीं सृष्टि की निरंतरता के लिए गृहस्थ जीवन भी आवश्यक है। मुक्तात्मायें समय-समय पर आकर समाज जीवन को सत्पथ की ओर अग्रसर करती रहती हैं। देश और धर्म की रक्षा करती रहती हैं।

'आपका कथन ठीक है। वह परमात्मा जन्म से पहले ही हरेक का कर्म पथ निर्धारित कर देता है। कोई उत्पत्ति निरर्थक नहीं होती। बीच में ही पुण्य सदन शर्मा ने कहा।

'संसार में गृहस्थ जीवन ही मुख्य है। बिरले ही होते हैं, जो वीतरागी हों, संसार के मोह बंधनों को त्याग, मोक्ष पद पर आगे बढ़ते हैं। सारे तो विरागी होते नहीं। बीच में ही पंडित शांडिल्य ने कहा। यह सुनकर थोड़ी देर के लिए सब चुप रहे। न कोई वैराग्य की पुष्टि कर रहा था, न कोई गृहस्थ जीवन की। सबका अपना अपना मत था।

रात्रि विश्राम कर सभी वापस प्रयाग लौटने के लिए तैयार हुए। पंडित ओंकारेश्वर ने पुण्य सदन से इतना ही कहा- सुशीला को सम्भाले रखना। माता का हृदय बड़ा कोमल होता है। माँ ममत्व का समुद्र होती है। कहीं टूट न जाये।'

'यही चिंता मुझे सता रही है। स्वामी जी ने मेरे शीश पर हाथ क्या धरा, मन का सारा मोह जाता रहा।'

'स्वामीजी ने मुक्त कण्ठ से रामदत्त की कितनी प्रशंसा की है। आप धन्य हैं, जो इतनी बड़ी आत्मा आपके आंगन में आकर खेली है। उसकी किलकारियों से आपका आंगन गूंजा है।' त्रिपाठी जी का घर छोड़ते हुए व्यंग्य में यह बात पंडित शांडिल्य ने कही। व्यंग्य का अर्थ समझते हुए भी पुण्य सदन शर्मा मौन ही रहे। व्यंग्य को आगे

बढ़ाते हुए फिर पंडित शांडिल्य ने कहा- 'शर्मा जी कुमारिल भट्ट वाली मीमांसा तो ले ली न।'

इधर स्वामी राघवानंद ने रामानंद को अपने विशिष्टाद्वैती सम्प्रदाय का दीक्षा मंत्र दे, विधिवत् दीक्षित शिष्य बना लिया। प्राणायाम एवं समाधि में जाने और उतरने की विधि समझा दी तथा निरंतर साधना करते रहने का निर्देश दे दिया। किशोर रामानंद पंचगंगा घाट के ऊपर कुटीर में बैठ रामभाव की शब्द सुरति योग साधना में लीन रहने लगे। स्वामी राघवानंद शिष्य रामानंद की विद्वता तथा शास्त्रज्ञता से तो पहले से ही पूरी तरह संतुष्ट थे, उसकी विरक्ति का दिग्दर्शन भी उन्हें उस दिन हो ही चुका था। स्वामी राघवानंद शिष्य रामानंद में प्रकट होती दिव्यता देख मन ही मन प्रसन्न थे। पूरी तरह आश्वस्त होते ही उन्होंने योग पथ की समस्त साधनायें तथा अपनी यौगिक शक्तियाँ रामानंद को दे दी। रामानंद एक योगसिद्ध पूर्ण विरक्त संत हो गये। गुरु राघवानंद को विश्वास हो गया कि अब शिष्य रामानंद देश धर्म एवं समाज को, आसन्न विधर्मी संकट से उबार सकेगा तथा भक्ति की प्रबल धारा बहा, सनातन देश, धर्म को अक्षुण्ण बनाये रख सकेगा। स्वामी जी ने सभी श्रद्धालुओं की उपस्थिति में एक दिन रामानंद को विशिष्टाद्वैती विधि विधान के अनुसार चादर उढ़ा मठ का भावी महंत घोषित कर स्वयं दक्षिण के लिए प्रस्थान कर गये।

दक्षिण प्रस्थान से पूर्व स्वामी राघवानंद ने वहाँ षड अक्षर मंत्रराज की छः करोड़ आहुतियों वाले वृहद राम यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ के लिए तैंतीस वेदपाठी पंडितों की व्यवस्था की गयी। इन तैंतीस वेदपाठी पंडितों में, जिन्हें यज्ञ सम्पन्न करवाना था, सदाचार एवं धर्म निष्ठा के लिए प्रसिद्ध श्री तांत्या शास्त्री, कर्मकाण्ड में प्रवीण श्री कर्मठजी, नवयुवक छात्र विद्वान् श्री चतुर्वेदी तथा बड़े तपस्वी श्री धर्मराज भी सम्मिलित थे। इन तैंतीस याज्ञिकों के अतिरिक्त काशी के अन्य विद्वान पंडित भी आमंत्रित थे। बहुत बड़े विस्तृत क्षेत्र में यज्ञ वेदियाँ फैली हुयी थीं, जिन पर अध्वर्य विराजमान थे। यज्ञ आरम्भ हुआ। षड अक्षर मंत्र के साथ सुगन्धित हविष्यान्न की आहुतियाँ प्रज्ज्वलित वेदिका में डाली जाने लगीं। सस्वर षड अक्षर मंत्र ध्वनि से पूरी काशी गूंज उठी। यज्ञ चर्चा गली-गली घर-घर में होने लगी। उसे देखने भीड़ उमड़ने लगी। एक उच्चासन पर गुरुदेव राघवानंद, शिष्य रामानंद के साथ विराजे थे। उनके दर्शन कर काशीवासी अपने को धन्य मान रहे थे।

इससे पूर्व ही जब स्वामी रामानंद गुरुदेव श्री राघवानंद से आज्ञा लेकर पंचगंगा घाट पर नव निर्मित कुटीर में रहकर गुरु प्रदत्त शिक्षाओं की पूरी निष्ठा के साथ अभ्यास

साधना कर रहे थे, स्वामी रामानंद की उस साधना से प्रभावित होकर बड़े-बड़े योगी, यती, जपतपी, ज्ञान ध्यानी, पंडित विद्वान्, साधू सन्त सन्यासी, आपके पास आकर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान तथा संशयों का सटीक उत्तर पा बड़े अभिभूत हो रहे थे। आपके दिव्य शंख की ध्वनि तो समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्रभावित कर रही थी। इस प्रसरित अध्यात्म चेतना से लोग अपने भीतर दिव्यानुभूति प्राप्त कर रहे थे। सभी श्रीमठ खिंचे चले आ रहे थे।

चैत्र सुदी एकादशी को वह वृहद् रामयज्ञ सम्पन्न हुआ। बड़ा भंडारा हुआ। सभी ने मुक्त कण्ठ से उस वृहद् यज्ञ के सफल आयोजन के लिए गुरुदेव स्वामी राघवानंद की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उन्हें सिद्ध अध्यात्म पुरुष कहकर सम्मान दिया।

यज्ञ मंडप खचाखच भरा था। वहीं गुरुदेव ने अपने प्रस्थान की सूचना देते हुए शिष्य रामानंद को श्रीमठ का उत्तराधिकारी घोषित किया।

प्रस्थान की बात सुनते ही उपस्थित पंडितों, विद्वानों तथा धर्मप्रेमियों में चिन्ता की लहर दौड़ गयी। सब उठ-उठ कर गुरुदेव राघवानंद के चरण स्पर्श कर आशीष प्राप्त करने के लिए उमड़ पड़े।

सभी ने गुरुदेव से कुछ काल अभी और रुकने की प्रार्थना की। तब गुरुदेव का एक ही कथन था, शिष्य रामानंद एक दिव्य विभूति है। इसका अवतरण भारत भूमि से गौ, ब्राह्मण, माता, बहनों पर विधर्मियों द्वारा सतत हो रहे अन्यायपूर्ण अत्याचारों से मुक्ति दिलवाने हेतु हुआ है। मुझे विश्वास है, रामानंद के हाथों में देश का भविष्य सुरक्षित है। समाज का कल्याण होगा। देश में शांति होगी तथा रामभक्ति की गंगा घर-घर प्रवाहित होगी।

शिष्य रामानंद ने तभी उठकर गुरुदेव श्री राघवानंद के श्री चरणों में अपना मस्तक टेक दिया। उपस्थित जन 'जय हो जय हो' का घोष गुंजाने लगे।



तीन

रामानंद अब स्वामी रामानंदाचार्य हो गये थे। पंचगंगा की नवनिर्मित कुटीर छोड़ श्रीमठ में आ गये थे। मठ के गुहानुमा एक कमरे को उपयुक्त मान, उन्होंने उसके द्वार पर पर्दा लगवा लिया था। वे अकेले उसमें रहने लगे थे। बड़े तड़के गंगा घाट पर पहुँच नित्य नैमित्तिक कर्मों से निपट इसी गुहा में बैठ वैशिष्टाद्वैती दिव्य राम नाम साधना में लीन रहने लगे थे। सत्संग का समय पूर्वानुसार अपराह्न में ही रहा। बड़े सत्संग भवन में स्वामी रामानंद प्रतिदिन प्रवचन करने लगे थे। चारों समय शंख ध्वनि के अतिरिक्त सारी दिनचर्या पूर्ववत् ही थी। प्रातः दोहपर, संध्या तथा शयनपूर्व वे अपने साथ लाये उस दक्षिणावर्त शंख को बजाने लगे थे। इसके अतिरिक्त भी जब किसी पर आध्यात्मिक प्रभाव डालना होता था, अथवा गुहा से बाहर निकलना होता था, तब भी वे उसे बजाते थे। काशी वालों के लिए शंख ध्वनि एक चमत्कार से कम नहीं थी। उसे सुनने के लिए लोग दौड़े आते थे। आकर्षणी शक्ति के अतिरिक्त उस शंख ध्वनि में संजीवनी शक्ति भी एक दिन लोगों ने देखी। इधर तो मठ में शंखध्वनि हो रही थी, उधर मठ के नीचे के मार्ग से अर्थी लिये कुछ लोग गंगा की ओर जा रहे थे। शंख ध्वनि के प्रभाव से अर्थी में बंधा मृतक सहसा जीवित हो गया। इस घटना ने जहाँ श्रीमठ की कीर्ति में चार चांद लगा दिये, वहीं नवीन पीठाधीश स्वामी रामानंद की चमत्कारिक दिव्य शक्ति की भी, घर-घर चर्चा होने लगी। सत्संग में भीड़ की भीड़ उमड़ने लगी। सत्संग के बाद भी उपचारार्थ उन लोगों की भीड़ रहने लगी जो असाध्य रूप से रुग्ण अथवा मरणासन्न होते थे। वे शंखध्वनि की प्रतीक्षा में वहीं बैठे रहते थे। लोकसंग्रह एवं सेवा के भाव से स्वामी रामानंद ने मठ के द्वार सभी जातियों, वर्णों तथा समाजों के लिए खोल दिये थे। जात-पात, छूत-अछूत, स्त्री-पुरुष आदि का सारा भेद स्वामी रामानंद ने मिटा दिया था। स्त्रियाँ अपने बच्चों को ले, भारी संख्या में पहुँचने लगी थीं। औषधि की अपेक्षा आशीर्वाद पर स्त्रियों में विश्वास की भावना अधिक होती है। शंख ध्वनि एवं रामानंद एक हो गये थे। सत्संग में और उसके बाद भी भारी भीड़ रहने लगी थी।

स्वामी रामानंद की कीर्ति काशी की सीमाएँ तोड़ दूर-दूर विस्तारित होने लगी थी।

उसी आधार पर एकबार सुधावल की महारानी अपने यक्ष्मा पीड़ित पुत्र को लेकर स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुईं। स्वामी जी ने उन्हें ससम्मान बिठा, शांति से उनकी व्यथा-कथा सुनी। रानी ने कहा, 'सात पुत्रों में से यही एक बचा है। यह भी यक्ष्मा से पीड़ित है। बहुत दुःखी हूँ। पूरा राजवंश दुःखी है। यही राज्य की एकमात्र आशा है। यह भी इस स्थिति में है, कृपा कर बहू के सुहाग की रक्षा करते हुए, राज्य एवं जनता का कष्ट दूर करें। रानी से सारी करुण कथा सुन, स्वामी रामानंद का नवनीत समान मन मोम की तरह पिघल गया। स्वामी रामानंद ने कहा- 'राजकुमार स्वस्थ हो जायेंगे परन्तु आपको जैसा मैं कहूँ वैसा करना होगा।' रानी ने आंसू पोंछते हुए कहा, 'आप जैसा भी कहेंगे, उसकी अक्षरशः पालना होगी।' स्वामी जी ने कहा 'इसे गंगा में फेंक दें, सातवें दिन आकर इसे गंगा से मांग लेना, वह इसे नीरोग कर स्वयं तुम्हें दे देंगी।' बड़ा कठोर आदेश था। रानी यह सुनकर भौचक रह गयी। क्या कहें क्या न कहें, तभी भीड़ में से आवाज आने लगी, 'रानी जी बात मान लो, रानी जी बात मान लो, थोड़ा विश्वास करो, राजकुमार ठीक हो जायेंगे। बिल्कुल चिंता मत करो। श्रद्धालुओं के बार-बार अनुरोध ने रानी को शक्ति दी। स्वामी जी का आदेश मान, राजकुमार के साथ वह सीधे गंगा घाट पहुँची। राजकुमार स्वयं गंगा में कूद गया। बहुत देर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब राजकुमार बाहर नहीं निकला, तब एक बार फिर इस घटना को देखने आये श्रद्धालुओं ने कहा- 'रानी जी चिंता मत करो। स्वामी जी ने उन्हें अपनी शरण में ले लिया है। सातवें दिन आना। वे शरण में नहीं लेते तो राजकुमार एकबार अवश्य ऊपर आते। सभी आते हैं। रानी को भी इन बातों से थोड़ा विश्वास बंधा। हृदय कड़ा कर वे घाट से लौट आईं। इस दृश्य को देखने के लिए जुटी भीड़ धीरे-धीरे छँट गई। सातवें दिन रानी ने आकर ज्योंही गंगा मैया से राजकुमार को लौटाने की प्रार्थना की, उसी समय प्रसन्न मुद्रा में राजकुमार घाट पर आकर खड़ा हो गया। रोग का कहीं कोई चिह्न तक देह पर नहीं था। 'गंगा मैया की जय', 'स्वामी रामानंद की जय' के घोषों से गंगा तट गूंज उठा। रानी ने राजकुमार के साथ मठ में जाकर सर्वोपचारों से स्वामी जी का पूजन अर्चन किया तथा मठ में एक नया कक्ष बनाने की घोषणा की। राजकुमार के स्वस्थ होने तथा रानी द्वारा मठ में नया कक्ष बनवाने का समाचार पूरे नगर में फैलते देर न लगी।

एक दिन छन्नू नामक एक युवा प्रातः की शंख ध्वनि सुनकर मठ में आया। आते ही उसने स्वामी जी के चरणों में गिर निवेदन किया, 'स्वामी जी आपकी शंख ने मुझे मोह लिया है। उस समय मैं विश्वनाथ मंदिर में था। रात्रि जागरण से सीधा यहाँ भागा

चला आ रहा हूँ। मन कर रहा है, यहीं रहूँ और दिन रात इस ध्वनि को ही सुनता रहूँ। मुझे अपने चरणों में स्थान दीजिए।'

'तुम कौन हो? कहाँ के हो? किनके पुत्र हो?'

'मेरा नाम छन्नू है। मैं महेशपुर के पण्डित विश्वनाथमणि त्रिपाठी का पुत्र हूँ। आजकल काशी में ही रहता हूँ।

'यहाँ किसके पास रह रहे हो?'

'पण्डित श्यामाकिशोर जी के पास। अब वे दिवंगत हो गये हैं।'

'तो क्या अब वहाँ कोई नहीं है?'

'हैं तो सभी, पर शंख ध्वनि को सुनने के बाद, वहाँ रहने का मन नहीं रहा। अब यहीं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ।'

'यहाँ दिनभर क्या करोगे?'

आप जो भी काम बतायेंगे, वह करता रहूँगा।

(बहुत विचार के बाद) 'ठीक है, रहो।'

छन्नू आश्रम में पूरे मन से झाडू बुहारा करने लगा। शेष समय गुहा के बाहर बैठा स्वामी जी की सेवा में लगा रहता। शंख ध्वनि होती तो सारा काम छोड़ पूरी तन्मयता से उसे सुन, झूम उठता। नाचने लगता। पूरे एक वर्ष तक समर्पित भाव से उसने निष्ठापूर्वक मठ की एवं स्वामी जी सेवा करते हुए स्वामी जी का हृदय जीत लिया। स्वामी जी बड़े दयालु थे। सोचने लगे ब्राह्मण बालक है, विद्वान् भी है। क्यों न इसे मंत्र दीक्षा दे, शिष्य बना लिया जाये। स्वामीजी की दिव्य दृष्टि से क्या छिपा था। छन्नू का पूरा भविष्य उनके सामने था। उन्होंने पंच संस्कार पूर्वक मंत्र दीक्षा देकर उसे अपना शिष्य बना, नया नाम दे दिया, अनंतानंद। छन्नू अनंतानंद नाम से स्वामी जी का प्रथम शिष्य हो गया। अब अनंतानंद झाडू बुहारा करने वाला छन्नू न रहकर, वहाँ का एक अधिकारी शिष्य हो गया। आश्रम का समस्त दायित्व, उसके जिम्मे आ गया। आगंतुकों को सम्मान के साथ बिठाने, स्वामी जी से मिलाने का सारा काम वही देखने लगा। साथ ही नियमपूर्वक स्वामीजी की सेवा करने लगा। धीरे-धीरे वह स्वामी रामानंद के निजी सेवक के रूप में पहचाना जाने लगा।

स्वामी रामानंद ने आश्रम के द्वार सभी वर्णों, वर्गों तथा जातियों के लिए क्या खोले, काशी के जुलाहे कबीर के मन में भी शिष्य बनने की लालसा जग उठी। वह

प्रतिदिन सत्संग में आने लगा। स्वामी जी के प्रवचनों तथा जाति-पाति से ऊपर उठे, आत्म भावी, उनके विचारों को सुनकर, उसके मन में शिष्य बनने की लालसा घनीभूत होकर मथने लगी। उसने शिष्य अनंतानंद के द्वारा, स्वामी जी से निवेदन भी कराया, परन्तु स्वामी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। इस पर भी कबीर ने सत्संग में आना नहीं छोड़ा। कबीर ने सोचा, स्वामी जी बड़े तड़के पंचगंगा घाट पर स्नानार्थ जाते हैं। क्यों न इनसे पहले, वहीं अंधेरे में सीढ़ियों पर लेट, इनका चरण स्पर्श कर लूँ। प्रत्यक्ष निवेदन का इससे अधिक अच्छा और कौनसा स्थान एवं अवसर होगा। कबीर ने ऐसा ही किया। अंधेरे में जैसे ही उस पर पैर पड़ा,स्वामी जी बोले-

'कौन?'

'मैं कबीर।'

'राम राम राम', कहते हुए रामानंद एक ओर होकर सीढ़ियाँ उतर गये। कबीर प्रसन्न-प्रसन्न घर लौट आया। घर आते ही उसने अपने ललाट पर रामानंदी तिलक लगाया। गले में तुलसी की माला पहनी तथा राम अंकित चादर ओढ़ ली। साथ ही सारे शरीर पर चंदन से राम-राम लिख बाजार में आ गया। कबीर के इस परिवर्तित रूप को देख, बाजार दंग था। एक ने पूछ ही लिया- 'कबीर यह क्या?'

'मैं रामानंद का दीक्षा प्राप्त शिष्य हो गया हूँ।' धीरे-धीरे यह बात मठ तक भी पहुँच गयी, कबीर जब सत्संग में पहुँचा, तब अनंतानंद उन्हें स्वामी रामानंद से मिलाने ले गये। पर्दे के भीतर से स्वामी जी ने पूछा-

'कबीर हमने तुझे कब अपना शिंष्य बनाया, कब मंत्र दीक्षा दी?'

'गंगा घाट पर आपने कृपा पूर्वक चरण शरण दे तथा श्रीमुख से राम-राम की मंत्र दीक्षा देकर। उसी दिन से यह रामानंदी वेश धारण कर लिया है। दिनरात श्वास प्रश्वास के साथ राम-राम रट रहा हूँ।'

यह सुनते ही रामानंद के हर्ष का पारावार नहीं रहा। वे कबीर की अनन्य निष्ठा से प्रसन्न होकर पर्दे से बाहर आ गये। आते ही कबीर को गले से लगा लिया। 'तुम वर्तमान के एकलव्य हो। तुमने तो हठपूर्वक मुझसे शिष्यत्व ले लिया। राम नाम के प्रति यह अनन्य निष्ठा ही रामानंदी भक्ति है। सत्संग में आते रहो। राम नाम जपते रहो।'

'कबीर ने झुककर स्वामी रामानंद के चरणों में अपना सिर रख दिया। 'यह शरीर अब आपके ही सुपुर्द है।' स्वामी रामानंद का नवनीत सा करुणार्द मन मोम सा पिघलना ही था। अनंतानंद, इसे विधिवत् सम्प्रदाय का तिलक, कंठी, चादर, कमण्डल तथा

मंत्र देकर दीक्षित कर दो।' उसी दिन कबीर दीक्षा मंत्र पाये पहले गृहस्थ शिष्य हो गये। कबीर स्वामी रामानंद प्रदत्त धर्म साधना में लीन रहने लगे। नित्य शब्द सुरति योग की राम नाम साधना निष्ठापूर्वक करने लगे। गुरुकृपा से अनंतानंद की तरह कुछ समय में ही कबीर ने भी चौथी सीढ़ी के दर्शन कर, सिद्धता अर्जित कर ली। जुलाहा कबीर से संत कबीर हो गये।

स्वामी रामानंद के प्रतिदिन के एकात्मवादी प्रवचनों में समदृष्टि से प्राणी मात्र को देखने, जीवहत्या नहीं करने, अहंकार छोड़ सबके साथ समान व्यवहार करने जैसे वाक्यों ने काशी की जनता पर गहरा प्रभाव छोड़ा। शंखध्वनि का आकर्षण पहले से ही जनता को अपनी ओर खींच रहा था। जुलाहे कबीर के स्वामी रामानंद के शिष्य बनने की चर्चा ने धर्मान्तरणवादी, कट्टरतावादी जिहादियों को भी सोचने को विवश किया। वे भी बैठ सोचने लगे, स्वामी रामानंद कोई सामान्य पुरुष नहीं, परम पुरुष का ही प्रत्यक्ष विग्रह है। इससे मतान्तरण की, जबरन बलात्कार की प्रतिदिन होने वाली घटनाओं में बहुत कमी आ गई। भारतीय सिद्ध पुरुषों के प्रति सहसा श्रद्धा बढ़ गई। इसी समय घटी एक और घटना ने इसे और भी बल दिया।

प्रसिद्ध शृंगेरी मठ के शंकराचार्य श्री भारती तीर्थ अपनी भारत धर्म यात्रा करते हुए भगवान् विश्वनाथ के दर्शनार्थ काशी पधारे थे। उनके साथ उनके छोटे भाई श्री माधवाचार्य भी थे। श्रद्धावश पूरी काशी उनके स्वागत में पलक पाँवड़े बिछा रही थी। नगर भ्रमण के समय महिलाओं ने आरती उतार अपना नैवेद्य समर्पित किया था। व्यापारियों में, दुकानों से उतर-उतर, माल्यार्पण करने तथा चरण स्पर्श करने की होड़ लगी थी। पुष्प वर्षा ने काशी का बाजार पाट दिया था। नगर में एक पर्व जैसा वातावरण बन गया था। श्रीमठ से भी यह समाचार अनसुना नहीं रहा। उधर श्री भारती तीर्थ से भी, श्रीमठ के स्वामी रामानंद की यौगिक प्रसिद्धि अनसुनी नहीं रही। उनके दिव्यत्व की कथा सुनते-सुनते शंकराचार्य के मन में भी स्वामी रामानंद के दर्शन की इच्छा बलवती हो उठी। वे दिन के खुले में जाने से यह सोचकर संकोच कर रहे थे कि जिनके चरणों में जगत् झुक रहा है, वे स्वयं आगे रहकर कैसे श्रीमठ जाये। भारती तीर्थ इस उलझन में पड़कर भी, दर्शन की आकांक्षा को दबा नहीं पाये। सान्ध्य आरती के पश्चात् वे चुपचाप अनुज माधव एवं वहाँ के एक सेवक को लेकर, बिना किसी से कहे, श्रीमठ के लिए चल दिये। मठ का द्वार बंद था। स्वामी रामानंद ध्यानस्थ थे। उनकी ध्यानस्थ देह से विकीरित होती ऊर्जा से सारा मठ चैतन्यमय हो रहा था। भारतीय तीर्थ जैसे ही द्वार पर पहुँचे, उन्हें अपने में एक अद्भुत चेतना संचरित होती प्रतीत हुई। चित्त

स्वतः भीतर स्थित आत्मा में लीन होने लगा। साथ आये सेवक ने द्वार खटखटाया। पट्ट शिष्य अनंतानंद ने स्वयं आकर द्वार खोला। सम्मुख विशिष्ट आदरणीय अतिथि देख, अनंतानंद उन्हें पूर्ण सत्कार एवं सम्मान के साथ भीतर ले गये तथा गुहा के सामने रखे काष्ठासन पर बिठाया। उसी समय भीतर से घंटी बजी। शंखध्वनि हुई, शंखध्वनि की प्रसारित तरंगों ने भारती तीर्थ को योग निद्रा में लीन कर लिया। वे देव दुर्लभ आनंद में डूब गये। जैसे ही शिष्य अनंतानंद ने गुहा का पर्दा हटाया, भारती तीर्थ की एकाग्रता सहसा भंग हो गयी। वे सम्भ्रम में उठे तथा स्वामी रामानंद के चरणों में झुक गये। स्वामी जी ने उन्हें बीच में ही दोनों हाथों से रोकते हुए कहा- 'यह क्या, अपने जगत् गुरु वाले स्वरूप को सँभालिये। उस प्रतिष्ठा की रक्षा कीजिए।'

'सन्यास का साक्षात् पुण्य आपके त्रैलोक्य दुर्लभ दर्शन से प्राप्त हो गया।'

'यह तो विरक्तों का कुटीर है। पधारने से पूर्व सूचना भी नहीं करवाई। प्रतिष्ठा के अनुरूप सत्कार की व्यवस्था नहीं कर सका।'

'आपका दर्शन सारे सत्कारों से बड़ा सत्कार है। मेरी, काशी आगमन की इच्छा, विश्वनाथ ने पूर्ण की। आपकी कीर्ति सुनी, तभी से आपसे मिलने की उत्कट इच्छा जगी थी, आप वर्तमान में विरक्तों में मूर्धन्य हैं। हंसों में परमहंस है। चाहता हूँ, इस अनुज माधव के सिर पर आप अपना वरद हस्त रख, आशीर्वाद प्रदान करने का कष्ट करें, ताकि यह ऋषित्व प्राप्त कर समाज एवं धर्म की कुछ सेवा कर सके तथा सच्चा संयासी बन सके।'

'आचार्य आप तो सुविज्ञ हैं, कर्तृत्वाभिमान का त्याग ही सच्ची सन्यास निष्ठा है। कर्तृत्वाभिमान के रहते कर्म फल भी नहीं मिलता। कर्तृत्वाभिमान तभी जाता है जब चित्त आत्मस्थ हो जाये।'

'यह सब आपके आशीर्वाद से ही संभव है। आप ही इसे आत्म ज्ञान करवा सकते हैं। क्षेत्रज्ञ के दर्शन करा सकते हैं। विश्व में इस समय आपके स॰ान दूसरा सिद्ध पुरुष नहीं है। अपनी कृपा से इसे कृतार्थ कीजिए।'

भारती तीर्थ के यह कहते ही संकेत प्राप्त माधव ने, स्वामी रामानंद के चरणों में झुककर विनत प्रणाम किया। स्वामी रामानंद ने माधव के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रख, जैसे ही शंख ध्वनि की, सारा वातावरण चिद्शक्ति से सम्पन्न हो गया। स्वामी रामानंद ने शंकराचार्य से कहा माधव में ज्ञानाग्नि का उदय हो गया है। इसे अपने पूर्व जन्मार्जित संस्कारों का ज्ञान हो गया है। यह ऋषि हो गया है। आवश्यकता है अब

यह एकान्त में निरंतर शब्द सुरति योग रूपी राम नाम की साधना करता रहे। स्वामी रामानंद ने पुनः शंख ध्वनि की। माधव की समाधि लग गई। उस स्थिति को देख शंकराचार्य भाव विह्वल हो गये। बद्धकरांजलि कहने लगे 'कृतार्थ हो गया।' माधव की जैसे ही समाधि टूटी, उसने पुनः चरणों में झुक अपना विनम्र प्रणाम निवेदन किया। शंकराचार्य ने आसन से उठते हुए कहा 'आज्ञा दीजिए, आपको बहुत कष्ट दिया।' स्वामी रामानंद ने द्वार तक उनके साथ जाकर उन्हें सादर विदा किया। भारती तीर्थ ने जाते-जाते मुड़कर कहा 'इसीलिए इस समय अकेला आया हूँ। आपके दर्शन के बाद मुझे यह सब बताते अब कोई भय नहीं रहा है। आप दिव्य मूर्ति हैं, साक्षात् राम रूप हैं।'

सुबह ही काशी भर में शृंगेरी मठ के शंकराचार्य श्री भारती तीर्थ के छिपकर श्रीमठ में स्वामी रामानंद से मिलने का समाचार मिर्चगंध की तरह फैल गया। इस मिलन से स्वामी रामानंद के प्रति जनश्रद्धा का ज्वार हृदय-हृदय में उमड़ पड़ा। श्रीमठ में अपराह्न के सत्संग के समय इतनी भीड़ उमड़ी कि पैर रखने को स्थान नहीं बचा। स्वामी रामानंद ने सभी जातियों के लिए मठ के द्वार पहले से ही खोल रखे थे। इसलिए उन जातियों के लोग भी प्रवचन सुनने तथा स्वामी जी के दर्शनार्थ सत्संग में आये जिन्हें काशी की प्रजा ने अछूत कहकर ठुकरा रखा था। स्वामी रामानंद ने मठ के द्वार सभी के लिए खोल दीन दलितों को मानवीय प्रतिष्ठा प्रदान की थी। आने वालों में रैदास नाम का चर्मकार भी था। वह अपनी स्थिति अनुसार दीवार से सटकर एक ओर सिमटकर बैठ गया। स्वामी जी ने हमेशा की तरह अपने प्रवचन में समाज से छुआछूत मिटाने, ऊँच नीच का भाव हटाने तथा उदार हृदय से वंचितों, दलितों तथा शोषितों की सेवा करने का उपदेश दिया। स्वामी जी ने कहा- 'सभी प्राणियों में वही एक परमात्मा के साथ जीव में बैठा है। इसी भाव से सबको देखना ही सही देखना है। परम प्रभु राम की भक्ति ही मुक्ति का साधन है। परब्रह्म राम में अनुरक्ति ही भक्ति है। विवेक, विमोह, अभ्यास, क्रिया, लोककल्याण, अनवसाद, अनुद्धर्ष तथा ध्यान बोधक यम-नियम ही भक्ति के सोपान हैं। मोक्ष की उपलब्धि में यही भक्ति साधना सहायक है। श्वास-प्रश्वास के साथ तेल धारावत राम नाम स्मरण ही इसका लक्ष्य है। सिर पर शिखा, ललाट पर तिलक, गले में कण्ठी तथा हाथ में तुलसी की माला धारण कर उस परब्रह्म राम में प्रेमासक्त होकर जगत् का कल्याण करना ही प्रभु भक्ति का लक्ष्य है। स्वामी जी के इस प्रवचन ने युवा रैदास के भक्त मन के सुप्त संस्कारों को जगा दिया। वह प्रतिदिन प्रवचन में आने लगा। वहाँ ठहरकर मठ की सेवा करने लगा। पट्ट

शिष्य अनंतानंद का तो वह विशेष कृपापात्र हो गया। एक दिन उसने अपने मन का भाव अनंतानंद के सामने व्यक्त कर दिया- 'मैं भी स्वामी जी का दीक्षा मंत्र प्राप्त शिष्य होना चाहता हूँ।' अनंतानंद ने उस समय इतना ही कहा- 'देखेंगे। आते रहो। गृहस्थी से विरक्ति लेते रहो।

एक दिन उचित समय देख पट्ट शिष्य अनंतानंद ने स्वामी जी से कहा इस समय हिन्दू समाज पर विधर्मियों के अत्याचारों का सिलसिला निरंतर बढ़ता जा रहा है। बलात् धर्मान्तरण हो रहा है। महिलाओं का शील सुरक्षित नहीं रह रहा है। इनकी रक्षा होनी चाहिए। हिन्दू समाज विभिन्न जातियों में बंटा हुआ है। ऊँचनीच के चक्कर में बुरी तरह फँसा हुआ है। संकट की इस घड़ी में हिन्दू समाज की एकता बहुत आवश्यक है। समरसता का वातावरण निर्माण होना चाहिए। संगठित हिन्दू समाज ही इस आपत्ति का सामना कर सकता है। यदि कृपा हो जाये तो श्रद्धालु भक्त रैदास को भी पंच संस्कार युक्त मंत्र दीक्षा प्रदान कर दें, ताकि इस अछूत कहे जाने वाले समाज में भी एकत्व का भाव निर्मित हो सके। इससे धर्मान्तरण भी रुकेगा। कबीरदास की दीक्षा के बाद विधर्मियों की कुटिल सोच थमी है। धर्मान्तरण कम हुआ है। इस पर स्वामी जी ने कहा-

'अनंतानंद भारत से इस अध्यात्म ज्ञान को कोई नहीं मिटा सकता। देखना एक दिन वह आयेगा, जब सारा विश्व इसी अध्यात्म ज्ञान के लिए दौड़ा-दौड़ा भारत आयेगा और उसका भौतिक मन यहीं शांति पायेगा। मुक्तात्माएँ सब देख रही हैं। वे अपने अध्यात्म ज्ञान से सनातन संस्कृति को तथा इस प्रताड़ित भारतीय समाज को उपकृत करने वाली हैं। भक्ति का ऐसा प्रवाह बहने वाला है कि उस भक्ति धारा में आक्रांता विधर्मी स्वयं बहते दिखेंगे। क्या रैदास दीक्षा मंत्र लेना चाह रहा है।'

'हाँ गुरुदेव, उसने अपनी इच्छा प्रकट की है। इस युग में गलित अभिमान, अहंकार शून्य यह वंचित समाज ही वास्तव में संत बनने की पात्रता रखता है। इन्हें कुलीनों के गुरु तो दीक्षा देने से रहे। यह मठ ही इन्हें गले लगायेगा। सगुण-निर्गुण के बीच का सहज मार्ग, राम नाम स्मरण रूपी शब्द सुरति योग ही, विभिन्न देवी-देवताओं में बँटे, कट्टरता से अपने-अपने सम्प्रदायों में डटे इस, वृहद् भारतीय समाज को एक कर सकता है। सगुण निर्गुण के बीच यही एक समन्वय का मार्ग है। सभी धर्मावलम्बी तथा कट्टर से कट्टर सम्प्रदायवादी भी मोक्ष कामी हैं। मोक्ष का यही सबसे सरलतम मार्ग है। आज विश्व में आप ही मोक्ष को मुक्त हस्त से लोक कल्याण के लिए लुटा रहे हैं।

'अनंतानंद तुम्हारा कहना ठीक ही है। रैदास से कह देना।'

दूसरे दिन सत्संग के बाद जैसे ही रैदास आशा भरी दृष्टि से अनंतानंद के निकट आकर खड़ा हुआ, शिष्य अनंतानंद ने कहा- 'रुको श्रोतागणों को चले जाने दो।' रैदास एक ओर खड़ा होकर प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद ही अनंतानंद ने इंगित से ही रैदास को पास आने के लिए कहा। रैदास ने निकट पहुँच स्वामी जी को साष्टांग मुद्रा में प्रणाम किया तथा उठकर स्वामी जी के सामने करबद्ध खड़ा हो गया। स्वामी जी ने कहा, आता रह। राम राम जपता रह। वह तुझे स्वयं बुला लेगा। एक दिन रैदास भी स्वामी रामानंद के मंत्र दीक्षा प्राप्त दूसरे गृहस्थ संत हो गये। रैदास गले में तुलसी माला पहन, माथे पर तिलक लगा, रामनामी ओढ़, केश मुंडाये काशी में घूमने लगे।

कबीर को शिष्य बनाने पर ब्राह्मण समाज ने जैसा तीव्र विरोध प्रकट किया था, उसकी शब्दावली अभी ठण्डी भी नहीं पड़ी थी कि रैदास को शिष्य बना अपना लेने पर, बड़ी घोर प्रतिक्रिया हवाओं में गूंजने लगी। ब्राह्मणों की यह प्रतिक्रिया, स्वामी रामानंद के कानों तक जैसे ही पहुँची, उन्होंने दूसरे दिन सत्संग में कहा- लोग अपने को ब्राह्मण तो कहते हैं, लेकिन वे ब्रह्मभाव में पलभर भी नहीं विचरते। जीवन के चरम लक्ष्य को भूले हुए हैं। जानकर भी अनजान बने हुए हैं। अपनी जातीय उच्चता में जी रहे हैं। व्यक्ति कर्म से छोटा और बड़ा होता है। ऊँचा और नीचा होता है। जो हरि का नाम तक नहीं लेता, वह कैसे बड़ा और कैसे ऊँचा होगा। भौतिक सम्पदा का अहंकार तो मिथ्या है। यह तो नश्वर को गले लगाना है। उस अनश्वर को, जो अपने भीतर बैठा है, जान लेना ही सच्चा ज्ञान है, सच्ची भक्ति है, सच्चा कर्म है। सब कुछ उसकी मुट्ठी में है। फिर उसका भक्त कैसे दरिद्र है। कैसे निर्धन है। कैसे नीचा है, कैसे छोटा है। संतोषी सदा सुखी। संतोष सबसे बड़ा धन है। झूठे बड़प्पन में जीने वालों ने ही देश को दुर्बल किया है। मुख से अद्वैत की बातें करते हैं और आचरण से पूरा द्वैत जीते हैं। वैराग्य की बातें करते हैं और पूरी तरह राग में डूबे हुए हैं। विधर्मियों का विस्तार इसी दुर्बलता के कारण हो रहा है। समरसता, एकात्मकता तथा आत्मीय भाव आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।' स्वामी रामानंद ने परोक्ष रूप से काशी के ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया का उत्तर आज के प्रवचन में देकर नवीन शिष्य रैदास का उत्साहवर्धन किया।

स्वामी रामानंद का सर्वस्पर्शी अभियान, मुक्त हस्त दीक्षादान तथा सगुण एवं निर्गुण के बीच सेतुरूप राम नाम रूपी शब्द सुरित योग का प्रचलन काशी में ही नहीं, दूर-दूर के धर्म स्थलों तक में चर्चा का विषय बन चुका था। प्रतिदिन बड़ी संख्या में

मोक्ष की कामना लिये हुए मुमुक्षु आने लगे थे। तब स्वामी रामानंद ने दायित्व भार को कम करने की दृष्टि से अपने प्रथम शिष्य अनंतानंद को दिव्य शक्तियों से अलंकृत करना प्रारम्भ कर दिया। साधना की चौथी सीढ़ी तक पहुँचा, ध्रुव लोक का साक्षात्कार करवा दिया। एक दिन समय निकाल एकांत में बिठा, स्वामी रामानंद ने तारक मंत्र का गुप्त रहस्य समझाकर, उसे निहाल कर दिया। स्वामी जी ने कहा- 'मंत्र में मूर्ति को प्रत्यक्ष करने की ही शक्ति नहीं होती, अन्य-अन्य प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति भी मंत्र शक्ति सहजता से कर देती है। मंत्र स्वयं शक्ति स्वरूप है। इसके सामर्थ्य की कोई सीमा नहीं है। इसी तरह उचित अवसर देख स्वामी रामानंद ने अनंतानंद को परम गुह्य तत्व का उपदेश देते हुए समझाया 'तीनों प्रकार के जप चारों प्रकार के अजपाजप तथा आठों प्रकार के पराजप, जिसे सिद्ध हो जाते हैं, उसे भौतिक मोह कभी विचलित नहीं करते। वह साधक को समस्त शक्तियों से विभूषित कर देते हैं। साथ ही वह गुणातीत सर्वज्ञ, अंत समय में सूर्य मण्डल को भेदकर निकल जाता है। मंत्र राज का वह दृष्टा, वह विरक्त, वह ब्रह्म विरही, अमरत्व को प्राप्त हो जाता है। इसी तरह एक दिन साधना में अंतिम छोर पर पहुँचे अनंतानंद को स्वामी जी ने पृथक से अपने शिष्य बनाने का भी अधिकार प्रदान कर दिया। अनंतानंद शिष्य से आचार्य हो गये। स्वामी रामानंद चाहते थे, सिद्धि प्राप्त संतों की ऐसी बड़ी शृंखला खड़ी कर दूँ जो देश में विधर्मियों की फैली अराजकता को तथा धर्मान्तरण को रोक सके। प्रताड़ित हिन्दू समाज को सनातन धर्म व संस्कृति से जोड़े रख सके। अनंतानंद को इसी भाव से स्वामी रामानंद ने सर्वसिद्धि सम्पन्न दीक्षा तथा समर्थ आचार्यत्व दिया था।



चार

धोलागिरि के एक सिद्धनाथ योगी कृपाशंकर आकाशमार्ग से अपनी जमात के साथ कहीं जा रहे थे। उसी समय बड़ी तेज आंधी ने उन्हें आकाश में उद्विग्न कर दिया। दोपहरी की धूप अलग काट रही थी। स्वामी रामानंद दिव्य दृष्टि से इस दृश्य को देख रहे थे। एक ओर तो उन्होंने अपनी मानसी शक्ति से योगी कृपाशंकर के भीतर आकाश से उतर, मठ में कुछ क्षण विश्राम करने का भाव जगाया, वहीं आचार्य अनंतानंद ने नव निर्मित सत्संग भवन में उनको ठहराने तथा स्वागत सत्कार की व्यवस्था करने को कहा। जैसे ही नाथ योगी कृपाशंकर ने नीचे उतर, मठ में प्रवेश किया, उन्हें भवन में गलीचे बिछे मिले। आचार्य अनंतानंद जलपात्र लिये द्वार पर ही खड़े थे। योगी कृपाशंकर इस पूर्व व्यवस्था से चमत्कृत हो, सोचने लगे, जब चेला ही इतना सिद्धि प्राप्त है, तो गुरु कितने पहुँचे होंगे। उन्होंने अनंतानंद से कहा- 'हम आपके गुरुदेव के दर्शन करना चाहते हैं।' तब आचार्य अनंतानंद ने कहा 'पहले आप विराजिये तो सही, स्वयं गुरुदेव आपको दर्शन देंगे। थोड़ी देर में ही पर्दा हटा। स्वामी जी बाहर आये, योगी कृपाशंकर ने पूरे जमात के साथ साष्टांग प्रणाम किया। स्वामी रामानंद ने उन्हें प्रेम से उठा, गले लगाया तथा अपने पास बिठाया। दिव्य मूर्ति के दर्शन कर नाथ योगी कृपाशंकर अत्यधिक अभिभूत थे। करबद्ध बोले- 'क्षमा करें, इस चिलचिलाती दोपहरी में आपको कष्ट दिया। कृपा कर अपना यह वरद हस्त मेरे सिर पर धर, मेरे भीतर भी वह विरहाग्नि प्रज्ज्वलित करें, ताकि परम् तत्व का साक्षात्कार हो सके। आप आध्यात्मिक सिद्धांत के साथ-साथ शास्त्रों के भी परम् विद्वान् हैं। आप ही अपने अगाध ज्ञान से, वेदों की अनेक शाखा प्रशाखाओं तथा आगमों के उलझे रहस्यों से, मन में जगे संदेहों का निवारण करने में आज इस पृथ्वी पर समर्थ एवं सक्षम संत हैं।' कुछ विचार के बाद स्वामी जी बोले- 'योगी वही है जो सम्भूति तथा असम्भूति को एक ही में पर्यवसित हुआ मानता है। यति भी वही है जो वैकारिक अहंकार की स्थिति में भी, कभी कंचन कामिनी का स्पर्श नहीं करता। सती वही है जो पुरुष के साथ रहते हुए भी, अपनी चारित्रिक सुदृढ़ता पर, स्वतंत्र रूप से अपना अधिकार रखती है। अपनी निगमागम सम्बन्धी शंकाओं का सहज समाधान पाकर, योगी कृपाशंकर बहुत गदगद् हुए।

दोपहरी ढल गयी थी। झंझावात निकल गया था। योगी कृपाशंकर ने बार-बार प्रणिपात करते हुए, आश्रम से विदा ली।

स्वामी जी की यौगिक शक्तियों की कीर्ति दिग्दिगंत में फैलने लगी थी। कुछ समय बाद राजस्थान के गागरोन गढ़ के राजा प्रतापराय, जिन्हें प्रेम से लोग पीपा जी के नाम से पुकारते थे, अपने दल-बल के साथ, शिष्य बनने की लालसा से श्रीमठ पहुँचे। श्रीप्रताप राय प्रारम्भ में शाक्त परम्परा के उपासाक थे। देवी दुर्गा के घनघोर आराधक थे। बलि देकर हवन गंध से देवी को प्रसन्न किया करते थे। देवी भी उनकी अनन्य निष्ठा से अत्यधिक प्रसन्न थी। एक बार राजा प्रतापराय ने विशाल स्तर पर विद्वान् कर्मकाण्डी आचार्यों को बुलवाकर, देवी यज्ञ का आयोजन किया। जिस समय बलि उपरांत आहुतियाँ दी जा रही थीं तथा ज्वालाएँ अंतरिक्ष के वातावरण को गंधायित कर रही थीं, तभी देवी ने प्रकट होकर कहा 'मांग, क्या मांगना चाहता है?' तब राजा प्रतापराय ने कहा, 'मुझे मोक्ष चाहिए।' देवी ने कहा, 'मोक्ष के अतिरिक्त तू और कुछ भी मांग ले, मैं तुझे दूंगी। मोक्ष मैं नहीं दे सकती।' राजा ने कहा 'मुझे मोक्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए।' तब देवी ने कहा, 'देवता भौतिक इच्छाएँ ही पूरी कर सकते हैं, आध्यात्मिक नहीं। मोक्ष के लिए तो तुझे यहीं किसी सिद्ध पुरुष को पहले गुरु बनाना होगा। बिना गुरु कृपा के मोक्ष प्राप्त कर सकना असंभव है।' इस पर राजा ने कहा 'मैं नहीं जानता कि यहाँ कौन सिद्ध पुरुष है। वह आप ही बतायें।' इस पर देवी ने कहा, इस समय काशी में रामानंद नाम के सिद्ध पुरुष हैं, वे तुम्हें मोक्ष दिलवा सकते हैं।' इस पर राजा ने देवी को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा आपने मुझे मोक्ष का मार्ग बताया, मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ।'

राजा प्रतापराय ने, दल बल के साथ श्रीमठ पहुँचते ही, अपने सेवक को भेजकर स्वामी जी से कहलवाया कि गागरोन गढ़ से राजा पीपा, आपकी शिष्यता ग्रहण करने के भाव से, सेवा में आये हैं। आचार्य अनंतानंद ने यह समाचार स्वामी जी तक पहुँचाया। स्वामी जी ने कहा, 'जब शिष्यता ग्रहण करने ही आये हैं तो इतने बड़े फौज फांटे की क्या आवश्यकता थी। पहले इसे वापस भिजवाओ।' राजा ने निर्देश तुरंत पालन किया। राजा ने फिर आचार्य अनंतानंद से निवेदन करवाया। इस पर भी स्वामी जी ने कहा 'शिष्य ही बनना है तो देह पर ये राजसी वेश तथा स्वर्णाभूषण क्यों हैं?' राजा ने शरीर पर धारण किये हुए सारे आभूषण उतार, वापस भिजवा दिये। फिर स्वामीजी से कहलवाया, तब स्वामीजी ने कहा 'जैसा मैं कहूँ, वैसा राजा करने को तैयार है क्या?' जब राजा ने कहा 'मैं भगवती देवी दुर्गा के निर्देश पर सारा राजपाट

छोड़कर स्वामीजी की शिष्यता ग्रहण करने के लिए आया हूँ। जैसा स्वामीजी कहेंगे वैसा करने को तैयार हूँ। तब स्वामी जी ने कहलवाया कि दौड़कर कुएं में जा गिरो। राजा जैसे ही कुएँ की पाल पर चढ़ कूदने ही वाले थे कि अचानक प्रकट हो आचार्य अनंतानंद ने हाथ बढ़ाकर उन्हें रोक लिया। आचार्य अनंतानंद अपनी दिव्य शक्ति से वहाँ, पहले से ही पहुँचे हुए थे। अनंतानंद जी राजा को लेकर स्वामी जी के निकट पहुँचे। स्वामी जी ने पहली बार पर्दे से बाहर आकर, राजा को अपने दिव्य दर्शन दिये। राजा ने प्रणिपात कर अपनी श्रद्धा निवेदित की। स्वामी जी ने कहा- 'कुछ दिन यहीं रहो। आचार्य अनंतानंद इनकी सुविधाओं का ध्यान रखना। उचित समय पर इन्हें दीक्षामंत्र मिलेगा।' यह कहकर स्वामी जी वापस गुहा में पधार गये। राजा कुछ दिन मठ में आचार्य अनंतानंद के निर्देश में रहे। एक दिन स्वामीजी ने उन्हें बुलाकर पंच संस्कार युक्त मंत्र दीक्षा देकर विधिवत् शिष्य बना लिया तथा भगवत ध्यान करते रहने का निर्देश दिया। बहुत दिनों तक आचार्य अनंतानंद के निर्देशन में राजा विधिवत् शब्द सुरति योग के साथ सियाराम नाम साधना करते रहे। उनकी लगन, समर्पण तथा ध्येय निष्ठा देख स्वामी जी ने प्रसन्नता व्यक्त की तथा कहा, 'आप गागरोन जाकर वहीं एकांत में मंत्र साधना करो। हम घूमते फिरते वहीं आ जायेंगे।' गुरु की आज्ञा पाकर राजा प्रतापराय वापस गागरोन चले गये।

कुछ दिनों बाद ही स्वामी जी ने ऐसा चमत्कार कर दिखाया, जिससे मठ एवं स्वामी जी की कीर्ति में चार चाँद लग गये। श्रावण का महीना था, एक दिन पहले मूसलाधार वर्षा हुई थी। गंगा अपने उफान पर थी। पंचगंगा घाट पर दक्षिण का एक ब्राह्मण गंगाराम, काशी में अपने निकट सम्बन्धी की अस्थियाँ प्रवाहित करने आया था। वह गंगा में उतर जब अस्थि प्रवाहित कर रहा था, अचानक उसका पैर फिसल गया। उसे धार में फंसा देख, उसका साथी जफर भी उसे बचाने उतरा, तो वह भी बहने लगा। घाट पर खड़े पण्डे पुजारी यह दृश्य देख तो रहे थे, पर गंगा के उफान को देखकर किसी ने भी धार में उतरने का साहस नहीं किया। तभी एक बालक हाथ में बांस की पतली छड़ी लिये हुए आया और धम्म से बहती धारा में कूद गया। उसने धारा से प्रतिरोध करते उन दोनों को खींच कर तट पर ले आया। लोग उसे धन्यवाद दें, उससे पहले वह अदृश्य हो गया। वहीं स्वामी रामानंद के हितैषी-श्रद्धालु भी खड़े थे। वे स्वामी रामानंद के जयकारे लगाने लगे। दोनों को जब यह ज्ञात हुआ कि गंगा घाट के ऊपर ही, स्वामी रामानंद जी का श्रीमठ है और यह उन्हीं का चमत्कार है, तो वे सीधे मठ में जा पहुँचे। उसी समय गुहा से शंख ध्वनि हुई। चारों ओर दिव्यता पसर गयी। पर्दा

हटा। जैसे ही स्वामी जी बाहर आये, देखते ही वे दोनों उनके चरणों में झुक गये। गंगाराम ने करबद्ध पूछा 'स्वामी जी सुना है हमें गंगा की धारा में बहने से बचाने वाले आप ही थे। क्या यह सही है?'

'मैं नहीं, वही परब्रह्म श्रीराम था।'

'हमारा पंडा कह रहा था, आप साक्षात् परब्रह्म राम के ही अवतार हैं। दर्शन कर हमारा जीवन धन्य हो गया।' स्वामी जी उसके प्रश्न को टाल गये। बोले- 'जफर तुम्हारा परम सहयोगी है। इसके साथ सेवक जैसा नहीं, आत्मीय जैसा ही व्यवहार करना।' स्वामी जी के यह कहते ही आनंदित हो गंगाराम बोल उठा 'आप जैसा समदृष्टि वाला सिद्ध पुरुष मैंने नहीं देखा। आपकी जय हो। यह कहते हुए स्वामीजी के चरणों में लिपट गया। स्वामी जी कुछ कहें, उससे पहले ही आचार्य अनंतानंद प्रसाद की दो थालियाँ लेकर आ गये। दोनों प्रसाद लेकर सहर्ष वहाँ से लौटे।

स्वामी रामानंद की ख्याति एक चमत्कारी योगी के रूप में तो दिनोंदिन विस्तारित होती ही जा रही थी, मनुस्मृति के निष्णात ज्ञाता के रूप में भी अपनी पहचान स्थापित कर सबको चकित कर दिया। एक बार जंगम स्वामी और सेन के बीच में चोटी काटने को लेकर विवाद हो गया। यह घटना पंचगंगा घाट की है। सेन ने जंगम स्वामी के सिर का जटाजूट तो काट दिया, पर चोटी रहने दी। जंगम स्वामी चोटी काटने की जिद कर रहे थे और सेन मना करते हुए कह रहा था 'मैं चोटी काटकर किसी हिन्दू को तुर्क बनाने का पाप नहीं कर सकता।' जंगम स्वामी ने सेन को बहुत समझाया, 'चुटिया काटना संसार से विरक्त होने का संकेत है, तुर्क होने का नहीं।' लेकिन सेन अपनी बात पर डटा रहा और विवाद गहराता गया। अंत में यही निर्णय रहा कि ऊपर श्रीमठ में स्वामी रामानंद रहते हैं। वे परम विद्वान् हैं। चलकर उनसे ही इसका निर्णय करवाते हैं। मठ में पहुँचते ही आचार्य अनंतानंद से उनकी भेंट हुई और उन्हें सारा प्रसंग समझाया। तभी गुहा से जैसे ही शंख ध्वनि हुई, दोनों के चित्त निर्मल हो गये। पर्दे के भीतर से ही स्वामी जी ने कहा- 'दृष्टा या कवि के प्रज्ञान में शिखा किसी भी दशा में न तो कटती है और न काटी ही जाती है। पर मनीषी यदि परिभू करके ब्रह्ममय हो जाये और दृष्टा भाव से अविभक्त हो जाये, तो शिखा कटती है और काटी जाती है। मनुस्मृति का भी यही निष्कर्ष है। स्वामी जी के इस कथन से दोनों संतुष्ट थे। जंगम स्वामी तो प्रणाम कर लौट गये, पर सेन वहीं रुक गया। वह स्वामी जी के सत्संग में प्रतिदिन आने लगा। धीरे-धीरे वह स्वामी जी का दीक्षा प्राप्त शिष्य हो गया। स्वामी जी उसकी सेवाओं से अत्यधिक प्रसन्न थे उन्होंने कृपा पूर्वक उसे सिद्ध पुरुष की स्थिति

तक पहुँचा दिया। सेन मूलतः बघेल खण्ड की राजधानी बांधवगढ़ का रहने वाला था। स्वामी जी के निर्देश से वह बांधवगढ़ लौट गया और संतों की सेवा को प्रमुखता देने लगा। स्वामी जी ने उसे यह भी विश्वास दिलाया था कि मैं तुम्हारे साथ हूँ, किसी प्रकार की चिंता मत करना। तुम्हें वहाँ भक्ति का विस्तार करना है। तुम्हारे वहाँ राजशाही है। विधर्मियों का भय भी इतना नहीं होगा। यदि तुमने राजा को प्रभावित कर लिया तो तुम्हें भक्ति के विस्तार में उनका पूरा सहयोग मिलेगा। सेन बांधवगढ़ लौटकर आजीविका के लिए वहीं नाई का काम भी भक्ति के साथ करने लगे। राजा तक जिसका नाम राजाराम बघेला था, जब यह समाचार पहुँचा कि सेन काशी से वापस अपने घर लौट आया है और नाई का ही काम करने लगा है, तब राजा ने सेवक से उसे बुलवा, शरीर की मालिश के लिए अपने यहाँ रख लिया। सेन की इसी से आजीविका चलने लगी। वह शेष समय साधु संतों की सेवा तथा भगवत भजन में बिताने लगा। एक दिन जब वह राजभवन आ रहा था, मार्ग में उसे संत मण्डली मिल गयी। उन्होंने सेन से भोजन प्रसादी के लिए कहा। सेन ने संत सेवा को महत्त्व दिया। वह संतों को लेकर घर लौट आया। राजा सेन के आने की प्रतीक्षा कर रहा था तभी स्वामी जी स्वयं सेन का रूप धर राजभवन पहुँच गये। उन्होंने उस दिन सेन से भी अच्छी तरह राजा की मालिश की। राजा की रीढ़ की हड्डी में चटक थी, वह दर्द करती थी, स्वामी जी ने उसे भी अपनी मालिश से दूर कर दिया। दूसरे दिन डरते हुए जब सेन मालिश करने के लिए पहुँचा तो राजा ने जाते ही कहा- 'कल की तुम्हारी मालिश से मेरी रीढ़ की हड्डी का दर्द जाता रहा। कल तो तुमने मालिश भी बहुत अच्छी की। यह सुनते ही सेन को स्मरण हुआ कि स्वामी जी ने सहायता की जो बात कही थी वह उन्होंने स्वयं पधार कर पूरी की है। सेन ने मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम किया तथा अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इस कृपा से अभिभूत सेन, भक्तिरस में डूब, संत सेवा में ही अपना समय लगाने लगे। बांधवगढ़ में जब यह रहस्य प्रकट हो राजा तक पहुँचा तो सभी ने मुक्त कण्ठ से शिष्यों का ध्यान रखने वाले स्वामी रामानंद की भूरि-भूरि प्रशंसा की। परिणामतः सेन एक सिद्ध पुरुष के रूप में पूरे बघेलखण्ड में पूजे जाने लगे। धीरे-धीरे अनेक लोग उनके शिष्य बन गये। वे शब्द सुरति योग की सियाराम-नाम साधना में रह मुक्ति मार्ग के पथिक बन, अपना जीवन धन्य करने लगे।

बांधवगढ़ की इस घटना से स्वामी जी की ख्याति सुदूर दक्षिण तक पहुँच गयी। दक्षिण की भक्त आत्माएँ स्वामी जी के दर्शन और शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए दौड़ी आने लगीं।

महाराष्ट्र के बिट्ठल नामक एक ब्राह्मण, स्वामी जी की ख्याति सुन बिना अपनी पत्नी को बताये, स्वामी जी का शिष्य बन मोक्ष प्राप्ति की लालसा से काशी चले आये। काशी आकर उन्होंने स्वामी जी से भेंट की तथा स्वयं का शिष्य बनाने हेतु निवेदन किया। स्वामी जी ने अपनी भक्ति के दक्षिण में विस्तार हेतु बिट्ठल को उपयुक्त व्यक्ति मान कुछ दिनों की प्रतीक्षा के बाद, एक दिन उसे पंच संस्कार युक्त मंत्र दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया। नया नाम दे दिया भावानंद। स्वामी जी ने उसे कुछ दिन वहीं ठहर, एकांत में रहकर भजन करने का निर्देश दिया तथा प्रतिदिन सत्संग में आने के लिए कहा। बिट्ठल ने स्वामी जी के निर्देशानुसार एकान्त साधना एवं सत्संग में आना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् उनकी पत्नी, उनका पता लगाते-लगाते आश्रम पर आ पहुँची। उसने स्वामी जी को सारा वृतान्त कह सुनाया। तब स्वामी जी ने बिट्ठल से कहा 'किसी की आत्मा को दुःखी कर तुम सिद्धता अर्जित नहीं कर पाओगे। भजन तुम अपने दाम्पत्य जीवन में रहते हुए भी कर सकते हो। अनेक गृहस्थ शिष्य सिद्धता तक पहुँचे हैं। जब तुम गृहस्थ हो तो अच्छा है, तुम वापस घर लौट जाओ और वहीं विरक्त भाव से एकांत साधना करते रहो।' इस पर बिट्ठल ने कहा- ये और मैं दोनों ही तो हैं, यहाँ रहकर भी हम साधना कर सकते हैं।' इस पर स्वामी जी ने कहा- 'तुम्हारे भाग्य में पिता बनना लिखा है। विश्वास रखो तुम्हारे घर में दिव्य संततिका शुभागमन होगा।' यह सुनते ही बिट्ठल और उनकी पत्नी एक दूसरे को प्रसन्न मुद्रा में देखने लगे। सकुचाये मन से बिट्ठल ने कहा 'स्वामी जी आपका आशीर्वाद अपनी जगह सही है, किन्तु मेरे मन में उस परमपिता परमात्मा के दर्शन की गहरी उत्त्कंठा जग चुकी है।' तब स्वामी जी ने कहा- 'गृहस्थ जीवन भी विरक्त भाव से जिया जा सकता है। तुम्हारी दोनों ही कामनाएँ अवश्य पूरी होंगी। यह सुनते ही बिट्ठल ने अपना शीश स्वामी जी के चरणों में रख दिया। उसकी पत्नी भी स्वामी जी के चरण स्पर्श करने लगी। स्वामी जी ने बिट्ठल के सिर पर हाथ धरा और कहा 'अब तुम अपने घर वापस जा सकते हो। तुम्हें जो मंत्र दीक्षा मिली है तथा ध्यान की जो विधि बताई है, उसके अनुसार जीवन जीते रहो। स्वामी जी का आशीर्वाद पाकर दोनों प्रसन्न मन वहाँ से विदा हुए। चलते-चलते बिट्ठल ने दक्षिण पधारने का विनम्र निमंत्रण देते हुए कहा- 'जब भी आप पधारे, सूचना अवश्य दें ताकि मैं उपस्थित होकर कुछ सेवा कर सकूं।' स्वामी जी ने दाहिना हाथ उठाकर उन्हें मौन एवमस्तु कहा।

स्वामी जी का यशविगंह अपने पंख फैला दिग्दिगंत में उड़ने लगा। मुमुक्षुओं में उनका शिष्य बन, अध्यात्म साधना की जैसे होड़ लग रही थी। उनमें एक श्रीचन्दहरी

थे, जो स्वामी जी की शिष्यता ग्रहण कर सुखानंद बने। ये महाकाल की प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनी के रहने वाले थे। इनके पूज्य पिताश्री पंडित त्रिपुरारी भट्ट निकट के ग्राम किरीटपुर के रहने वाले थे। इनकी मां का नाम जाम्बवती गोदावरी था। त्रिपुरारी भट्ट को बहुत समय तक कोई संतान नहीं हुई थी। इन्होंने उज्जैन में ही रहकर भगवान् महाकाल की पूरी निष्ठा एवं समर्पण के साथ पूजा अर्चना की। महाकाल की पूजा से जाम्बवती की कोख से श्रीचन्द्र हरि का आर्विभाव हुआ। इनके ललाट पर चन्द्राकृति बनी दिखती थी। इसलिए त्रिपुरारी भट्ट ने उसका नाम चन्द्रहरि ही रख दिया। भगवान् शंकर के आशीर्वाद स्वरूप उत्पन्न होने से स्वाभाविक था चन्द्रहरि की रक्षा फणिधर करें। एक दिन मां जाम्बवती ने चन्द्रहरि की रक्षा करते हुए फणिधर को देख लिया। उसके बाद से उसने चन्द्रहरि को अकेला छोड़ना बंद कर दिया। वह जब भी महाकाल के दर्शन के लिए जाती, चन्द्रहरि को अंगुली पकड़ साथ ले जाती। इससे दो लाभ थे, एक तो चन्द्रहरि अकेला न रहे, दूसरे उसके हृदय में भी भक्ति भावना निरंतर बढ़ती रहे। हुआ भी यही। चन्द्रहरि में शिवभक्ति इतनी बढ़ गयी कि जिस दिन मां जाम्बवती मंदिर नहीं जाती तो वे स्वयं खींच कर ले जाते। चन्द्रहरि दिव्यात्मा थे। जब उन्हें विद्याध्ययन के लिए रखा तो वहाँ भी उन्होंने कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया। वे अल्पकाल में ही श्रुति स्मृति आदि शास्त्रों में पारंगत हो गये। उज्जयिनी में पुराने समय से ही शास्त्रार्थ हुआ करता था। उस शास्त्रार्थ में एक यह अनुबंध था, यदि शास्त्रार्थ में कोई पराजित हो जाये तो उसे, विजेता के परिवार को, तब तक निश्चित धनराशि देनी पड़ती थी, जब तक पराजित परिवार का कोई भी उत्तराधिकारी शास्त्रार्थ में उस परिवार को न हरा दे। एक बार विजेता श्रीरंगराज दीक्षित का दूत पिता की अनुपस्थित में धनराशि मांगने आया। तब चन्द्रहरि ने राशि देने से मना कर दिया और कहा कि मैं शास्त्रार्थ करने को तैयार हूँ। चन्द्रहरि की इस घोषणा के चार दिन बाद शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। युवा चन्द्रहरि ने श्री रंगराज को शास्त्रार्थ में पराजित कर, इस प्रथा का ही अंत करवा दिया। शास्त्रार्थ के समय श्री चन्द्रहरि की आयु मात्र सत्रह वर्ष थी। विजय के परिवार ने बड़ा उत्सव मनाया। चन्द्रहरि के जन्म के समय से ही वहाँ के ज्योतिषियों ने यह भविष्यवाणी कर रखी थी कि यदि इसने किसी जलाशय में अपना प्रतिबिम्ब देख लिया तो ये घर छोड़ कहीं चले जायेंगे। उत्सव के बाद भूल से इन्होंने जलाशय में अपना प्रतिबिम्ब देख लिया। उसी रात ये चुपचाप घर छोड़ कहीं चले गये। सुबह इनकी बहुत खोज की गई। तब ये एक उद्यान में ध्यान करते हुए मिले।

इनकी विजय का संवाद पूरे उज्जैन में फैल चुका था। युवावस्था थी ही। इनकी

मनोहारी मुखाकृति पर आकृष्ट हो पड़ोस की एक ब्राह्मण कन्या प्रेम करने लगी थी। उसी रात सिद्ध संत ने स्वप्न में दर्शन देकर इन्हें कहा मैं माया हूँ। इसमें मत उलझो। सीधे काशी पहुँच, स्वामी रामानंद से दीक्षा ले, अपना लोक-परालोक सार्थक करो। स्वप्न में इस दिव्यादेश को मान विरक्त मन चन्द्रहरि उज्जैन छोड़ काशी पहुँच गये। ये श्रीमठ पहुँचे। पहले इन्हें गंगा किनारे एक सन्यासी जिनका नाम रमा भारती था, मिले और वे परमार्थ सिद्धता का विश्वास देकर इन्हें अपने यहाँ ले गये। जब वे रमा भारती के यहाँ रह रहे थे, तब इन्हें ऋचीक ऋषि मिले उन्होंने कहा- 'जब तुम्हें स्वप्नादेश स्वामी रामानंद से मिलने का हुआ है, तब वहाँ क्यों नहीं जाते। चन्द्रहरि ने अपने सरल स्वभाववश यह बात रमाभारती को बता दी। रमा भारती चतुर सन्यासी थे। आगा-पीछा सोच वे स्वयं ही चन्द्रहरि को लेकर श्रीमठ में स्वामी जी के पास पहुँच गये और सारी बात कहते हुए स्वामी से निवेदन किया कि चन्द्रहरि एक विद्वान् युवक है। इसमें विरक्ति का गहरा भाव है। इसे आप विधिवत् मंत्र दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाने का कष्ट करें। रमा भारती के निवेदन पर स्वामी जी ने पंच संस्कार सहित चन्द्रहरि को मंत्र दीक्षा देकर शिष्य बना लिया तथा नया नाम सुखानंद रख दिया। सुखानंद वहीं मठ में रहने लगे। स्वामी जी के निर्देश पर आचार्य अनंतानंद ने अल्प समय में ही सियाराम-नाम रूपी शब्द सुरतियोग का अभ्यास करा दिया। आचार्य अनंतानंद के निर्देशन में एकांत में बैठ मंत्र साधना करने लगे। परिणामतः सुखानन्द शीघ्र ही सिद्ध शिष्य बन गये। इनकी विद्वता एवं सिद्धता से आश्वस्त हो, स्वामी रामानंद ने इन्हें चित्रकूट में अपना आसन जगा, वहाँ के आदिवासी समाज में भक्ति का प्रचार करने का निर्देश दिया। निर्देशानुसार सुखानंद चित्रकूट पहुँच राम शय्या स्थान पर रहकर शब्द सुरति योग समन्वित राम-नाम जप करने लगे। वहीं अपने चमत्कारों से संत सुखानंद ने कई लुभावने आयाम स्थापित किये। जनता में इनको जैसे ही अपने प्रति आस्था का भाव जगा दिखा, ये गांव गांव में घूमते हुए लोक संग्रह की दृष्टि से गुरु स्वामी रामानंद के मोक्ष प्रसाद को खुले हाथों बांटने लगे। आदिवासी समाज में इन्होंने धर्म जागरण तथा लोक संग्रह का जो कार्य किया, उससे धर्मान्तरण की बढ़ती वि॰ बेल वहाँ स्वतः सूख गयी तथा आदिवासी समाज के मन से परकीयों का भय जाता रहा। स्वामी जी के इस प्रभावशाली करतब से सम्पूर्ण समाज में साधू, ब्रह्मण, गाएँ तथा अतिथियों का मान सुरक्षित हो सका था।

इसी बीच काशी में एक बड़ा ही मनोरंजक प्रकरण आ उपस्थित हुआ। सीसोदिया कुल की एक युवा रूपहली राजकुमारी, जिसे अपने पूर्व जन्म की कथा

बालपन से ही स्मरण थी, स्वामी जी की दिव्यता की प्रशंसा सुन श्रीमठ आ गई। उसका पूर्व जन्म का नाम शशि था और वह उस जन्म में ब्राह्मण कन्या थी। उसका पुन्नु नाम के एक युवक से घनिष्ठ प्रेम हो गया था। वह उसी से विवाह करना चाहती थी। लेकिन विवाह उस समय नहीं हो सका। इस जन्म में पूर्व स्मृति के अनुसरण में उसने तथा उसके परिवार ने पुन्नु की बहुत खोज करवाई। कई भविष्य वक्ताओं से उसके नये जन्म के संबंध में पूछा भी, परन्तु उसका कोई अता-पता नहीं मिला। स्वामी रामानंद की अन्तर्यामिता तथा सर्वज्ञता की कई कथाएँ सुन, वह स्वामी जी के शरण में आई थी। आचार्य अनंतानंद ने उसका परिचय एवं आने का अभिप्राय जान उसे सीधा स्वामी जी से मिला दिया। उसकी पूर्व जन्म की प्रेम कथा सुन तथा उस युवा किशोरी की सच्ची प्रेम भावना से द्रवित हो स्वामी जी ने कहा- 'बेटी तुम जिस इच्छा को लेकर आयी हो, वह अवश्य पूरी होगी। इस मठ से कभी कोई निराश नहीं लौटा है। तुम कुछ समय ठहरो। तुम्हारा पूर्व जन्म का प्रेमी यहीं आ रहा है। स्वामीजी के यह कहते ही उसकी आंखों के सामने पूर्व जन्म के वे सारे प्रणय दृश्य, एक-एक कर खेल गये। उसकी प्रसुप्त प्रणय चेतना चैतन्य हो उठी। उसके प्रश्नवाचक से कान, कमल से अधर तथा चंपाकली से कपोल सहसा आरक्त हो गये। स्वामी जी के प्रति एकाएक उसकी श्रद्धा बांसों उछलने लगी। जैसा उसने स्वामी जी की शक्तियों के सम्बन्ध में सुना था, वैसा ही पा, वह मन ही मन बहुत ही प्रसन्न हो रही थी। थोड़ी देर में ही रणथम्भौर के राणा हमीर की मंत्री परिषद का एक वरिष्ठ सभासद पुहकरसी फल फूलों, मेवा मिष्ठानों तथा अनेक उपहारों से भरी डालियाँ ले वहाँ आया। आते ही उसने वे सारे टोकरे स्वामी रामानंद जी के चरणों में अर्पित कर दिये। सिसोदिया राजकुमारी ने, जिसे इस जन्म में, पहले कभी नहीं देखा था, उस उन्नत ललाट, गौरवर्ण, बलिष्ठ देह, आकर्षक व्यक्तित्व के धनी युवक को जैसे ही देखा, उसमें पूर्व जन्म के अपने पुन्नु की छवि देख, सूर्यमुखी के फूल सा उसका हृदय खिल उठा। वह बार-बार पलक झपकती, ललचाई आँखों से उसे देखने लगी। सभासद पुहकरसी ने भी जब उस चम्पावर्णी शुकनासिका, मृग लोचनी बिम्बाधरा युवती को देखा, उसका मन भी पूर्व जन्म के प्रेमवश न चाहते हुए भी, आश्रम की विरक्त मर्यादा तोड़ता, उस ओर खिंचता चला गया। स्वामी जी ने जब दोनों को परस्पर आकर्षण की स्थिति में देखा, तब उनकी मनोभावनाओं को पढ़ते हुए, राजकुमारी की ओर देखकर कहा- 'यही है न तुम्हारा पूर्व जन्म का पुन्नु। पहचान लो। स्वामी जी के यह कहते ही तरुणी राजकुमारी की आंखे लज्जा से नत हो गयी। उसने नत शीश हो, पलकें उठा उसे एकबार फिर प्यार भरी

दृष्टि से देखा। स्वामी जी ने पुहकरसी से कहा यह सीसोदिया कुल की राजकुमारी है। इसे अपने पूर्व जन्म की सारी स्मृतियाँ स्मरण हैं। इस जन्म में तुम कहाँ हो यही पूछने इस आश्रम में आयी है। यह आज भी तुम्हें ही पाना चाहती है। यह कह जैसे स्वामी जी ने शंख ध्वनि की, दोनों को अपने-अपने पूर्व जन्म की सारी सुखद प्रेमिल स्मृतियाँ स्मरण हो आईं। सारा विगत वृतांत जग आया, जब उसे बलात् अपहृत कर मुसलमानों ने ले जाना चाहा था, तब दोनों ने अगले जन्म में भी एक होने का प्रण दोहराते हुए आत्महत्या कर एकत्व का सुनहरा अध्याय लिखा था। दोनों में परस्पर प्रेम का भाव जग आया। मिलनोत्कंठा बलवती हुई उन्हें एक होने को विवश करने लगी। तभी स्वामी जी के संकेत पर आचार्य अनंतानंद गुहा में से दो प्रसादी मालाएँ ले आये तथा दोनों को एक-एक माला दे दी। दोनों ने परस्पर मालाएँ पहना अपने एकत्व को जीवंत कर दिया। परिणय के पवित्र बंधन में ये दोनों बंध गये। उन्होंने स्वामी जी से परमार्थ की भीख मांगी। तब स्वामी जी ने कहा- 'प्रतीक्षा करो, अभी तुम को गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर, अपने पूर्व जन्म की अधूरी प्रणय कथा को पूरा करना है। उसे अधूरी रख तुम परमार्थ प्राप्त नहीं कर सकोगे। पहले गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर दाम्पत्य सुख भोगते हुए अपने प्रेम को शुद्ध और मर्यादित करो। सत्यव्रत और सतीत्व से अलंकृत होने के बाद आना। तब तुम्हे परमार्थ ज्ञान भी सहज ही प्राप्त हो सकेगा। प्रज्ज्वलित काम चेतना लेकर परमार्थ साधना संभव नहीं है। वैराग्य उसकी पहली सीढ़ी है। स्वामी जी से आशीर्वाद लेकर प्रसन्न-प्रसन्न दोनों वहाँ से विदा हुए।

स्वामी रामानंद जिस अभिप्राय से भारत भूमि पर अवतरित हुए थे, उनमें इस देश की संस्कृति तथा आध्यात्मिकता को संरक्षित रखना ही मुख्य था। स्वामी रामानंद के सहयोगार्थ अनेक दिव्यात्माएँ भी अवतरित हुई हैं, इस तथ्य का ज्ञान सूक्ष्म रूप में विचरते सभी देवताओं को था। समाज को अपने धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्म से जोड़े रखने हेतु लोक परलोक को सुधारने का भाव मोक्ष प्राप्ति की आश्वस्ति तथा परमात्मा के दर्शन का लोभ देना अधिक आकर्षक तथा सार्थक था। देवता भी मुक्तात्माओं को सीधे स्वामी रामानंद से जोड़ने हेतु समुत्सुक थे तथा स्पष्ट शब्दों में उनसे कहते थे, यदि जन्म जन्मांतर के चक्कर से तथा कर्म बंधन से मुक्ति पानी है तो स्वामी रामानंद को गुरु बना उनकी कृपा प्राप्त करो। यह बात शास्त्र, विद्वान् तथा देवी-देवता कहते रहे हैं, ऐसे दृष्टांत तो हमें मिलते हैं, परन्तु स्वयं भगवान् यह बात कहें, अविश्वसनीय ही नहीं, अचम्भित तथा चकित करने वाली है न? ऐसा एक वृत्त हमें राजस्थान के टोंक जिले के ग्राम धुवन के पन्ना जाट के पुत्र धन्ना का मिलता है, जिन्हें स्वयं भगवान्

ने कहा, 'धन्ना वैसे तो मैं तुम्हारी भक्ति से संतुष्ट हूँ, परन्तु तुम्हारी उपासना में एक बड़ी कमी है। तुमने अभी तक किसी सिद्ध पुरुष को अपना गुरु नहीं बनाया। इस पर धन्ना ने कहा, प्रभो जब आप स्वयं ही मिल गये हैं तो अब किसी और को गुरु कहने की आवश्यकता कहाँ शेष रह जाती है। तब भगवान् ने कहा, 'धन्ना यह मेरे ही द्वारा स्थापित मर्यादा है। हर भौतिक जीव को इसकी पालना करनी होती है। अन्यथा उसकी भक्ति अधूरी रह जाती हे, उसे पुनर्जन्म लेना पड़ता है। तभी ही मेरा भक्त भी मोक्षाधिकारी बन पाता है। तब धन्ना ने कहा, 'मुझे तो आपका सान्निध्य ही चाहिए, मोक्ष लेकर मैं क्या करूँगा।' तब भगवान् ने उसे समझाया 'धन्ना अभी तो मुझे तुम्हारे पास आना पड़ता है, तब तुम मेरे ही पास रहोगे। क्या तुम मुझे कष्ट देते रहना ही चाहते हो। इस पर धन्ना ने कहा 'भगवन्, यह तो आपने बताया ही नहीं था। आपको कौन कष्ट देना चाहेगा। कृपा कर बताइये। किसे गुरु बनाऊँ। तब भगवान् ने कहा 'इस समय धरती पर एक ही ऐसे समर्थ गुरु हैं जिनका नाम है रामानंद। वे मेरे ही निज स्वरूप हैं। वे तुम्हें स्वीकार कर अपना शिष्य बना लेंगे। धन्ना जाट के काशी पहुँचने से पहले ही भगवान् का संदेश दिव्य दृष्टि से स्वामी रामानंद के पास पहुँच गया था। वे धन्ना के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे थे। धन्ना भी बिना किसी बिलम्ब के काशी पहुँच गये। स्वामी जी के सम्मुख उपस्थित होकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन का अध्यात्मिक यथार्थ स्वामी जी के सामने प्रस्तुत कर दिया। भगवान् स्वयं उनकी सेवा से प्रसन्न हो, सेवक की भांति, उनकी खेती का काम संभालते थे। जब स्वामी जी ने यह सत्य सुना, तो वे बड़े प्रभावित हुए और इतना ही कहा, 'भगवान् के आदेश को कौन टाल सकता है।' बिना किसी विलम्ब के स्वामी जी ने पंच संस्कार सहित विधिवत् मंत्र दीक्षा दे उसे अपना शिष्य बना लिया। साथ ही आचार्य अनंतानंद को कहा, इन्हें शब्द सुरति योग का विधिवत् प्रशिक्षण दे, सियाराम नाम साधना में ध्यानस्थ होना बता दो। इधर धन्ना भक्त से कहा 'आप कुछ समय यहीं रुक, अभ्यास करते हुए सिद्धता अर्जित कर लें फिर भले ही अपने ग्राम लौट जाना। आप इस जन्म में ही मोक्ष का सुख प्राप्त कर लेंगे, विश्वास रखें। तब तक आप जीवन मुक्त होकर भगवान् के साथ पूर्ववत विचरते रहेंगे। यह सौभाग्य किसे मिलता है।' कुछ काल काशी में रुक संत धन्ना जी एकांत साधना करते हुए आत्मदर्शन कर, वापस अपने गांव धुवन लौट गये। भगवान् तो उनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। जाते ही प्रभु ने उन्हें गले लगा लिया।



पाँच

स्वामी रामानंद ने एक और क्रांतिकारी कदम उठा, श्रीमठ का द्वार महिलाओं के लिए भी खोल अपने रामानंदीय धर्म दर्शन को विश्व मानव का धर्म दर्शन बना दिया। एक ओर जहाँ स्वामी जी के चमत्कार भारतीय सीमांतों को तोड़, अपने सुयश का विस्तार कर रहे थे, वहीं उनकी उदारता भी साथ-साथ विस्तार पा रही थी। स्वामी जी की महिमा का कोई पार नहीं था। भारत का पूर्वी सीमांत प्रांत त्रिपुरा के पण्डित प्रभाकर शर्मा की एकमात्र पुत्री पद्मा, ज्ञान की किशोरावस्था आते ही अपने पिता से काशी चलने तथा श्रीमठ में युग के महान संत स्वामी रामानंद से मिलने का हठ करने लगी। मुझे काशी ले चलो, 'मुझे काशी ले चलो स्वामी रामानंद से मिलाओ, उनके दर्शन के बिना मैं जीवित नहीं रहूंगी। मुझे मिलाओ, मुझे मिलाओ।' पण्डित प्रभाकर शर्मा उसका हठ नहीं टाल सके। उसकी अलौकिक लीलाओं, उसके कुशाग्र बुद्धि, कौशल तथा अप्रतिम सौन्दर्य से उसे साक्षात् लक्ष्मी का ही अवतार समझा, बालपन से ही वे उसका बड़ा सम्मान करने लगे थे। उन्होंने उसे कभी निराश, उदास होने का अवसर ही नहीं दिया। प्रभाकर स्वयं लक्ष्मी के बड़े उपासक थे। देवी लक्ष्मी भी उनकी आराधना से अत्यधिक प्रसन्न थी। एक बार देवी लक्ष्मी ने ही प्रसन्न हो उनको पत्नी की गोदी में आशीर्वाद का कमल पुष्प डाला था। पद्मा उसके बाद ही उसकी कोख में आयी थी। वह उसे लक्ष्मी का वरदान मानकर ही चल रही थी। उसका विश्वास था कि देवी लक्ष्मी ने ही उसकी कोख हरी की है। प्रभाकर दम्पत्ति पद्मा को लेकर उसकी इच्छुनसार सीधे काशी श्रीमठ में पहुंच गये। स्वामी जी तो अर्न्तयामी थे ही। उन्हें भूत, भविष्य, वर्तमान सब साक्षात् था। उन्होंने बिना किसी रोक के पर्दा हटा उन्हें अपने दिव्य दर्शन दिये। पण्डित प्रभाकर ने उचित अभिवादन पश्चात् पद्मा की जन्म से लेकर श्रीमठ पहुँचने तक की रट का सारा एतिह्य सुना दिया। सब जानकर भी अजाने हुए से स्वामी जी वह वृत्त सुनते रहे। उन्हें तो स्मरण था ही कि द्युलोक की दिव्यात्माएँ भारत के आध्यात्मिक जीवन पर हो रहे आक्रमण, भारतीय महिलाओं के अपहरण तथा उनकी प्रताड़ित अवस्था देखकर महिला मुक्तात्माओं को भारत में भिजवा रही थी, ताकि वे आकर महिलाओं को उनका सम्मान-जनक स्थान दिलवा सके। पद्मा को उसी क्रम की एक

कड़ी मान, स्वामी जी ने उसे तत्काल मंत्र दीक्षा देना स्वीकार कर लिया। स्वामी जी ने पण्डित प्रभाकर को कुछ समय काशी में ही निवास करने का निर्देश दिया, ताकि पद्मा मंत्र दीक्षा ही न ले, कुछ सिद्धियों से भी अलंकृत हो सक्षम आत्मसाक्षात्कारी संत हो सके। समाज को निर्देशन देने में भी समर्थ हो सके। वैराग्य उसे सर्वथा विरक्त बना सके। पण्डित प्रभाकर को पुत्री पद्मा की भावनाओं तथा महान् गुरु स्वामी के निर्देश को स्वीकार, अपनी स्वीकृति देनी ही थी। मठ के पास वे उचित आवास ढूँढ़कर रहने लगे। प्रतिदिन पद्मा को लेकर मठ में आने तथा सत्संग में भाग लेने लगे। उचित समय देख स्वामी जी ने उसे पंच संस्कार के साथ मंत्र दीक्षा दे शब्द सुरति भक्ति योग का विज्ञान समझा दिया।

पद्मा भी श्वास-प्रश्वास के साथ दीक्षा मंत्र का जाप करती हुई, घण्टों ध्यान समाधि में बैठने लगी। अध्यात्म चेतना कण्ठ से उतर हृदय में पहुँच गयी। कालांतर में मणिपुर तथा स्वाधिष्ठान पार कर मूलाधार से सुषुप्ना में सीधे चौथे द्वार जा पहुँची। सच में यह दिव्य उपलब्धि गुरु वरदान का प्रतिफल ही था। वैसे उसका जन्म दिव्य था। उसकी वासनाएँ दिव्यता से जड़ी थी। वह उचित स्थान पर आकर समर्थ गुरु से उचित यौगिक ज्ञान प्राप्त कर रही थी। इस कारण चौथे द्वार की सांकल खटखटाते उसे देर नहीं लगी। सियाराम समन्वित शब्द सुरति योग की परिपक्वता ने चौथा द्वार खोल, उसे आत्म देवता के दर्शन करा ही दिये। वह पूर्णता की अवस्था में पहुँच आत्मस्थ हो गयी। दिव्य जीवन जीने लगी तथा जीवन मुक्त हो, समाज सेवा के लिए उद्यत हो गई।

स्वामी रामानंद ने त्रिपुरा की ब्राह्मण कन्या को सिद्ध संत बना दिया, यह चर्चा काशी के सभी धर्मस्थलों पर होने लगी। इधर सिद्ध संत पद्मावती महिलाओं का पृथक् से सत्संग आयोजित कर अपनी दिव्यानुभूति मुक्त हस्त से लुटाने लगी। जब अपने प्रवचन में वह यह तथ्य कहती कि भगवान् विश्वनाथ ने वैदिक युग से पूर्व, इसी रामनाम का जाप कर मांत्रिक एवं तांत्रिक शक्तियाँ प्राप्त की थी, भगवान् विश्वनाथ की नगरी में सामाजिक समरसता का एक नव्य वातावरण विस्तार पाने लगा था। भगवान् विश्वनाथ की पूजा करने वाली, महिलाएँ भी पद्मासन लगा मौन राम का नाम जपने लगी थीं। राम नाम को भगवान् शंकर का मंत्र मान, काशी की महिलाओं में रामनाम के प्रति अतिरिक्त अनुरक्ति की बाढ़ सी आ गयी। तपस्विनी पद्मा के रामनाम प्रचार से श्रीमठ में भी प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। बहुत वर्षों तक स्वामी जी के निर्देशानुसार पद्मा दूर-दूर जाकर लोक जागरण का कठिन कार्य पूरे साहस के साथ निष्ठापूर्वक निभाती रही। विधर्मी अत्याचारों से महिला समाज को बचाते हुए अपने देश, धर्म तथा संस्कृति

के साथ उन्हें अटूटता के साथ जोड़ती रही। देह के ढलने पर, पद्मा ने ही स्वामी जी से निज धाम भेजने की प्रार्थना की। उसकी इच्छा जान, स्वामी जी ने उसे निजधाम जाने की आज्ञा दे दी। भक्तमाल में अपना अमिट नाम छोड़, वह अपने चिरंतन आनंद धाम पहुँच गयी।

स्वामी रामानंद संगीत को एक ईश्वरीय वरदान मानते थे। सस्वर कंठ उन्हें आनंदित करता था। लखनऊ के पास ही पैखम ग्राम में पण्डित सुरेश्वर प्रसाद शर्मा रहते थे। उनके भायण कुमार नाम का एक पुत्र था। बालपन से ही भायण की संगीत में बड़ी रुचि थी। उसका कंठ भी बड़ा मधुर था। जब वह गाता था, तो गाँव के लोग झूम उठते थे। भायण कुमार की आकृति भी बहुत आकर्षक थी। श्रोताओं को वह अपने संगीत के साथ बांध लेता था। पण्डित सुरेश्वर शर्मा ने उसके सभी संस्कार विधिवत् सम्पन्न करवाये थे। लखनऊ घराने के योग्य शिक्षक से उसे शास्त्रीय संगीत की पूरी शिक्षा दिलवायी थी। उपनयन संस्कार के बाद गायत्री मंत्र के पुरश्चरण करवाये थे। इससे उसके हृदय में भक्ति का संस्कार जागृत हो गया था। वह भक्ति संगीत के बड़े गायकों में गिना जाने लगा था।

भायण कुमार के संगीत से प्रभावित हो, नारायण नाम के एक ब्राह्मण उनके यहाँ उपनयन संस्कार से लेकर पुरश्चरण के कार्यक्रम में बिना बुलाये आने लगे थे। किसी संबंध से भायण उन्हें मामा कहने लगे थे और नारायण भायण कुमार के संगीत से प्रसन्न हो उसे नारद नाम से पुकारने लगे थे। भायण कुमार किशोरावस्था पार कर यौवन की दहलीज पर पांव रख रहे थे। उनकी प्रसिद्धि सभी को प्रभावित कर रही थी। उनके मकान के पड़ोस में ही एक युवा ब्राह्मण कन्या उसके रूप गुण पर रीझकर हृदय से उन्हें प्यार करने लगी थी। उसका नाम सुरसुरी था। उसने सर्वथा भावेन अपने को भायण कुमार को समर्पित कर दिया था। इधर नारायण, भायण को, भक्ति के चरम का स्पर्श करने की दृष्टि से, उसे काशी जाकर महान युग संत रामानंद की शिष्यता ग्रहण करने हेतु उत्साहित कर रहे थे। स्वामी रामानंद का नाम तो भायण कुमार ने भी सुन रखा था। जब नारायण ने प्रतिदिन बार-बार स्वामी रामानंद की दिव्य चमत्कारिता के वृत्त सुनाने प्रारम्भ किये तो भायण कुमार का मन भी काशी जाने के लिए उत्कंठित तथा स्वामी रामानंद की शिष्यता प्राप्त करने के लिए मचल उठा। भक्ति के चरम की कल्पना ने नारायण के साथ काशी जाने का निर्णय एक दिन करा ही लिया। भायण कुमार काशी पहुँच गया।

भायण कुमार के काशी पहुँच स्वामी रामानंद की शिष्यता ग्रहण करने की बात

सुरसरि बहुत दिनों से सुनती आ रही थी। वह भायण कुमार से पूर्व ही काशी पहुँच श्रीमठ पहुँच गयी। उस समय स्वामी जी बाहर ही थे। उसने जाते ही स्वामी जी के चरण स्पर्श किये। स्वामी जी ने उसे विवाह योग्य, युवती समझ, उसके सिर पर हाथ धरते हुए 'सौभाग्यवती भव' कह आशीर्वाद दे दिया। संध्या समय हो जाने से मठ का द्वार शिष्यों ने बंद कर दिया।

उसी समय भायण कुमार भी वहाँ पहुँच गया लेकिन वह अपनी उपस्थिति एक गायक के रूप में देकर मठ को प्रभावित करना चाहता था। उसने तेल बाती युक्त पाँच दिये द्वार पर रखे तथा दीपक राग गाना प्रारम्भ कर दिया। कवियों और कलाकारों में अपने ज्ञान का स्वाभाविक अभिमान जो होता है। भायण को गाता हुआ देख, बहुत लोग वहाँ एकत्रित हो गये। उन्होंने जब देखा कि पांचों दिये सहसा जल उठे हैं तो सब चकित हो, उसकी प्रशंसा करने लगे। तभी गुहा से शंख ध्वनि हुई। उस शंख ध्वनि से भायण की हृदय तंत्री को अनाहत नाद से गुंजित कर दिया और आनन्द समुद्र में डुबो दिया। बाहर का कोलाहल सुन शिष्यों ने मठ का द्वार ज्यों ही खोला, भायण कुमार सीधा गुहा के द्वार पर पहुँच गया और कहने लगा स्वामी जी एक बार शंखनाद करें, नहीं तो मेरे प्राण नहीं रहेंगे। सचमुच यही हुआ। वह वहीं निश्चेत हो गिर पड़ा। आचार्य अनंतानंद ने दौड़कर उसके मुख पर मंत्रित जल छिड़का, तब उसकी चेतना लौटी। तभी पर्दा खुला और स्वामी जी ने दर्शन दिये। भायण ने उठकर स्वामी जी के चरण पकड़ लिये और कहा 'नारायण नाम के एक व्यक्ति ने मुझे परमार्थ बोध के लिए यहाँ भेजा है। वह गंगा घाट तक मेरे साथ था। अचानक कहीं अदृश्य हो गया। कृपया मुझे अपनी शरण दें। अपने दिव्य ज्ञान से यह जीवन कृतार्थ करें।' भायण के विरक्त शिष्य होने की बात सुनकर सुरसरि भी वहाँ स्वामी जी के निकट आ गयी। बोली 'स्वामी जी आपने मुझे सौभाग्यवती होने का मंगल आशीष दिया है। यदि ये विरक्त संत हो गये तो यह कैसे संभव है। स्वामी तो अंतर्यामी महापुरुष थे। उनसे इनकी इस जन्म की ही नहीं पूर्व जन्म तक की कथा छिपी नहीं थी। स्वामी जी ने शंख ध्वनि की। दोनों में ही तत्काल वीतराग भाव जाग गया। तब सुरसरि ने भी परमार्थ की शिक्षा मांगी। दोनों को स्वामी जी ने पंच संस्कारों से युक्त कर अपनी मंत्र दीक्षा दी। भायण कुमार को नाम दिया सुरसुरानंद। सुरसरि का नाम स्वामी जी को अच्छा लगा। उन्होंने कहा तुम सुरसरि ही रहो। तभी आचार्य अनंतानंद ने भीतर से एक प्रसादी माला ला सुरसरि को दी। स्वामी जी ने कहा तुम इस माला को सुरसरानंद के गले में डाल दो, ताकि मेरा आशीर्वाद यथार्थ रूप ले सके। स्वामी जी की आज्ञा पा सुरसरि ने वह माला

सुरसुरानंद के गले में डाल दी। अब तुम दोनों दम्पत्ति विरक्त भाव से मंत्र जाप करते रहो। अनंतानंद तुम्हें शब्द सुरतियोग के साथ रामभक्ति की विधि बतायेंगे। उसी विधि से ध्यान साधना करते रहो। दोनों दम्पत्ति, विरक्त भाव से वहाँ रहते हुए भक्ति साधना में डूब गये। शनैः शनैः उन्होंने साधना की चौथी सीढ़ी पार कर ली। सुरसुरानंद स्वामी जी के एक तेजस्वी शिष्य बन गये।

दक्षिण में उन्हीं दिनों मुस्लिम शासक मलिक काफूर के अत्याचारों के समाचार स्वामी जी को लगातार मिल रहे थे। स्वामी जी ने दोनों को ही आदेश दिया, 'तुम दक्षिण जाकर वहाँ की प्रजा के कष्टों को दूर करो। उस मदान्ध की आंखे खोल उसे सीधे मार्ग पर लाओ। स्वामी जी की आज्ञा पाकर शिष्य सुरसुरानंद तथा सुरसरि दोनों दक्षिण चले गये। सुरसुरानंद ने पहला काम किया, मलिक काफूर को स्वप्न में दर्शन दे, सत्पथ पर चलने का उपदेश दिया। इससे मलिक काफूर बड़ा प्रभावित हुआ ओर उसने स्वप्न में देखे व्यक्ति को ढुंढ़वाया। परिचय मिलते ही स्वयं चलकर मलिक काफूर सन्त सुरसुरानंद की सेवा में उपस्थित हुआ तथा आशीर्वाद मांगा। सन्त सुरसुरानंद ने उसे हिन्दू प्रजा, उनके धर्म स्थलों तथा उनके मान बिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों को रुकवाने हेतु कहा। साथ ही मलिक काफूर को तत्व ज्ञान भी समझाया। परिणामतः मलिक काफूर के शासन तंत्र द्वारा किये जा रहे सारे अत्याचार, मलिक काफूर के सहयोग से तत्काल एक ही घोषणा में बंद हो गये। संत सुरसुरानंद एवं सुरसरि ने मिलकर दक्षिण में बहुत समय तक समन्वय सद्भाव का विस्तार किया।

सुरसरि के भगवतधाम सिधार जाने के बाद संत सुरसुरानंद वापस काशी आ गये। वहाँ से फिर अयोध्या चले गये। वे वहीं परमधाम सिधारे।

इधर स्वामी जी ने बढ़ते हुए विधर्मी अत्याचारों को रुकवाने के भाव से एक और महत्वपूर्ण कार्य किया, वह था कलियुग को बुला, उससे समाज के हितकारी कार्यों में किसी भी प्रकार बाधा नहीं डालने का अनुरोध करना। स्वयं कलि स्वामी जी के यौगिक आह्वान का सम्मान करते हुए, हाथ में राजदण्ड लिये दौड़ा चला आया। उसने उसे अपना अहो भाग्य माना। वह दबे पांव चुपचाप पर्दा हटा गुहा में घुस स्वर्ण निर्मित पंचपात्रों पर बैठ स्तवन करने लगा। स्वामी जी आप समद्रष्टा महान संत हैं, आपको न किसी से प्रेम है और न किसी से द्वेष। आप लोकहित के लिए अवतरे हैं। सत्, त्रेता तथा द्वापर की तरह आप मुझ पर भी कृपा दृष्टि रखें। दिव्य दर्शन पा कलि अपने को कृतार्थ समझ रहा था। कलि ने हाथ जोड़ कर कहा- मैं सेवा में प्रस्तुत हूँ। मेरे योग्य सेवा कहें।'

'कलि, मैंने हर जन्म में समाज के दलित, वंचित, शोषित जन का ही उद्धार किया है। उन्हें मानव की सम्मानजनक प्रतिष्ठा दिलवायी है। युगों से तिरस्कृत शूद्रों तथा प्रताड़ित अबलाओं को विशेष रूप से सहयोग कर उन्हें उनका सम्मान लौटाया है। स्वयं भगवान् ने भी पूर्व में अवतार ले ऐसे लोगों को तारा है। दुष्टों का नाश तथा संतों का उद्धार किया है। मैं भी उन्हीं के सत्कर्मों का सदा अनुसरण करता रहा हूँ। मेरा इतना ही कहना है तुम मेरे लोक कल्याण के किसी भी कार्य में बाधा उत्पन्न मत करना। तुम्हारे स्वभाव से जग परिचित है। तुम्हारे आते ही सारे अनर्थ, सारे पाप, सारे दुष्कर्म तथा सारी अराजकतायें एक साथ आ जाती हैं। इन सबसे तो मैं जूझ लूंगा, पर तुम से जूझना कठिन पड़ेगा।' स्वामी जी का यह कथन सुनते ही कलि स्वामी जी के चरणों में लोट गया। फिर स्तवन करने लगा। भागवत भवन, दीन उद्धारक, तत्वज्ञानी महात्मन, मैं जानता हूँ उस परम प्रभु ने आपको विशेष प्रयोजन से ही पृथ्वीलोक पर भेजा है। मैं उस परम प्रभु के कार्य में कैसे बाधा डाल सकता हूँ। आप मुझ दुरात्मा के दोषों पर ध्यान न देते हुए, मुझे अपना सेवक ही मानें। मैं आपके लोकहितकारी दिव्य स्वभाव के आगे नतशिर हूँ। विश्वास रखिए पवित्र मार्ग में मेरी ओर से किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होगी। मैं आपके बीज मंत्र राम नाम की महिमा को जानता हूँ। इसी नाम को सदाशिव ने जपा है। इसका बीज मंत्र विश्व के प्रत्येक अणु में निहित है। मैं उसी की सत्ता से, सत्ताधारी हूँ। उस बीज मंत्र का मैंने सदा लोहा माना है। विश्वास रखिए मैं आपके अनुष्ठान का सहयोगी ही हूँ, विरोधी नहीं हूँ।' यह कहते हुए कलि ने स्वामी जी के चरण पकड़ आशीर्वाद मांगा। स्वामी जी ने उसे अपने तारक मंत्र राम का उच्चारण करते हुए सप्रेम विदा किया।

इसी के ही बाद पतित पावनी गंगा ने उपस्थित होकर स्वामी जी के सम्मुख पायस भरा कटोरा उपस्थित करते हुए कहा- 'ब्रह्मचारी आपके लिए जो पायस ला रहा है उसे आप प्रयोग में न लें। उसमें प्रयुक्त धान्य पवित्र नहीं है न जिसके यहाँ से धान्य लाया गया है, उसका आचरण पवित्र है। संत को सात्विक धान्य ही ग्रहण करना चाहिए। सात्विक व्यक्ति के यहाँ से आया खाद्य ही ग्रहण योग्य होता है, अन्यथा सिद्धों की सिद्धता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।' यह कहते हुए कुमारिका रूप गंगा ने पवित्र पायस से भरा कटोरा स्वामी जी की ओर बढ़ा दिया। 'आप इसे ग्रहण करें' ब्रह्मचारी के लाये पायस को नहीं। यह कहकर वह कुमारिका गंगा वहाँ से लौट गयीं। ब्रह्मचारी जब पायस लेकर आया, तब स्वामी जी ने कहा, 'कुवांरिका रूप में भगवती गंगा ने आकर यह पायस पहले ही रख दिया है।' ब्रह्मचारी इस चमत्कारी घटना को सुनकर,

बड़ा आनंदित हुआ और अपने द्वारा लाये पायस को लेकर वापस हो गया।

दिन के सत्संग में स्वामी जी ने इसी बात को अपने प्रवचन में कहा- 'रामभक्तों को अपनी जीविका सात्विक कर्मों से ही अर्जित करनी चाहिए। सात्विक रूप से अर्जित सम्पत्ति सुखदायी होती है। साथ ही अर्जक को आत्मिक संतोष भी देती है। पाप कर्म से कमायी पूंजी साधना को तथा आत्मा को कलुषित करती है। कलुष, चित्त को स्थिर नहीं रहने देता। ध्यान में बाधा बनता है। जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन, यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है न? साधक को देह की पवित्रता के साथ-साथ खानपान की शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिए और यह कहते हुए दिन की वह घटना सुना दी कि किस प्रकार पतित पावनी गंगा स्वयं उनके लिए पायस लेकर उपस्थित हुईं तथा पाप कर्म से कमाये द्रव्य से बनाये वैश्य के यहाँ से आये पायस को न खाने का परामर्श दिया।स्वामी जी दिनभर में केवल एक बार ही पायस ग्रहण किया करते थे। इस तथ्य को सुनकर सभी श्रद्धालु श्रोताओं ने भविष्य में इस ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया।

स्वामी रामानंद देश धर्म और समाज पर हो रहे विधर्मी आक्रमण से बहुत चिंतित थे। सभी धर्म वालों को एक मंच पर लाने, उनके पारस्परिक क्षुद्र कट्टरतावादी झगड़ों को निपटाने में त्वरित गति से लगे थे। स्वाभाविक था ऐसी विषम परिस्थिति में उन्हें सर्वधर्म सम्भावी शिष्यों की अत्यधिक आवश्यकता हो। काल स्वयं उन्हें सहयोग कर रहा था। उसी समय विन्ध्यवासिनी देवी के निर्देश पर श्री महेश्वर मिश्र अपने पुत्र को लेकर श्रीमठ पहुँचे। देवी ने आदेश दिया था इस बालक को उपनयन संस्कार के बाद स्वामी रामानंद के यहाँ पहुँचा देना। बालक का नाम नरहरि था। श्री महेश्वर वैसे तो वृंदावन के निकट के एक गांव के रहने वाले थे। उनकी पत्नी का नाम अम्बिका था। उनके कोई संतान नहीं थी। संतान की कामना से उन्होंने विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर पर पहुँचकर बड़ी आराधना की थी। देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र रत्न दिया था। साथ ही यह भी कहा था कि यह देवपुरुष है, इसे बहुत बड़े काम सम्पन्न करने हैं। उपनयन के बाद श्री मिश्र बालक को लेकर जब श्रीमठ पहुँचे तब उनकी प्रथम भेंट आचार्य अनंतानंद से हुई। श्री मिश्र ने पूरा वृत्त आचार्य अनंतानंद के सम्मुख रखा। आचार्य अनंतानंद ने कहा 'शिष्य तो स्वामी जी ही बनायेंगे।' उसी समय अन्तर्यामी, सर्वज्ञ स्वामी जी ने अपना दक्षिणावर्त शंख बजाया। बालक नरहरि बैठा-बैठा ही समाधि की स्थिति में चला गया। थोड़ी देर पश्चात् पर्दा हटा। स्वामी जी बाहर आये, तब बालक की समाधि टूटी। श्री महेश्वर के साथ नरहरि ने भी स्वामी जी के चरण स्पर्श किये। आचार्य अनंतानंद कुछ कहें, उससे पूर्व ही स्वामी जी ने कहा 'इसकी दिव्य दीक्षा तो

हो चुकी है। अब तुम इसे पंच संस्कारों द्वारा संस्कृत कर, पंथ की लौकिक दीक्षा प्रदान करते हुए साधना की विधि, विधिवत् समझा दो। यह कह स्वामी जी वापस गुहा में लौट गये। आचार्य अनंतानंद ने नरहरि को विधिवत् मंत्र दीक्षा दी तथा नाम रखा नरहर्यानंद। महेश्वर मिश्र बालक को वहीं छोड़, अपने गांव लौट गये। आचार्य अनंतानंद ने बालक नरहर्यानंद को सभी धर्म ग्रन्थों का निगूढ़ तत्व समझाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् शब्द सुरति योग की शिक्षा जो मूलतः राम-नाम जप ही है दे आचार्य अनंतानंद ने शिष्य नरहर्यानंद को मठ के नीचे गंगा किनारे स्थित एकांत कोठरी में रह नाम तथा ध्यान साधना करने का निर्देश दिया। निर्देशानुसार बालक नरहर्यानंद वहां रह भक्ति साधना में डूब गये।

इसी बीच एक सेठ कन्या नरहर्यानंद के यौवन तथा रूप को देख, उन पर विमोहित हो, उनसे विवाह करने की जिद करने लगी। यह बात स्वामी तक पहुँची, तो स्वामी जी ने चातुर्मास के नाम से उन्हें प्रयाग के अलोपी बाग में पहुँचा दिया, जहाँ वे एक छोटी कुटीर में रहने लगे। बाद में वहाँ से आप चित्रकूट आ गये। आप कभी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते थे। पुरुषोत्तम पुरी में जब आप चातुर्मास कर रहे थे, तब इन्हें गढ़खला के ठाकुर श्री विजय बहादुर सिंह राजस्थान ले आये। यहाँ आपने रामभक्ति का प्रचार किया। वृद्धापकाल में आप चित्रकूट चले गये। जीवन का शेष समय वहीं पूर्ण किया। इनके सम्बन्ध में स्वयं स्वामी रामानदं ने आचार्य अनंतानंद को दीक्षा पूर्व ही बता दिया था कि यह बालक अन्य ऋषियों के साथ ही देश धर्म एवं समाज की रक्षा के लिए पृथ्वी पर आया है। यह और इसके एक प्रमुख शिष्य गोस्वामी तुलसीदास हमारे बाद भी इस देश को संकट से बचाने का कार्य करते रहेंगे।

स्वामी जी की दृष्टि राजस्थान पर विशेष रूप से थी। उनका विश्वास था कि राजस्थान में रजवाड़े होने से विधर्मी अत्याचारों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। साथ ही रजवाड़े ही धर्मान्धिता की इस आंधी को रोकने में समर्थ होंगे। इसलिए जब भी कोई राजस्थान से शिष्य बनने के लिए पहुँचा, उन्होंने आचार्य अनंतानंद को उसे प्राथमिकता से शिष्य बनाने का निर्देश दिया। एक दिन बांसवाड़ा का एक युवा यज्ञेशदत्त जो काशी में रहकर न्याय शास्त्र का अध्ययन कर रहा था, स्वामी रामानंद के सम्पर्क में आया। प्रारम्भ से ही उसकी गति योग विद्या में थी। सिद्धत्ता की स्थिति तक वह पहुँच गया था। वह सिद्धासन लगा गंगा पार कर लिया करता था। वहीं रहते हुए उसने अपना विवाह भी कर लिया था। लेकिन बाद में स्वामी जी का इतना प्रभाव उस पर पड़ा कि उसने विरक्त जीवन स्वीकार लिया। एक दिन जब वह गंगा घाट जाने लगा तो पत्नी

से कह दिया कि अब नहीं आऊँगा। वह मजाक समझी और दिन भर प्रतीक्षा करती रही। पति वचन सही मान, उसने भी अपना शरीर त्याग दिया। यज्ञेश दत्त जब शाम को अपने घर लौटा तो उसने पत्नी को मृत पाया। बहुत दुखी हुआ। अंत्येष्टि की। कोई आधार न देख वह स्वामी रामानंद का शिष्य होने की कामना से श्रीमठ पहुंच गया। स्वामी जी ने उसकी प्रार्थना तो स्वीकार ली, पर इस शर्त के साथ कि वह सौ घड़ी एक पैर पर खड़ा रहेगा। यज्ञेश दत्त स्वामी जी का निर्देश मान एक पैर पर खड़ा रहा। अंत में जब लड़खड़ाने लगा तब आचार्य अनंतानंद ने उसे सम्भाल लिया। स्वामी जी ने यज्ञेश दत्त को दीक्षित तो किया पर यही कहा- 'अनंतानंद ने तुम्हें सम्भाला है, अतः उन्हें ही तुम अपना प्रथम गुरु मानो।' अनंतानंद ने शब्द सुरति योग समन्वित राम भाव का विधिवत् ज्ञान करा, उसका नाम योगानंद रखा। स्वामी जी ने अनंतानंद को राजस्थान पर विशेष ध्यान दे नये शिष्य बनाने के लिए कहा। आचार्य अनंतानंद ने बाद में कृष्ण पयहारी, कर्मचंद, अल्ह, सारीरामदास आदि सात और सिद्ध शिष्य बनाये जिन्होंने राजस्थान में पहुँच रामानंदी शब्द सुरतियोग रूपा रामभक्ति का स्थान-स्थान पर प्रचार किया।

स्वामी रामानंद देख रहे थे कि अत्याचार निरन्तर बढ़ रहे हैं। धर्मान्तरण अपहरण निरंतर हो रहे हैं। दलित वंचित समाज का विशेष रूप से भय एवं प्रलोभन वश धर्म भ्रष्ट किया जा रहा है। तब उन्होंने एक दिन कबीरदास एवं रैदास को बिठाकर कहा- इस समय समाज को गुरुमुख की अत्यंत आवश्यकता है। कुलीनों के गुरुओं में उच्चता का दंभ है। उनमें देश का विचार नहीं है। युगधर्म भूले हैं। लोक संग्रह करने का कार्य भक्तिवान पुरुषों को करने का समय आ गया है। उन दोनों को लोक संग्रह की ओर उन्मुख हो जाना है। सुरति शब्द रामभक्ति योग का सरलतम मार्ग ही इस समय फलप्रद रहेगा। गुर्वादेश को शिरोधार्य कर दोनों ने गाँव-गाँव, नगर-नगर पहुँच दीन-हीन, दलित, वंचित, शोषित समाज को रामभक्ति के सरलतम मार्ग की ओर उन्मुख करने में लगा दिया। दोनों प्रतिदिन अलग-अलग दिशाओं में पहुँच धर्म प्रचार में जुट गये। स्वामी रामानंद के धर्म प्रचार का मठ से बाहर यहीं से श्री गणेश होना कह सकते हैं। सीता लक्ष्मण सहित युगल उपासना की यह अविरल धारा सम्पूर्ण समाज को लम्बे कालखण्डतक आप्लावित करती रही।

●

छह

स्वामी रामानंद के धर्म एवं समाज संरक्षक रूप में बढ़ती ख्याति से प्रभावित होकर धर्म परिवर्तित अयोध्या के सूर्यवंशी राजा श्रीहरिसिंहदेव का भतीजा श्री गजसिंह उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उसने आकर स्वामी जी के सम्मुख विधर्मियों के अत्याचारों का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करते हुए कहा कि जूना खाँ तुगलक के अत्याचारों से भयभीत होकर अयोध्या नरेश श्री हरिसिंह देव राज्य छोड़ कर वन में तपस्या करने लगे हैं। तुगलक ने मुझे, जब मैं उनकी अनुपस्थिति में राज्य की देखरेख कर रहा था, बलपूर्वक हराकर अयोध्या पर अधिकार कर लिया तथा मुझे भी धर्मान्तरण के लिए विवश कर दिया। मेरे बीस हजार (20,000) हिन्दुओं को भी उसने बलात् यवन बना डाला। जिसने मुस्लिम धर्म स्वीकार नहीं किया, उसे निर्दयता से मार डाला। गो, ब्राह्मण का तो वह शत्रु है। जहाँ देखता है उनकी हत्या करवा रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति में कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। जिन-जिन पण्डितों के पास गया, उन्होंने भी हमें अपनाने से मना कर दिया। हमें कोई भी वापस अपने धर्म में लेने को तैयार नहीं है। आपने सबको गले लगाया है। आपका सुयश सुनकर आपकी शरण में आया हूँ। हम सब वापस हिन्दू बनने को तैयार हैं। आप ही इस समय राजपरिवार की, रामभक्त प्रजा की तथा देव नगरी अयोध्या की रक्षा कर सकते हैं। स्वामी जी ने गजसिंह देव से यह करुण वृतांत सुन, ढाढस बंधाते हुए कहा कि वे शीघ्र ही अपने शिष्यों को साथ लेकर अयोध्या आयेंगे तथा सबको सरयू स्नान करा, पवित्र हिन्दू समाज में ले आयेंगे।

निश्चित तिथि पर अपनी शिष्य मण्डली के साथ पहली बार क्रांतधर्मी राष्ट्रसंत स्वामी रामानंद अपनी गुहा से निकल समाज एवं धर्म की रक्षा के लिए बाहर आए। अयोध्या पहुँचते ही परावर्तन के लिए समुत्सुक उपस्थित जन समूह ने, स्वामी रामानंद का तुमुल स्वरों में जय-जयकार कर, आकाश गुंजा दिया, मालाओं से लाद दिया। इतना भव्य एवं दिव्य सत्कार किया कि मृत हिन्दू समाज में एक नया जीवन आ गया। सरयू नदी के तट पर पहुँच स्वामी जी के निर्देश पर सभी धर्म परिवर्तित पुरुषों ने एक साथ सरयू के जल में डुबकी लगायी। तभी स्वामी जी ने शंख ध्वनि की। जैसे ही

डुबकी लगाकर व्यक्ति निकले, उनकी सुन्नत मिट गयी थी। सर्वत्र आनंद छा गया। स्वामी जी ने उन्हें पुनः पवित्र हिन्दू संस्कारों से अभिषिक्त कर कहा- मेरा शरीर अयोध्यावासियों को यह विश्वास दिलाने के लिए यहाँ आया है कि वे इस संकट की घड़ी में अकेले नहीं हैं। उनके साथ मैं ही नहीं भौतिक एवं दैविक सभी शक्तियाँ सूक्ष्म एवं प्रत्यक्ष रूप में खड़ी हैं। घबराकर मतान्तरित होने की आवश्यकता नहीं है। भारत का सनातन धर्मज्ञान, भारत का अध्यात्म तथा भारत की सांस्कृतिक परम्परा उनके साथ है। भारत ने ही विश्व को सद् ज्ञान दिया है। विश्वास रखें, यह काल रात्रि शीघ्र ही समाप्त होकर, भारत में फिर से ज्ञान एवं अध्यात्म का प्रखर सूर्योदय होगा। भौतिकता में उलझा पश्चिम एक दिन शांति की कामना करता हुआ, भारत के इसी अध्यात्म की शरण में आयेगा। स्वामी रामानंद के यह कहते ही, जोर से बजी तालियों की गड़गड़ाहट ने, नव जागृत उत्साह का प्रकटीकरण कर दिया। स्वामी रामानंद के जयकारों से आकाश गूंज उठा। घर वापसी का यह दृश्य बड़ा मनोहारी था। स्वामी रामानंद की जयजयकार से सरयू तट गूंज उठा।

रामजन्म भूमि, हनुमानगढ़ी, कनक भवन का दर्शन, संतसम्बोधन कर स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ काशी लौट आए। गली-गली में स्वामी के साहस तथा उनकी दिव्य योग शक्ति की चर्चा होने लगी। स्वामी जी दीक्षा गुरु से धर्मोद्धारक गुरु हो गये।

इसके बाद एक और चमत्कारी घटना घटी। श्रावणी पर्व पर काशी में विराट् धर्म आयोजन था। सुदूर प्रदेशों से विद्वान् एवं धर्माचार्य उस पवित्र नगरी में पधारे थे। स्वाभाविक था धार्मिक अनुष्ठान के पश्चात् एकत्र विद्वत् समाज का ध्यान देश की ज्वलंत समस्या की ओर जाये। विधर्मी शासकों के अमानुषिक, लज्जास्पद अत्याचारों पर विचार हो। सामाजिकों के धारित शास्त्र, स्वीकृत प्रतीक चिह्न, यज्ञोपवीत, तिलक, चोटी, मालादि ही नहीं, कुलीन सती सावित्रियों के पवित्र शील के लज्जास्पद अपहरण से रक्त उबल रहा था। धर्मान्तरण की आंधी सनातन धर्म के जहाज को डुबो रही थीं। शास्त्र जलाये जा रहे थे। मंदिर तथा मूर्तियाँ तोड़ी जा रही थी। हिन्दुत्व ही संकटग्रस्त था। सनातन जीवन शैली बदली जा रही थी। सभी ने एक स्वर से प्रतिरोध करने की भाषा तो बोली, पर कठोर सैनिक तंत्र के आगे निःशस्त्र शांति प्रिय समाज ही नहीं, छोटे-छोटे राज्यों को ही अपना देश समझ, परस्पर शत्रुता जी रहे राजागण तक हतप्रभ थे। हताश, निराश हो सिर का मुकुट उतार विधर्मियों के चरणों में अर्पित कर रहे थे। धर्म बचे तो कैसे। संस्कृति की रक्षा हो तो कैसे। स्वर्ग रूपा से यह भूमि नरक बनने से बचे तो कैसे? शाश्वत हमारा तत्व ज्ञान संरक्षित एवं व्यवहार में रहे तो कैसे? सभी

उपस्थिति विद्वान् आक्रोशी भाषा तो बोल रहे थे, पर सैनिक शक्ति के आगे अशक्तता अनुभव कर रहे थे। सभी का चिंतन एकीभूत हो, इसी निर्णय पर पहुँचा कि आज के वर्तमान, लब्धप्रतिष्ठ, देश के महान योगी, संत स्वामी रामानंदाचार्य से मिला जाये तथा उनके सामने देश एवं समाज का यह घोर कष्ट प्रस्तुत कर उनसे उचित परामर्श लिया जाये। उन्होंने अभी-अभी अयोध्या में बीस हजार धर्मान्तरित हिन्दुओं को वापस हिन्दू बना इस दिशा में एक अभूतपूर्व कार्य कर दिखाया है।

सभी सम्प्रदायों एवं सभी प्रदेशों के उपस्थित विद्वानों का एक प्रतिनिधि मण्डल इसी महाभाव को लेकर श्रीमठ पहुँचा। आचार्य अनंतानंद ने उनके बैठने की पूर्व में ही उचित व्यवस्था कर रखी थी। उनके पहुँचते ही आचार्य ने उनका शिष्टाचार युक्त उचित स्वागत सत्कार किया। सबने स्वामी रामानंदाचार्य के सम्मुख बड़े ही कातर स्वरों में अपने-अपने सम्प्रदायों का बड़ा ही करुण चित्र प्रस्तुत किया तथा प्रार्थना की इस समय आप ही देश त धर्म को बचा सकते हैं। समाज पर छाये विपत्ति के बादलों को हटा सकते हैं। हम पूरी आशा लेकर आपकी सेवा में आये हैं। उनको सुनकर स्वामी रामानंद ने पर्दे के भीतर से ही कहा - 'धैर्य धरें। महान मुक्तात्माओं ने पृथ्वी पर जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया है। उस परम शक्ति पर विश्वास रखें। उसे यह देश बहुत प्रिय है। उसने पहले से ही इस हेतु अपनी व्यवस्था कर दी है। सर्वत्र उसकी योजना का विस्तार हो चुका है। आपसे कहना है कि आप सभी अपनी-अपनी क्षुद्र स्वार्थ, गर्हित संकीर्णताएँ, विभाजित करता आपसी विद्वेष छोड़, संगठित एवं समरस समाज निर्माण में पूरा सहयोग प्रदान करें। संगठित हिन्दू समाज ही इस विपत्ति का सफलतापूर्वक सामना कर सकता है। विभाजित होकर नहीं। स्वामी जी के इस कथन से संतुष्ट प्रतिनिधि मण्डल को आचार्य अनंतानंद ने ससम्मान विदा किया।

स्वामी जी ने उसी रात एक और अद्‌भुत चमत्कार किया। प्रातः की नमाज की सूचना देने के लिए जब मौलवी मस्जिदों के ऊपर पहुँचे तो उन सबका कंठावरोध हो गया। उनके कंठ से आवाज नहीं निकल रही थी। इस घटना ने, काशी को ही नहीं, दिल्ली तक को हिला कर रख दिया। सैयद और शेख, मुल्ला और मोमिन सब किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। देश भर में जहाँ भी दो मुसलमान मिलते, यही चर्चा करते। इब्ननूर और मीरतकी आदि मौलवियों ने बैठकर विचार-विमर्श किया। निश्चय ही यह कारस्तानी किसी हिन्दू सिद्ध पुरुष की है। काशी में यह घटना हुई थी, इसलिए सबका ध्यान श्रीमठ के स्वामी रामानंद की ओर ही गया। मस्जिदों में पक्ष विपक्ष में बड़ी तेजतर्रार चर्चाएँ हुई। मार दो, काट दो के शब्द गूंजे, पर पच्चीस हजार शिष्यों से युक्त

पाँच किमी. विस्तृत मठ में सीधे प्रवेश की किसी की हिम्मत नहीं हुई। तय हुआ है कि पहले स्वामी रामानंद के शिष्य कबीर दास से मिला जाये। मस्जिद के कुछ प्रमुख लोग बड़े उपहारों के साथ कबीरदास के घर पहुँचे। कबीर ने उन उपहारों को लेने से मना कर दिया। उनके बहुत अनुनय, विनय, अनुरोध, आग्रह पर कबीर ने बस इतना ही स्वीकार किया कि वह उनके साथ चलकर, उन्हें स्वामी रामानंद से मिलवा देंगे। मार्ग में कबीरदास ने इतना ही कहा 'बादशाह ने पानी में आग लगाई है। सोते सिंह को जगाया है। मैं क्या करूँ। मेरे वश की बात नहीं है। इसके उत्तर में साथ चल रहे एक मौलवी ने कहा, 'स्वामी जी जो भी आदेश देंगे, बादशाह से कहकर हम उसे पूरा करवा देंगे। हमें साथ ही रहना है। साथ ही मरना है। तुम्हारी सहायता के बिना यह संभव नहीं है।' इस पर भी कबीर ने उन्हें बहुत फटकारा, 'हिन्दुस्तान में रहकर, हिन्दुओं के विरुद्ध षड़यंत्र, उनके साथ अमानुषिक अत्याचार तथा उनकी नैतिक भावनाओं को कष्ट पहुँचाने वाले काम, साथ-साथ नहीं चल सकते। मुस्लिमों के प्रमुख, कबीर के सामने बहुत गिड़गिड़ाये। तब तक श्रीमठ आ गया था।

स्वामी जी तो अंतर्यामी पुरुष ठहरे। उनसे क्या छिपा था। कबीर उन्हें लेकर मठ में प्रवेश करें, उससे पूर्व स्वामी जी ने गुहा में से ही शंख ध्वनि की। उसे सुन आगंतुक प्रतिनिधि मण्डल, विमोहन की अवस्था में चला गया। कबीर ने तब धीमे से उनके प्रमुख से कहा 'स्वामी जी कहें, उसे चुपचाप स्वीकार कर लेना। इसी में सबका भला है।' प्रमुख ने भी धीमे से ही उत्तर दिया, 'हम तैयार हैं।' कबीर ने गुहा के सामने खड़े होकर विनम्र शब्दों में मुस्लिम प्रतिनिधि मण्डल के मिलने आने की बात कही। स्वामी जी ने पर्दे की ओट से ही कहा- 'सम्पूर्ण संसार का ईश्वर एक ही है। सारे सम्प्रदाय उस एक परमेश्वर की प्राप्ति की ही बात करते हैं। सबका गंतव्य एक ही है। उस परम पुरुष की दृष्टि में भी पक्षपात नही है। वह सब पर एक सी ही कृपा दृष्टि की वर्षा करता है। बाहरी भेद तो हमने बनाये हैं। उन्हें लेकर हम अनावश्यक लड़ रहे हैं। कट मर रहे हैं। यह ठीक नहीं है। सम्पूर्ण जगत उसी एक परमात्मा से उत्पन्न है। सबको उस परम पुरुष की पूजा आराधना का पूरा अधिकार प्राप्त है। यह शरीर इसीलिए बना है। वह सब में है और सब उसमें है। वह केवल तुम्हारे लिए ही नहीं है। सबके लिए है, फिर क्यों दूसरों के धर्म पालन में बाधा पहुँचाते हो। वह एक ही है। केवल नाम भेद है। उसने कोई भेद नहीं कर रखा है। फिर हम क्यों भेद कर रहे हैं। सबको अपने-अपने अनुसार जीने का पूरा अधिकार है। अपनी कट्टरता से दूसरों को क्यों कष्ट पहुँचाते हो। तुम्हारा बादशाह हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार कर रहा है। किसी की

आत्मा को कष्ट पहुँचाकर वह स्वयं भी सुख से कैसे रह सकेगा। वह सब देख रहा है। उससे कुछ छिपा नहीं है।' स्वामी जी के इस उपदेश को सुन उपस्थित प्रतिनिधि मण्डल प्रमुख ने कहा- 'आप की आज्ञा हमें स्वीकार है। आपकी सब बातों को हम बादशाह तक पहुँचाकर, उन्हें मनवाने की पूरी-पूरी कोशिश करेंगे। हम पर कृपा कीजिए।

स्वामी जी ने फिर कहा- 'देखो जब सबको उस परमात्मा को भजने का अधिकार है, तब हिन्दुओं पर यह जजिया कर क्यों है? आप मस्जिद बनाते हो, उसी तरह हिन्दुओं को भी मंदिर बनाने का अधिकार होना चाहिये। मंदिर बनाने पर आपत्ति क्यों। मस्जिद और मंदिर के चूने पत्थर में यह कैसा अंतर? ईश्वर एक है। उसकी प्राप्ति के मार्ग अनेक हैं। उसे पाने की सबको स्वतंत्रता होनी चाहिए। फिर जबरन धर्मान्तरण क्यों? उसकी आस्थाओं पर चोट भी क्यों पहुँचाई जाये। हिन्दू गाय को माता मान पूजा करता है। उसका वध हिन्दुओं की आस्था पर चोट पहुँचाना है। गोवध तत्काल बंद होना चाहिए। इसी तरह हिन्दुओं की धर्म पुस्तकों की होली जलाई जा रही है, यह क्यों? धर्म पुस्तकें तो मुनष्य को सत्पथ पर ले जाने वाली होती हैं। बुराई से बचाती हैं। उन्हें जलाना बंद होना चाहिए। सत्ता के अत्याचारों की भी सीमा होती है। सत्ता का बल प्राप्त मुसलमान हिन्दू नारियों का जबरन शील भंग कर रहे हैं। अपहरण कर रहे हैं। नारी के स्वाभिमान की रक्षा नहीं करेंगे तो समाज कैसे चलेगा। भारत में नारी के सतीत्व की ज़ो महिमा है, उसे घटाया जा रहा है। यह बंद होना चाहिए। यहाँ तो पूर्व से ही सभी वर्गों, वर्णों तथा जातियों को समान सुविधाएँ तथा समान प्रतिष्ठा प्राप्त है। यदि राजा का लड़का घोड़ी पर बैठ सकता है, तो हरिजन का बेटा क्यों नहीं। उसे क्यों घोड़े से उतारा जाता है। परमात्मा की दृष्टि में सभी बराबर हैं। फिर यह भेदभाव क्यों? मस्जिद के सामने से उसे घोड़े पर बैठकर क्यों नहीं निकलने दिया जाता। शंखवादन तो हिन्दू समाज की पूजा का एक विशेष अंग है। उसका बजाना बंद कर दिया है। कुंभ आदि पर्वो पर धर्म स्थानों पर आने पर यात्रियों से कर लिया जाने लगा है। मोहर्रम के दिनों में कोई त्योहार नहीं मनाने दिया जाता है। क्या आप ही श्रेष्ठ हैं। औरों का कोई व्यक्तित्व शेष नहीं रहा क्या? कीर्तन बंद करवा दिये। उत्सव पर्व त्योहार मनाने बंद कर दिये। हिन्दू की सारी स्वतंत्रताएँ समाप्त कर दी। जबकि वह यहाँ का मूल निवासी है। बहुसंख्या में है। उसकी अपनी प्राचीन संस्कृति है। उसके अपने धर्म ग्रंथ है। उसका अपना चिंतन है। उन्हें झुठलाना, जलाना तथा उसके मानवीय अधिकारों पर आघात पहुँचाना कहाँ तक उचित है? राजा का काम तो प्रजा

का रंजन करना है। प्रजा को सुखी रखना है। फिर बहुसंख्यक समाज को यह दुःख क्यों? याद रखो दूसरों को कष्ट पहुँचाकर स्वयं भी सुखी नहीं रह सकते।

आप मेरी इन बारह बातों को अपने बादशाह गयासुद्दीन तुगलक के सामने रखें तथा उनकी लिखित में स्वीकृति ला सार्वजनिक घोषणा करवा दें। परमात्मा आपका संकट अवश्य दूर करेगा। मुस्लिम समाज के प्रतिनिधि मण्डल में आये सभी मुल्ला मौलवियों ने, स्वामी जी की सारी बातों को सही मान, स्वयं स्वीकारा तथा शीघ्र ही बादशाह से इस सम्बन्ध में फरमान निकलवाने की बात कह, वहाँ से विदा ली। कबीर उन्हें द्वार तक छोड़ने गये।

दिल्ली से जैसे ही मुस्लिम समाज के इन प्रतिनिधियों ने बादशाह से मिलकर इन बारह मांगों के सम्बन्ध में सकारात्मक आदेश लिया, देश के गाँव-गाँव में ढोल के साथ नगारे बजने लगे। सर्वत्र हर्ष का वातावरण छा गया। स्वामी रामानंद की धर्मरक्षक के रूप में सर्वत्र प्रशंसा तथा जय-जयकार होने लगी। स्वामी जी राष्ट्रोद्धारक संत के रूप में प्रख्यात हो गये। इधर मुस्लिम समाज में अजान एवं नमाज का कंठावरोध हट गया। मौलवी उसी प्रकार फिर अजान लगाने लगे तथा मस्जिदों में नमाज होने लगी। मुसलमानों ने स्वामी रामानंद का एक बड़ा उपकार माना तथा समन्वयी महात्मा के रूप में सर्वत्र उनकी प्रशंसा करने लगे। फिर से दोनों समाज शांतिपूर्वक, मैत्री भाव से रहकर अपना धर्म-कर्म करने लगे।

स्वामी रामानंद के इस प्रयास की सर्वाधिक प्रशंसा दिल्ली के महान सूफी संत ख्वाजा निजानुमुद्दीन औलिया ने की। उन्होंने अपने शिष्य कवि खुसरो के हाथ एक पत्र स्वामी रामानंद के पास भिजवाया। वह पत्र सुनहरे बेलबूटों से इस तरह सजा हुआ था कि सामान्य दृष्टि से देखने पर यह नहीं लगता था कि उसमें कुछ लिखा भी है। अक्षर भी बेल बूटे बन गये थे। उसमें अरबी भाषा में पवित्र ग्रंथ कुरान शरीफ का यह सूत्र लिखा था। 'इल्ला बजिक्र अल्लाह तत मैनुल कुलूब' जिसका अर्थ है भगवान् के स्मरण से ही आत्मा को शांति मिलती है। कवि खुसरो ने श्रीमठ पहुँचकर पूरा पत्र आचार्य अनंतानंद के माध्यम से गुफा में स्वामी जी के पास भिजवाया। स्वामी जी ने बहुत समय तक कोई उत्तर नहीं दिया, तो कविवर खुसरो ने स्वामी की प्रशंसा में एक कविता पढ़ी, जिसकी पहली पंक्ति फारसी भाषा में थी तथा दूसरी हिन्दी में। इस कविता ने स्वामी जी की दयालुता को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया था तथा उस प्रति में कवि ने अपना अगाध प्रेम प्रकट किया था। इस कविता के समाप्त होते ही शंख ध्वनि हुई, पर्दा हटा तथा कवि खुसरो की आंखे उस दिव्य छवि को देख, ठगी की ठगी

रह गयीं। साथ ही कविवर खुसरो को सुखद आत्मिक शांति का अनुभव भी हुआ। इतने में ही एक दौना पक्षी चोंच में तृण दबाये, गुहा में आ घुसा और मण्डलाकार उड़ने लगा। उस पक्षी ने चोंच में दबाया तृण जैसे ही चौखट पर रखा, स्वामी जी ने उसे उठा लिया और आचमनी से जल फेंका। जल के छींटों को सिर पर धारण कर वह पक्षी उड़ गया। वह पक्षी स्वयं ख्वाजा साहब थे। दूसरे दिन काशी में जब इस घटना की चर्चा हुई, तो स्वामी जी की दिव्यता की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। अब स्वामी जी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समाजों के पूज्य हो गये।

इस प्रसंग की चर्चा सुदूर पश्चिम तक पहुँची। एक दिन फातिमा नाम की महिला, जो एकांत साधनारत संत यासीन की शिष्या थी, श्रीमठ में स्वामीजी के पास आयी। उस समय सत्संग प्रारम्भ होने वाला था। वह बड़ी शालीनता के साथ चुपचाप दीवार से सटकर एक ओर बैठ गयी। उस समय प्रागंण में पर्याप्त संख्या में श्रद्धालु भक्तजन आ चुके थे। वे उसे देख, प्रश्न पर प्रश्न करने लगे। परन्तु वह नहीं बोली। विवश करने पर उसने इतना ही कहा 'जो जानते हैं वे बकते नहीं, जो बकते हैं, वे जानते नहीं, यह कह कर वह जाने लगी, तब उसके ज्ञान गर्वित शब्दों पर आकृष्ट हो, कुछ सज्जन वृंद उसे बुलाने लगे। वह फिर वहीं आकर चुपचाप बैठ गयी। थोड़ी देर बाद ही स्वामी जी की ध्यान साधना पूरी हुई। घंटी बजी, तब आचार्य अनंतानंद ने फातिमा के निकट आकर पूछा- 'क्या आप स्वामी जी से मिलना चाहती हैं।' इस पर उसने अपनी गर्दन हिलाकर स्वीकृति दी। आचार्य अनंतानंद ने स्वामी जी से जाकर उस महिला के सम्बन्ध में कहा। स्वामी जी ने तुरंत पर्दा हटा, बाहर आ उसे अपने दिव्य दर्शन दिये। उन्हें देख फातमा की देह में दिव्य चेतना का संचार हुआ। वह संभलकर उठी और स्वामी के चरणों में अपना सिर टेक दिया। बोली- 'मुझे मेरे गुरुदेव श्री यासीन ने आपकी सेवा में भेजा है। वे परमार्थ को परखने वाली ज्योति के लिए आपकी चरण रज चाहते हैं, ताकि वे उसका सुरमा बना नेत्रों में आँजते रहे। मैंने आपकी प्रशंसा पहले से ही सुन रखी थी। तभी से मेरे मन में आपके दर्शन की उत्कट इच्छा थी। गुरुदेव यासीन के आदेश को मैंने अपना सौभाग्य माना। आपके दर्शन का मेरा मनोरथ पूरा हुआ है। इतनी दूर से मैं छद्म वेश में आयी हूँ। मुझ पर भी आपकी अमृत वर्षिणी कृपा हो। मेरे गुरुदेव मन, क्रम और वचन से पूरी तरह भगवत् भजन में लीन रहते हैं।

फातिमा की बात को स्वामी जी ने बड़े ध्यान से सुना। बोले- 'भारत से तो पहले ही बहुत सारे पहुँचे हुए संत वहाँ गये हुए हैं। वे वहाँ भारतीय दर्शन का तब से ही प्रचार कर रहे हैं। सूफ के वस्त्र पहनने से वे सूफी सन्त कहे जाते हैं।

आपकी ऊँचाई तक विश्व का कोई भी संत अभी तक नहीं पहुँच सका है। आपके पास वह दिव्य शक्ति है, जो इस छोटी सी गुफा में बैठे-बैठे, साधक को चौथी सीढ़ी का ज्ञान करा देती है। आप अप्रतिम है। आप का कोई सानी नहीं। यदि पश्चिम के संतों में ही इतनी शक्ति होती, तो गुरुदेव यासीन मुझे इतनी दूर क्यों भेजते?

'यह उनका बड़प्पन है,जो मुझे इतना मान देते हैं। कहना, मैं स्वयं अलविदा पूर्व वहीं पहुँच, उनकी इच्छा की पूर्ति कर दूंगा।'

'यह तो गुरुदेव पर ही नहीं, पूरे पश्चिम पर आपकी महती कृपा होगी। मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी। आज्ञा हो तो विदा लूँ। यह कहकर फातिमा चरण स्पर्श कर जाने को प्रस्तुत हो गयी।

अनंतानंद इन्हें ससम्मान द्वार तक पहुँचा विदा करो। सत्संग के लिए आये हुए श्रद्धालु, उसके भाग्य को सराहते हुए, बड़ी सतृष्ण दृष्टि से उसे देखने लगे थे।

इसी तरह पश्चिम के असरार देश का रहने वाला नामवर नामक एक अमीर जो अभी नवयुवक ही था, दाड़ी मूंछ भी नहीं उगी थी, परमार्थ की खोज में श्रीमठ पहुँचा। वह घोड़े पर बैठकर आया था। वह युवक बड़ा ही सात्विक, संस्कृतभाषी तथा ईश्वर भक्ति में डूबा हुआ था। बड़ा सत्यवादी था। पृथ्वी पर सोता था। जौ की बनी हुई रोटी खाता था। मठ में आकर उसने आचार्य अनंतानंद से पूछा- क्या मैं स्वामी जी के दर्शन कर सकता हूँ? तब आचार्य अनंतानंद ने कहा- 'इस समय तुम्हें दर्शन प्राप्त नहीं हो सकेंगे। हाँ, शंख ध्वनि सुन सकोगे। इस पर उसने कहा 'मेरी कुछ जिज्ञासाएँ हैं, उनका समाधान चाहता हूँ। आचार्य अनंतानंद ने कहा- 'सत्संग में बैठकर परमार्थ की जिज्ञासा कर सकते हो।' इस पर उसने कहा- 'इतना भी कुछ कम लाभ नहीं है।' प्रतीक्षा करने लगा। ध्यान साधना से निपटते ही स्वामी जी ने गुहा से शंख ध्वनि की। उस सम्मोहिनी ध्वनि को सुनते ही अमीर नामवर आध्यात्मिक आनंद में डूब गया। अर्द्धचेतन अवस्था में पहुँच गया। तुरीयावस्था जिसे कह सकते हैं। बहुत देर के बाद वह अपनी सामान्यावस्था में आ सका। वह संस्कृत का आशु [illegible] था। स्वामीजी प्रवचनार्थ पधारें, इस अवकाश से उसने स्वामी जी तथा शंख ध्वनि की प्रशंसा में कुछ श्लोक रच उन्हें सस्वर बोलने का अभ्यास कर लिया। जैसे ही स्वामी जी सत्संग में पधारे, उसने स्व रचित संस्कृत श्लोकों से खड़े होकर स्वामी जी का अभिवादन किया। स्वामी जी देववाणी संस्कृत में एक विदेशी सज्जन से धारा प्रवाह काव्य पाठ सुन बड़े हर्षित हुए। स्वामी जी ने संस्कृत में ही पूछा-

‘आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? कैसे आये हैं? इस पर संस्कृत में ही नामवर ने अपना परिचय दिया।’ तथा कहा कुछ जिज्ञासाएँ मन में हैं, समाधान चाहता हूँ। पूछो। (वार्तालाप संस्कृत में ही होता रहा।)

‘स्वामी जी उस परम पिता परमात्मा से एकात्मता प्राप्ति का सरलतम मार्ग कौन सा है?’

‘सच्चा प्रेम! सुरति शब्द योग- राम-नाम जप जिसे इस आश्रम ने ही प्रारम्भ किया है।’

‘स्वामी जी इस मार्ग का प्रचलन कहाँ-कहाँ हुआ है?’

‘सम्पूर्ण भारत में। उत्तरी भारत में विशेष कर।’

‘क्या इस अकिंचन पर आपकी कृपा की वर्षा हो सकती है? आपके सान्निध्य में उस दुर्लभ एकात्मता को पाना चाहता हूँ।’

‘क्यों नहीं। इस मठ के द्वार सभी मुमुक्षुओं के लिए खुले हैं। यहाँ आकर कोई निराश नहीं लौटा है।’

‘यह सुनते ही वह अमीर नामवर बढ़कर स्वामी जी के चरणों में झुक गया। बोला- यह शरीर अब आपकी शरण में है।’

‘सत्संग में आते रहो। बैठो, धीरे-धीरे सब हो जायेगा। उससे मिलने का सभी को अधिकार है। गुरु भी वही है जो अपने ज्ञान को कंजूस के धन की तरह गाँठ में बाँधकर नहीं रखता।’

ज्ञान पवित्र है। यह इस नाते सापेक्ष भी है कि समाज उसका सतत अनुकरण करे, आचरण करे, जीवन को धन्य करे।

नामवर को अध्यात्म भूमि भारत इतनी अच्छी लगी कि वह आत्मज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भी अपने देश असरार नहीं लौटा। काशी में ही बस गया। वह बराबर कहता रहता था ‘भारत से बढ़िया और कोई देश नहीं है। जहाँ ईश्वर साधक के तथा साधक सदा ईश्वर के साथ रहता है।’

सायंकाल स्वामी जी ने अपने प्रवचन में कहा, “आज चिन्तन की परम्परा कुन्द हुई दिखती है। इसका कारण स्पष्ट है देश की वर्तमान परिस्थितियाँ इतनी भयावह, इतनी विकट हो गयी हैं कि देश के पास जो कुछ संचित ज्ञान है, वही आज आक्रांत है। उसे ही सुरक्षित रख पाना कठिन हो रहा है। नये चिंतन के लिए तो कहीं अवकाश

दिखता ही नहीं। इस विषम स्थिति में भी आपको घबड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। समाज को अपने धर्म, अपने संस्कृति तथा अपने अध्यात्म ज्ञान से जुड़ाये रखने का दायित्व आज श्रीमठ ने अपने कंधों पर उठा लिया। श्रीमठ ने धर्मांतरित बंधुओं को अपने घर वापस बुलाया है। श्रीमठ ने विधर्मी आततायियों को सचेत और सावधान ही नहीं किया है, हिन्दू समाज पर निरंतर होते अत्याचारों को भी रुकवाया है। महिलाओं को स्वतंत्रता के साथ अपने जीवनयापन के अवसर उपलब्ध करवाये हैं। हिन्दू समाज की एकता तथा सुदृढ़ता के लिए दलितों, वंचितों, शोषितों तथा निराश्रितों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ उन्हें समाज में समता युक्त सम्मानजनक स्थान दिलाया है। समाज में समन्वय सद्भाव तथा समानता का प्रसुप्त भाव जगाया है। उनका खोया आत्मविश्वास उन्हें लौटाया है।

श्रीमठ ने नकारात्मक नहीं सकारात्मक कदम ही उठाये हैं। विरोध की भाषा नकार, प्रेम, सौहार्द, बंधुत्व तथा आत्मीय भाव को स्वीकार, सबको एक मंच पर लाने का प्रयत्न किया है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आपके सम्मुख उपस्थित है।

राम जो सबमे रमा है वही हमारा आराध्य है। वही हम सबके भीतर विराजमान है। श्रीमठ ने उसका जो यहाँ आया है उसे साक्षात् कराया है। उसके भीतर की प्रसुप्त अनंत चेतनाओं को जगा उसे पूर्ण पुरुष राम के निकट पहुँचाया है। आस्था की प्रखरता सफलता की नींव है। विश्वास उसकी सीढ़ियाँ हैं, विवेक उसकी अबाध गति है, प्रदत्त ज्ञान का विवेक आस्था तथा विश्वास के साथ अंगीकरण, बाधाओं से टकराने, उनपर विजय पाने तथा गंतव्य तक पहुँचने का गड़ा अडिग आलेख है। श्रीमठ ने ऐसे अनेक शिलालेख गाड़े हैं। आप श्रीमठ के उत्कृष्ट मार्ग पर गति से आगे बढ़ें, मेरा आशीर्वाद सदा आपके साथ है। सफलता आपके चरण चूमने, उत्सुकता से सामने खड़ी है।''



सात

स्वामी रामानन्द के समक्ष इससे भी बड़ी समस्या थी, देश के अलग-अलग सम्प्रदायों को एक सूत्र में बांध, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के एक सुदृढ़ संगठित मंच पर खड़ा करने की। इस पर धर्म यात्रा का प्रस्ताव तो आया, परन्तु वरिष्ठ सन्तों का मन्तव्य था कि पहले समन्वयी दृष्टि से एक सी पुस्तक तैयार की जाये, जो सभी सम्प्रदायों में अध्यात्म के स्तर पर सद्भाव स्थापित कर सके। वैभिन्न के कारण छोटी-छोटी बात को लेकर उपजे विवादों का परिहार कर सके। हमारे लोक संग्रह में लगे सन्त भी उससे ज्ञानात्मक मार्ग दर्शन लें। अपने दर्शन को सही परिप्रेक्ष्य में सभी के सामने विश्वास के साथ प्रस्तुत कर सकें। स्वामी जी के साथ इस विषय पर सभी पक्षों को लेकर गहरा मंथन तथा गहरा विचार विमर्श हुआ। अन्ततः यह निश्चय रहा कि 'आनंद भाष्य' के नाम से एक धर्म ग्रंथ तैयार हो, जो वेदान्त का प्रतिनिधि ग्रंथ हो। वेद उपनिषद् गीता तथा ब्रह्म सूत्र का सार भूत निचोड़ जिसमें आ जाये। स्वामी जी से ही उसे लिखकर तैयार करने का निवेदन किया गया। अल्प समय में ही स्वामी जी ने 'आनन्द भाष्य' लिख डाला। सर्व प्रथम स्वामी जी ने उसे अपने पट्ट शिष्य आचार्य अनन्तानंद को व्याख्या सहित सुना समझाया। दोनों ने मिल सभी पक्षों पर गम्भीरतापूर्वक विचार विनिमय किया। स्वामी जी ने कई संशयों का निराकरण यह कह कर किया कि सूत्रों के विवेचन में मैने भी महर्षि वेद व्यास की सर्वसमन्वयी रचना पद्धति को ही इसमें प्रधानता दी है।

'आनन्द भाष्य' जैसे ही सामने आया, वैष्णव सम्प्रदायों में ही नहीं, शैवों शाक्तों में ही हलचल पैदा हो गई। तर्क वितर्क होने लगे। ग्रहण के दिन गंगा स्नान हेतु आये, सभी सम्प्रदायों के धर्माचार्यो की महती सभा हुई। 'आनन्द भाष्य के सिद्धान्त पक्ष को लेकर सब अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत कर रहे थे। विशिष्टद्वैती उनके संशयों, भ्रमों, तथा आपत्तियों का शांत भाव से, बड़ी विद्वता के साथ उत्तर दे रहे थे, पर कौन मानने वाला था। जरा जरा सी बात को लेकर बात का बतंगड़ बनाया जा रहा था। समरसता, समन्वय तथा संगठित शक्ति बन खड़े होने की आवश्यकता पर विचार करने को कोई प्रस्तुत नहीं था। सब अपनी अपनी ढपली पर अपने अपने राग बजा रहे थे। विभिन्नता

से उत्पन्न देश की दुर्बलता तथा बाह्य सैनिक, राजनैतिक तथा धार्मिक आक्रमण से देश में उत्पन्न अतीव भयावह, गम्भीर स्थिति की चिन्ता करने वाला कोई नही था। किसे पता था कि भारत की धार्मिक स्वतंत्रता के लोकतांत्रिक मूल्य, धार्मिक कट्टरताओं के आगे पराजित, पराभूत तथा दुर्बल सिद्ध होकर स्वयं समस्या बन जायेंगे। भारत अपनी स्वतंत्रता ही नहीं खोयेगा, अपने को समाप्त करने की स्थिति में भी ला खड़ा करेगा। कोई इस बात को मानने के लिए तैयार ही नही था कि सभी अवतारों, सभी सिद्धो तथा सभी चिन्तकों ने एक ही तत्त्वज्ञान प्रस्तुत किया है। सभा में कई बार बड़े अशोभनीय दृश्य आ उपस्थित हुए। रक्तपात तक की स्थिति आ गई। तब कुछ विवेकवान पुरुषों ने यह प्रस्ताव रखा कि जब पुस्तक के लेखक स्वयं काशी में है, तत्त्वज्ञ हैं, क्यों न उन्हीं के पास चलकर उत्पन्न शंकाओं का समाधान लिया जाए। इसपर सबकी सहमति बन गई। सभी सम्प्रदायों के आचार्य स्वामी जी के प्रत्यक्ष दर्शन को मन ही मन उत्सुक भी थे।

श्री मठ में जैसे ही यह समाचार पहुँचा कि सभी धर्माचार्यों का एक प्रतिनिधि मंडल 'आनंदभाष्य' को लेकर उठे विवादों से उत्पन्न शंकाओं के समाधान के भाव से श्री मठ आने वाले हैं, स्वामी जी ने उनके वैठने एवं स्वागत सत्कार की उचित व्यवस्था गुहा द्वार पर करवाई। जैसे ही वे पहुँचे, गुहा का पर्दा हटा दिया गया। सामान्य शिष्टाचार के बाद स्वामी जी ने सभी धर्माचार्यों की आपत्तियों को बड़े धैर्य एवं शांति के साथ सुना। उन्हें सुनने के बाद स्वामी जी ने सभी मतों की अलग अलग व्याख्या प्रस्तुत कर उनके बीच के अन्तर को बताते हुए कहा- मैने 'आनंदभाष्य' में उसी सर्वमान्य सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है, जिसे पूर्व में महर्षि वेद व्यास प्रतिपादित कर चुके हैं। इसपर एक महापंडित ने यह तर्क प्रस्तुत किया- 'हम कैसे मानते कि आनन्दभाष्य में प्रतिपादित आपका मत, महर्षि व्यास का ही मत है?' इसपर स्वामी जी ने ध्यान लगा, महर्षि व्यास का स्मरण किया। तभी महर्षि व्यास की वाणी सुनाई दी।'श्री रामानंद ने जो भाष्य लिखा है, उसमें उन्होंने मेरे ही मत का प्रतिपादन किया है। इन्होंने इसमें किसी भी मत का खंडन न कर, समन्वयी दृष्टि अपनाई है। यही आज के समय की अवश्यकता है। आप सभी समस्त वाद विवादों को छोड़, आज की परिस्थितियों के संदर्भ में जब गम्भीरता से विचार करेंगे, तो आपको 'आनन्द भाष्य' की यथार्थता में कोई सन्देह नहीं रहेगा।' यह कह वाणी मौन हो गई। वाणी सुन सभी आचार्य आवश्वस्त हो, 'आनन्द भाष्य' को व्यास प्रमाणित ग्रंथ मान, स्वामी जी की जय जयकार करने लगे।

चरण स्पर्श कर सभी आचार्य वहां से विदा हुए। सबसे अधिक प्रभाव मठ के नवोदित साधक शिष्यों पर पड़ा। वे आचार्य अनन्तानंद के निकट बैठ, गम्भीरता से 'आनंदभाष्य' का अध्ययन करने लगे। गूढ़ तत्त्वों को समझ हृदयंगम करने लगे।

यह विरोध काशी में तो शान्त हो गया। परन्तु देश में फैले हुए पाशुपत्य, लिंगायत तथा वीर शैवों में, आक्रमण का रूप ले रहा था। इनमें कामरूप के कुलाचारी; चामुण्डा, कपाली, भैरवी के अभिचारी, वामाचारी, तामसी आराधक प्रमुख थे। झुण्ड के झुण्ड काशी में आकर इकट्ठे हो गये। मद्यपायी भैरवियों को लेकर मठ पर चढ़ आये। आते ही उन्होंने हल्ला मचाना प्रारम्भ कर दिया। कोलाहल को सुन, पर्दा हटा जैसे ही स्वामी ज़ी बाहर आये, भैरवियाँ पाषाण की हो गई। इधर मठ के सारे सन्त शिष्य ब्रह्मचारी, सेवक दौड़ कर आ गये। उन्होंने आते ही इन वामाचारियों को फटकारा तथा धक्का देकर मठ से बाहर निकाला। शिष्यों ने पाषाणी भैरवियों को उठा उन्हीं के सिरों पर दे मारा। घबरा कर सब वामाचारी वहां से भाग खड़े हुए। उनके जाने के बाद स्वामी जी के संकेत पर आचार्य अनन्तानंद ने पूरे मठ को गंगा जल से धुलवा पवित्र करवाया। सभी को शांत हो, बैठने के लिए कहा।

स्वामी रामानंद समन्वयी वृत्ति लिए थे। उन्होंने कोई विशेष यौगिक प्रतिकार नहीं किया। इतना ही कहा- 'दक्षिण में सैकड़ों वर्षो से शैवों एवं वैष्णवों का संघर्ष चला आ रहा है। शैव तो सारे भारत में इनसे भी बहुत पहले से फैले हुए थे। बड़ी भारी संख्या में थे। वैष्णव त्रस्त होकर उत्तर भारत में आ गये तथा एकान्त में वैष्णवी साधना करने लगे थे। उत्तर भारत में भी वामाचार चैन नहीं ले रहा था। ये आज भी अपने मद में चूर है। इन्हें देश धर्म की चिन्ता नहीं है। समरसता की जहाँ आवश्यकता है, वहाँ ये द्वेष के बीज बो रहे हैं। जहाँ एकता की आवश्यकता है, वहाँ विभाजन का नाटक खेल रहे हैं। काल भैरव से कहना पड़ेगा। वही इन्हें ठीक करेगा।'

'आनन्दभाष्य' में ऐसा कुछ नहीं था, जिसका इतना विरोध किया जाता। स्वामी रामानंद की बढ़ती लोकप्रियता से जगी जलन का ही परिणाम था कि दक्षिण के वैष्णव सम्प्रदाय तक विरोध में उठ खड़े हुए। 'आनन्द भाष्य' की कुछ स्थापनाओं को लेकर एक वेदान्ताचारी तो इतने उग्र हो गये कि वे श्री मठ पर आ धमके। स्वामी जी ने उसे तीन दिन तक जानबूझ कर दर्शन ही नहीं दिये। स्वामी जी को आपत्ति यही थी, कि जिसने अपनी प्रखर मेधा से उपनिषदों को मथा है, वह 'आनन्दभाष्य' का विरोध करने आया था। चौथे दिन जब वे वेदान्ताचारी सामवेद की ऋचाओं का मधुर कण्ठ से सस्वर पाठ कर रहे थे, उसे सुन स्वामी जी को दया आ गई। स्वामी जी तो क्षमाशील वृत्ति

के थे ही। पर्दा हटा कर बाहर आ गये। स्वामी जी ने आदर पूर्वक उन वेदान्ताचारी को ससम्मान आसन पर अपने पास बिठा, उनके आने का अभिप्राय पूछा। वेदान्ताचारी उस दिव्य शरीर को देख पहले ही कृतकृत्य थे। पीयूष पानाभिलाषी वेदान्ताचारी ने बड़ी विनम्रता एवं शिष्टता के साथ पूछा- 'स्वामी जी श्रुति में जैसा आया है उसने प्रपंच को रचकर उसमें प्रवेश किया और सत् एवं त्यक हो गया; श्रुति के इस कथन पर जब जब विचार करता हूँ, बुद्धि संकुचित तथा कुण्ठित हो जाती है। कुछ समझ में नहीं आता। कृपाकर इस श्रुति कथन का रहस्य थोड़ा समझाने का कष्ट करें। इसी तरह श्रुति में शरीर और अशरीरी के जो लक्षण बताये हैं, वे भी समझ में नहीं आ रहे। उसमें नियतत्त्व, धारयत्व और शेषत्व तो शरीर के, तथा नियामकत्व, धारकत्व और शोषत्व अशरीरी के लक्षण कहे गये हैं, यह समझ से परे है। आप जैसे तत्त्वज्ञ ऋषि पुरुष ही इसका समाधान कर सकते हैं। इसी अभिप्राय से सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। इस पर स्वामी जी ने कहा- 'वह बुद्धि इसे नहीं समझ सकती, जिसने विपक्ष के दूषणों में अपने को दूषित कर रखा है। पहले उस दूषित बुद्धि को निकाल बाहर करता हूँ। आप अपनी मति का मोह छोड़ राम-राम कहते हुए मुझमें रमण करें। दूषित अंश के निकलने पर ही शेष की रक्षा हो सकती है। यह कहते हुए स्वामी जी ने अपना शंख क्या फूंका, वेदान्ताचारी की आंखों से आनन्द जनित अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे आनंद में डूबे, अपने को बिसर भूमि पर लोटने लगे। मुख से राम-राम की ध्वनि अजस्र रूप से प्रवाहित होने लगी। वेदान्ताचारी लोटते-लोटते, राम-राम रटते रटते वहीं समाधि में चले गये। स्वामी जी ने बहुत काल तक समाधि अवस्था में रखा। अन्त में मुख पर पवित्र जल के छींटे दिये। वेदान्ताचारी आँखें मलते हुए, शुद्ध बुद्ध हो, उठ बैठे। बोले आपने तो श्रुति का वास्तविक क्रियात्मक अर्थ बिना शब्दार्थ के ही मुझे समझा दिया। यह कहते हुए वेदान्ताचारी ने स्वामी जी के चरण पकड़ लिए। अपने को मुक्त कराते हुए स्वामी जी ने कहा- 'ब्रह्म सर्वथा निर्गुण है वह इस त्रिगुणात्मक प्रकृति से परे है। भक्तों ने उसे सगुण बना दिया है। यह सगुण ही अपने निर्गुण तथा उससे परे अपने अचिन्त्य स्वरूप का रहस्य अपने भक्तों को बता देता है। जीवात्मा प्रज्ञात्मा तथा परमात्मा तीनों उस निगुर्ण के ही तीन रूप हैं। जीवात्मा चिदाभास है। प्रज्ञात्मा चिन्मय है। और परमात्मा चिदानंद है। प्रज्ञात्मा तथा परमात्मा दोनों अभिन्न हैं। सुषुप्ति में प्रतिदिन इनका मिलन होता है। इस रहस्य को कोई नहीं जानता। सत् भाव का प्रकाश जिस शक्ति में होता है, उसे 'क्रिया संधिनी' कहते हैं। चिद्भाव का प्रकाश जिससे होता है, उसे 'ज्ञान शक्ति संवित' कहते हैं और आनंद भाव का प्रकाश जिसमें होता

है, उसे इच्छा शक्ति आह्लादिनी' कहते हैं। वेदान्त का अध्ययन शुद्ध मन से परमार्थ की इच्छा लेकर ही करना चाहिए। न्याय के अंश को छोड़, वेदान्त का चिन्तन मनन करने से ही ज्ञान की उपलब्धि होती है।' इस विस्तृत विश्लेषण को सुनकर वेदान्ताचार्य गद्‌गद् हो गये। चरण स्पर्श कर कहते लगे- 'स्वामी जी मुझे उस स्थिति का अनुभव करवाइये, जहाँ ब्रह्म विश्वानुग तथा विश्वातिग दोनों से परे भासता है। इसे सुन उदार मना कृपालु स्वामी जी ने जल सिंचन कर जैसे ही शंख ध्वनि की, वेदान्ताचारी बैठे ही फिर समाधि में चले गये। वहाँ उन्हें परमात्मा, देवों एवं मुनियों से संवित दिखे। उस दिव्य दृश्य को देखते ही उनका संशयी भौतिक मन अपने स्वरूप में खो गया। समाधि उतरते ही आनंद में डूबे वेदान्ताचार्य अश्रु जल से स्वामी जी का चरण पखारने लगे।

'आनन्द भाष्य' के बाद स्वामी जी ईश तत्त्व विश्लेषण के विशेषज्ञ रूप में जाने, जाने लगे थे। विभिन्न धर्मो के विद्वान उलझे हुए प्रश्नों का सही उत्तर पाने के लिए स्वामी जी के पास आने लगे। नौ महीने से एक जैन मुनि तथा एक अद्वैतवादी परमहंस परम तत्त्व के विश्लेषण में उलझे थे। दोनों किसी निर्णय पर नहीं पहुँच रहे थे। स्वामी रामानंद की ख्याति सुन वे दोनों समाधान के लिए स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुए। स्वामी जी से कुछ छिपा नही था। वे तो अन्तर्यामी त्रिकालज्ञ थे। दोनों को जैसे ही आचार्य अनन्तानंद ने गुहा के सामने रखे काष्ठासन पर विठाया जैन मुनि जीवत्व से जिनत्व की तथा वेदान्ती अणु से विभु की स्थिति को प्राप्त हो गये। उनके हृदयों में मचलती अशान्ति मन में कुलबुलाते संशयी प्रश्न स्वतः शान्त हो गये। जैसे ही गुहा का पर्दा हटा, दोनों ने आसन से उतर गुहा की चौखट पर शीश टिका दिये। स्वामी जी ने कहा- 'जिनाचार्य सिद्ध पुरुष को मानव लीला की समाप्ति पर ईश्वर मानते हैं। वेदांती जीवनमुक्तों तथा विदेहों के तिरोधान पर उनके उपाधि रहित जीव को ब्रह्म मानते हैं। इसमें भेद कहाँ हैं तर्क तो गौतमी विद्या की उपज है। तितिक्षुओं को विवाद से बचना चाहिए। जैन मुनियों को सिद्धावस्था में जीव अजीवादि नौ तत्वों के साक्षात् दर्शन होते हैं, वहीं परमहंस वेदान्ती को उसी एक तत्व के सर्वत्र दर्शन होते हैं। जैन कर्म मुदगलो से, तो परमहंस मायिक भ्रम जाल से मुक्त हो जाते हैं। पारिभाषिक शब्दों के भेद पर विद्वान नहीं लड़ा करते। जैनियों द्वारा आकाश, जीव, कर्म तथा परमाणु को अचिद् मानने से, वेदान्तवाली आध्यात्मिक संगति स्वतः बैठ जाती है। मुनियों तथा परमहंसों को तो इसे समझ कर ही चलना चाहिए। अहिंसा नारायण का ही शुद्ध स्वरूप है।

स्वामी जी के श्रीमुख से स्पष्टता के साथ इस एकात्मक समाधान को सुन दोनों शांत हो, परम सन्तोष को प्र.प्त हुए। स्वामी जी के चरण स्पर्श कर दोनों वहाँ से प्रसन्न

प्रसन्न विदा हुए। स्वामी जी के ऐसे समन्वयी समाधानों ने सामाजिक एकता की नींव में पत्थर नहीं, शीशा जड़ दिया। समाज व धर्म की रक्षा के लिए धर्म यात्रा पर निकलने से पूर्व, स्वामी जी ने अनेक ऐसे दृष्टान्त उपस्थित कर लोक श्रद्धा को आहूत कर लिया।

एक बार निम्बार्क सम्प्रदाय के एक भजनानंदी सन्त तीर्थ यात्रा करते करते काशी पहुँचे। रात्रि को जब सो रहे थे तब स्वप्न में उनके गुरु ने दर्शन देकर उन्हें कहा 'काशी पहुंचे हो तो वहाँ श्री मठ में जा स्वामी रामानंद के दर्शनो से मत चूकना। वे दिव्य पुरुष हैं। तुम्हारे निवेदन पर वे तुम्हें ब्रह्म साक्षात् करा, तुम्हारा संतत्व सार्थक बना देंगे। संत को रात भर नींद नही आई। कब प्रभात हो और कब वह श्रीमठ पहुँचे। दर्शनों की उत्कण्ठा लिए सन्त नित्य कर्म से निपट सीधे श्रीमठ जा पहुंचे स्वामी जी के पास यह संदेश गुरवात्मा ने पहले ही पहुँचा दिया था। इनके पहुँचते ही पर्दा हटा तथा स्वामी जी ने बाहर आ इन्हें दर्शन दिया। निम्बार्क सन्त स्वामी के दर्शन करते ही अपने स्वरूप में स्थित हो गया। वहां ब्रह्म सिंहासन पर स्वामी रामानंद को आसीन देख इनके आनंद की कोई सीमा नहीं रही। गुरु के संकेत पर सन्त ने वहां अपना शीश स्वामी जी के चरणों में रख दिया। तभी इन्होंने स्वामी जी को वृन्दावन की कुञ्ज गलियों में गोपियों के साथ रास रचाते देखा। बांसुरी का मधुर स्वर कुञ्ज लताओं से छनकर आ रहा था। इस दृश्य को देख निम्बार्क सन्त आह्लादित हो उठे। तभी कृष्ण स्वामी जी ने इन्हें हाथ पकड़ उठा, उस महारास में मिला लिया। स्वामी जी को वहाँ कृष्ण रूप में देख निम्बार्क सन्त ने राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं देखा। महारास में डूबे सन्त वहाँ अध्यात्म रस का अमृत पान करने लगे।

तभी गुहा का पर्दा खिंच गया। निम्बार्क सन्त अपनी वास्तविक स्थिति में आ गये। भीतर से आवाज आई बाबा जी, आपके गुरु ने आपसे जो कहा था, उसे आपने प्राप्त किया या नहीं? कुछ और इच्छा हो तो कहो?'

निम्बार्क सन्त की आंखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। 'आप साक्षात् ब्रह्म हैं। आपके दिव्य दर्शन के प्रकाश से मेरा सारा मोह जनित अंधकार हट गया है। आपने यह जीवन सार्थक कर दिया।' यह कहते हुए निम्बार्क सन्त ने अपना माथा गुहा की चौखट पर टिकादिया। बोले-

'मुझे आज पूर्ण विश्वास हो गया कि गुरु और गोविन्द में कोई अन्तर नहीं है। आपने अध्यात्म की जिस अमृत धारा में डुबोया है, चाहता हूँ, उसमें कुछ दिन यहां

रुकूँ और डूबा रहूँ। कृपा कर स्वीकृति दीजिए।'

'श्री मठ भगवद् भक्तों के लिए आठों प्रहर खुला है। जितने दिन चाहे, यहाँ रहें। सत्संग में पधारते रहें।' चौखट पर मत्था टेक निम्बार्क सन्त जैसे ही उठे, आचार्य अनन्तानंद ससम्मान उन्हें द्वार तक पहुँचाने गये।

स्वामी रामानंद भारत को एक सुदृढ़ आध्यात्मिक शक्ति के रूप में खड़ा करने को कटिबद्ध थे। वे नहीं चाहते थे, अद्वैत वेदान्ती ही आपस में लड़कर अपनी शक्ति को नष्ट करें तथा देश को दुर्बल करें। एक ही सत्य को लेकर अलग अलग खेमों में बँट, पारस्परिक द्वेषता जिये। आदि शंकराचार्य के अद्वैत प्रतिपादक घोष वाक्य 'ब्रह्मसत्यंजगन्मिथ्या' को लेकर पांचो वैष्णव सम्प्रदायों में घमासान मचा था। शान्त वातावरण अकारण अशांत हो गया था। शैवों के साथ इन पांचों का संघर्ष तो पुरा काल से ही चला आ रहा था। दक्षिण में शैवों का बहुत जोर था। इस कारण अद्वैत वेदान्ती भाग भाग कर उत्तर में आ रहे थे। वैसे तो उत्तर में भी शैवों का ही प्रावल्य था, पर ये उतने अनुदार नहीं थे।

स्वामी जी की समन्वयी कीर्ति गंध, दक्षिण को भी पूरे वेग से गंधायित कर रही थीं इसी गंध ने दक्षिण के पांचों वैष्णव सम्प्रदायों के ध्वजवाहियों की मानसिकता को भी गहराई तक प्रभावित किया था। वे तर्क वितर्क के सघन झंझावत में फँसे अपनी सत्यता, श्रेष्ठता तथा औदात्य का अहंकार जी रहे थे। कोई झुकने को प्रस्तुत नहीं था। स्वामी जी के श्रीमठ की गंध ने दक्षिण के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान वेदान्त प्रचारक श्री भाऊ जी शास्त्री को प्रेरित किया। उन्होंने पांचो ही सम्प्रदायों के अधिकारियों को बुलवा कर कहा- हम क्यों न काशी चल, स्वामी रामानंद से जो आज के सर्वमान्य विद्वान, धर्मज्ञ तथा तत्त्ववेत्ता हैं, इन भ्रान्तियों का निराकरण करवालें। श्री भाऊ शास्त्री आपसी विवाद को सिद्धान्त के प्रचार प्रसार की बड़ी बाधा मान रहे थे। वे बड़े चिन्तित थे। सभी के आश्रमों पर पहुँच उन्होंने अपना मन्तव्य रखा सबने अपनी सहमति दी। वे अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी तथा द्वैतवादी धारणाओं के एक प्रमुख अधिकारी को लेकर काशी आये। पांचो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी थे। अपने को दूसरे से सही मानते थे। लेकिन जब आश्रम पर पहुँचे तो पांचों इस कलह का स्थायी समाधान चाहने लगे थे।

जब ये पांचों मतावलम्बी दिग्गज पहुंचे, तब स्वामी जी गुहा में सान्ध्यकालीन ध्यान में थे। इसलिये वे सभी गुहा द्वार पर रखे काष्ठासन पर बैठ प्रतीक्षा करने लगे।

आचार्य अनन्तानंद ने जलपान से उनकी भरपूर सेवा की। ध्यान से निवृत्त होने पर जैसे ही पर्दा हटा, गुहा से ऐसा प्रकाश पुञ्ज निकला, जिससे सभी की आँखे चुँधिया गईं। कुछ समय पश्चात् जब स्थिति सामान्य हुई, पं. भाऊ शास्त्री ने श्रीमठ आने का अपना प्रयोजन विस्तार के साथ रखा। पांचों का परिचय दिया तथा अपने को दक्षिण में वेदान्त का विस्तारक बताते हुए कहा- 'स्वामी जी आज दक्षिण में पांचों वैष्णव सम्प्रदायों की एकता की बड़ी आवश्यकता है। वेदान्त का सही अर्थ समाज के सामने रखा जावे। छोटी-छोटी बातों के आपसी विवाद समाप्त किये जावें। इस सम्बंध में हम आपका वचन लेने आये हैं। स्वामी जी ने कहा 'यह सैद्धान्तिक विवाद न होकर मात्र पारिभाषिक शब्दों का विवाद भर है। इस विवाद की पृष्ठभूमि में वे ग्यारह भाष्यकार हैं, जिन्होंने एक ही ब्रह्मसूत्र की अपनी अपनी दृष्टि से व्याख्या की है। इससे उनका पाण्डित्य तो अवश्य प्रकट हुआ है, पर इससे देश, धर्म तथा समाज का कितना अनर्थ हुआ है, शायद इसकी कल्पना उन्हें नही थी। अद्वैत वेदान्त भारतीय तत्त्ववेत्ता मनीषियों का वह दुर्लभ ज्ञान है, जिसके लिए बाद में आने वाले मनीषियों को नेति-नेति ही कहना पड़ा। हम उसे स्वीकारते हुए भी, प्रकारान्तर से अस्वीकार भी कर रहे हैं। आप सभी संस्कृत के बड़े प्रकाण्ड विद्वान हैं। ब्रह्मसूत्र ही क्या हमारे उपनिषदों तथा श्रीमद्भगवद्गीता तक का उपदेशित तत्त्वज्ञान आपसे छिपा नहीं है। आपने इन्हें कई कई बार पढ़ा है। ये तीनों ही तो अद्वैत वेदान्त की नीव हैं। पुस्तकें सामने हैं। ज्ञान सामने हैं। हमारा विवाद मात्र अर्थात्मक है न? मै कहूँगा तो आप नहीं मानेंगे। मैं भी तो आप में से ही एक हूँ। उन ग्यारह भाष्यकारों को ही सादर आमंत्रित कर आपके सामने उपस्थित कर देता हूँ। ब्रह्म सूत्र प्रणेता ऋषि बादरायण को भी बुला देता हूँ। दूध का दूध पानी का पानी हो जायेगा।'

स्वामी जी ने ध्यानस्थ होकर जैसे ही आह्वान किया, ग्यारह भाष्यकारों के साथ ऋषि बादरायण विराजमान् थे। स्वामी जी ने उन दिव्यात्माओं का परिचय कराते हुए कहा, मध्य में विराजमान् महर्षि बादरायण हैं जिन्होंने 'ब्रह्मसूत्र' की रचना की हैं इनके दाहिनी ओर बैठे शारीरिक भाष्य के रचयिता स्वयं आचार्य शंकर हैं। व्यास जी के आगे उनके पुत्र शुकदेव हैं, जिन्होंने 'वेदान्तसार मीमांसा भाष्य' लिखा है। इनके बाईं ओर विज्ञान भिक्षु हैं, जिन्होंने विशिष्टाद्वैत मूलक 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' लिखा है। दूसरी पंक्ति में विशिष्टाद्वैत बोधक 'ब्रह्म मीमांसा' भाष्यकार शिवभक्त आचार्य श्रीकण्ठ हैं। दूसरे विष्णु परक विशिष्टाद्वैत प्रतिपादक 'श्री भाष्य' के रचयिता श्री लक्ष्मणाचार्य हैं। शुकदेव जी के समीप बैठे ये द्वैत प्रतिपादक 'ब्रह्मसूत्र' के भाष्यकार श्री भाष्कराचार्य हैं। वे शिव

परक द्वैत सिद्धान्त दर्शक 'श्रीकर भाष्य' के कर्त्ता आचार्य श्रीपति हैं। वे विष्णु परक 'द्वैतभाष्य' के रचयिता श्री माधवाचार्य हैं। वहीं 'शुद्धाद्वैत परक भाष्य' कर्त्ता श्री विष्णु स्वामी हैं। उनके पास ही ये द्वैताद्वैत परक 'वेदान्त पारिजात सौरभ भाष्य' के कर्त्ता श्री निम्बार्काचार्य हैं। धूनी के पास जो बैठे हैं वे 'सूत्रभाष्य' के रचयिता सायण हैं। ये ऋषि बोधायन के शिष्य हैं। इनका भाष्य अद्वैत और विशिष्टद्वैत का मध्यवर्ती माना जाता है ये सभी भाष्यकार आपके सामने हैं। एक साथ विराजमान हैं। मूल रचयिता ऋषि बादरायण भी आपके सामने हैं। इनसे अच्छा समाधान आपके विवाद का और कौन कर सकता है। मैं महर्षि वेद व्यास जी से ही कहता हूँ, कृपा कर इस महासत्य को सार रूप में यहाँ प्रस्तुत करने की कृपा करें, ताकि पांचों ही उपस्थित धारणाओं का समाधान हो सके तथा अद्वैत वेदान्त का दर्शन स्पष्ट हो सके। वर्तमान में धार्मिक एकता के लिए यह अतीव आवश्यक हैं। तब व्यास जी ने कहा- 'जब तक ध्येय का सान्निध्य प्राप्त नहीं हो, तभी तक तर्क और मीमांसा की गड़बडी है। ध्येय पर पहुंचने के बाद यह सारा शब्द जाल स्वतः स्पष्ट हो जाता हैं। साधना और आराधना की गुप्त प्रक्रियाओं में सबसे सूक्ष्म ध्येय का निश्चय करना होता है। जैसे किसी पर्व पर एकत्रित जनता, जब तक दूर खड़ी रहती है, तब तक उन्हें ध्येय का ज्ञान नहीं होता। जब वह निकट पहुँच जाती है, तब सारी अस्पष्टता स्वतः दूर हो जाती है। तब वहां एक ही सत्य के दर्शन होते हैं। अतः आप व्यर्थ के वाद विवाद में न पड़े। ध्येय की ओर गुरु निर्देशानुसार निरन्तर बढ़ते चलें। ध्येय तक पहुँचाने वाला गुरु ही हैं। गुरु के उपदेश को पूरी निष्ठा के साथ स्वीकार कर चलें। आप ध्येय पर पहुंच, जीवन का यथार्थ सुख प्राप्त कर लेंगे। उस परम आनन्द का लाभ ले सकेंगे।

जैसे ही ऋषि बादरायण ने अपना कथन समाप्त किया, पांचों ही पधारे महापंडित उन बारह महापुरुषों के दर्शन कर सन्तुष्ट चित्त हुए, गीर्वाण वाणी में स्वामी जी का अभिनन्दन करने लगे। आचार्य अनन्तानंद ने उन्हें सादर विदा किया। उपस्थित सन्त तथा शिष्य जो इस दृश्य को देख रहे थे, वे भी स्वामी जी के धार्मिक एकता के प्रयत्नों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा एवं सराहना करने लगे। स्वामी जी में सबने एक महान समन्वयी राष्ट्र सन्त के दर्शन किये।

मुनि पुंगव श्री पाचर स्वामी जी के सत्संग के निष्ठावान श्रोता थे। वेदान्त तो उन्होंने बहुत पढ़ा था, पर वे वेदान्त का मर्म नहीं समझ पाये थे। हृदय में निर्वाण प्राप्ति की कामना लिए थे। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, पर उसमें वे सफल नहीं हुए। वे अपनी इस वेदना को स्वामी जी के समक्ष प्रकट करना चाहते थे, पर भीड़ के कारण तथा

गुहा पर पर्दा पड़ा होने के कारण वे अपनी बात अकेले में स्वामी जी से नहीं कह पा रहे थे। स्वामी जी तो सबके मन की बात जानते थे। अन्तर्यामी थे। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पाचर जी के हाव भाव से वे जान गये थे, कि उनके मन में कुछ संशय है या संकोच है, जिसके लिए वे अलग से वार्ता करना चाह रहे हैं। स्वामी जी ने सत्संग में इसी बात को लेते हुए कहा- 'अन्तरात्मा शिव स्वरूप है। इसमें शिव जी के प्रिय अक्षरों की ध्वनि सततगुंजित होती रही है। ये षड्महावाक्य उन्हीं छह प्रकार की ध्वनियों के विकास हैं, जो मंदिर के पुजारी हैं। ये अत्यन्त आत्मीयता प्रकट करने वाले षड् महा वाक्य मोह के परदे को फाड़ने वाले हैं। इन ध्वनियों को वही सुनता है, जो योग युक्त हैं। ये षड् महा वाक्य हैं वह तू है, वह तेरा है, वह तुझसा है, वह तू ही है, तू उसी का है, तू उसी जैसा है। ये षड् वाक्य मनुष्य की महिमा उसके औदात्य तथा उसकी असीम क्षमताओं पर प्रकाश डालने वाले हैं। ये नर नारायण में भेद नहीं करते। ये ब्रह्माकार कृत्ति उत्पन्न करने वाले, मनुष्य को नचाने वाली माया से बचाने वाले तथा सम्पूर्ण तत्त्व ज्ञान का बोध कराने वाले हैं। इन ध्वनियों के श्रवण मात्र से जीव उद्धार हुआ है। इन छह महावाक्यों का प्रत्येक वाक्य अपनी पृथक एवं विशिष्ट प्रकार की योग क्रियाएं लिए हैं। प्रत्येक परमार्थ तक पहुंचाने की सीढ़ी हैं। अगम पंथ के राजमार्ग हैं। वैसे इनमें तत्त्वतः कोई भेद नहीं हैं बात एक ही है। केवल दिशा का अन्तर है। इसी कारण इनके छह भिन्न सम्प्रदाय खड़े हो गये हैं। संक्षेप में यही षड् अक्षर मंत्र राम है। जब राम शब्द का जाप करते हैं, तो इसी एक नाम से छहों प्रकार की ध्वनियाँ गूँजती है। इन्हें सुन सुरति शब्द साधक बिना प्रयास, देह के षड् विकारों का शमन कर, षड् सम्पत्तियों को सहज ही प्राप्त कर लेता है। इन छह ऐश्वर्यों की प्राप्ति होते ही साधक के हृदयाकाश में चिन्मय ज्योति झिलमिला उठती हैं। उस स्फटिक ज्योति के प्रकाश में समस्त दैहिक तमस नष्ट हो जाते हैं तथा चित्त उस चिन्मयी सत्ता में लय हो जाता हैं यही वेदान्त है, जो नरनारायण के एकत्व को प्रतिपादन करता है। नर को विश्वास दिलाता है कि वह नारायण से भिन्न नहीं है। नारायण ही है नारायणत्व प्राप्त कर सकता है। उसमें वे सारी क्षमताएं हैं जो ना· यण में हैं।

पं. पाचर जी, स्वामी जी के इस प्रवचन में उनके मन की सारी शंकाओं एवं जिज्ञासाओं का समाधान पा रहे थे। सारे संशयों का निर्णायात्मक उत्तर पा रहे थे, जो वेदान्त अध्ययन के समय उनके मन में उठते रहते थे। सत्संग के बाद आह्लादित श्री पाचर जी ने स्वामी जी के चरणों में प्रणाम करते हुए कहा- 'स्वामी जी आप के प्रवचन रूपी सूर्य ने मेरे मन के सारे अन्धकार को नष्ट कर दिया। मै कृत कृत्य हुआ। मेरा

सत्संग में आना सार्थक हुआ। आप महान है। गूढ तत्त्व के निष्णात ज्ञाता है। आप ही भौतिकता में उलझे जीवों का उद्धार करने वाले हैं, उसका लोक परलोक सुधारने वाले हैं। आप जैसा महासन्त दूसरा नहीं है। आप धन्य हैं। पाचर जी जय हो जय हो जय हो का उच्चारण करते हुए विदा हुए।

'आनन्द भाष्य' के लिखने तथा महर्षि वेद व्यास से उसकी हुई प्रशस्ति के बाद स्वामीरामानंद देश के पंडितों के मध्य निष्णात वेद विद् के रूप में पहचाने जाने लगे थे। वेदार्थ के प्रति जगी शंकाओं का समाधान पाने के लिए लोग दूर-दूर से श्रीमठ आने लगे थे। काशी में किसी भी धर्म सभा में आने वाले श्रीमठ पहुँच, स्वामी जी के दर्शन एवं तत्त्व चर्चा का अवसर कभी नहीं खोते थे।

चन्द्र ग्रहण के अवसर पर काशी में बड़ा धर्म समारोह का आयोजन हुआ था। उसमें दूर-दूर के धर्माचार्य, संत तथा सिद्ध योगी पधारे थे। समारोह के बाद सबका श्रीमठ पहुँच स्वामी जी के दर्शन का पुण्य लाभ उठाने का मानस बना। जिस समय ये पहुँचे उस समय स्वामी जी समाधिस्थ थे। दर्शन लाभ प्राप्त नहीं होने से विवश वे आचार्य अनन्तानंद से मिलने का समय पूछ कर उस दिन लौट आये। कुछ निष्ठावान आस्था जनित श्रद्धा लिए दूसरे दिन रुक, बताये समय पर मठ में पहुँचे। उनमें महापंडित वेदविद् क्षीरेश्वर भट्ट भी थें। उनके मन में श्रुति की कुछ ऋचाओं का तात्पर्य समझने की बड़ी जिज्ञासा थी। वह सत्संग का समय था। स्वामी जी सबके विचारों को एक-एक कर पढ़ रहे थे। क्षीरेश्वर भट्ट पर जा उनकी दृष्टि टिकी। उनके अन्तर्भावों को पढ़, स्वामी जी ने प्रवचन में उसी विषय को लिया। बोले-

कारण ही प्रकारान्तर से कार्य है। यदि मृत्यु का कारण अविद्या है तो उसे पार जाने का यान भी समझना चाहिए। अविद्या द्वन्द्वमयी है। चक्रवत् उसका अविराम नृत्य हो रहा है। जन्म मरण के ध्रुव पर एक ही सरगम छोड़ती हुई वही सुख दुःख, हर्ष शोक, पुण्य पाप आदि नाना कलाओं को प्रकट कर रही है। यहाँ ध्यातव्य है कि वही द्वन्द्वात्मकता एक अद्वितीय सम ताल भी साथ-साथ दे रही है। द्वन्द्व में उसे समझ लेना ही सम दृष्टि है। वह अपनी कला से अंग भंगी कटाक्ष, मूर्च्छना आदि से यही उपदेश दे रही है। जो श्रोता उस उपदेश को अनसुना कर देता है, वह मृत्यु को वरता है। जो उसे सुन सतर्क हो जाता है, सावधान तथा सचेष्ट हो जाता है, वह मृत्यु नदी को तर जाता है। अविद्या रूपी सुंदरी अपने नृत्य से 'ईशावास्यमिदंसर्वम्' यही एक सरगम अलाप रही है। सारा जगत् उसी से आवासित है। वह सबके पास है। यह रहस्य मय जगत् एक उसी का विकास है।

श्री क्षीरेश्वर भट्ट स्वामी जी का प्रवचन बड़े ध्यान से सुन रहे थे। एक एक शब्द का गूढार्थ समझ रहे थे। क्षीरेश्वर चकित भी थे कि स्वामी जी ने उसके मन की बात जान कैसे ली। वे स्वामी जी के पास गये, बोले- स्वामी जी यही संशय लेकर तो मैं यहां आया था। मेरे प्रश्न के बिना ही आपने मेरे मुख में उत्तर डाल दिया। सारे संशय निर्णयं में बदल गये। यह कह श्रीरेश्वर भट्ट स्वामी के चरणों में झुक गये। स्वामी जी ने जैसे ही अपना दाहिना हाथ उसके सिर पर रखा, सारे वेदों का ज्ञान उनमें उतर गया। स्वामी जी ने कहा- 'कल फिर आना'।

पं. क्षीरेश्वर भट्ट दूसरे दिन ठीक समय पर सत्संग में पहुंच गये। स्वामी जी कल जिस जगह अपना प्रवचन समाप्त किया था, वही उसे उस विषय को आज के प्रवचन में उठाया। बोले-

'विद्या ही अमृतत्व का उपभोग करती है। बिना विद्या के उस अमरत्व की प्राप्ति असम्भव है। पार्थिव जीवन का लक्ष्य विश्व द्रव्यों का उपयोग ही है। यह विद्या से ही प्राप्य है। त्याग विद्या का एक रूप है। विद्या विनय सम्पन्न प्राणी के हृदय में त्याग का अंकुर उगाती है। जीव में नाम रूप पर मर मिटने की जो अमिट वासना हैं, उससे जीव को मुक्त कर देना ही त्याग की महिमा है। फलेच्छा त्याग ही त्याग का यथार्थ उपयोग है। जो भगवन्मय होकर विद्या के प्रभाव से इच्छा रहित हो जाता है, वह द्वन्द्वों से परे चला जाता है। इसी सिद्धान्त पर चलकर सभी साधक ब्रह्मभूत हुए हैं। अपनी देह को पवित्र करते हुए उस एक अद्वितीय में तन्मय तदाकार हुए हैं। पहले भी हुए हैं। आगे भी होंगे। त्यागी विरक्त पुरुष उस गुणातीत अवस्था को प्राप्त कर लेता है। गुणों की माया को पार कर लेता है। गुणों की माया उसे परास्त नहीं करती। वह भगवन्मय हुआ परमानंद को प्राप्त होता है। उस परमात्मा की ज्योति सर्वत्र भासित है। जो उस ज्योति को देखता हुआ कर्म प्रवृत्त होता है, उसमें भेद बुद्धि नही जनमती। वह भेदातीत, सृष्टि में कर्म करता हुआ भी अपने अस्तित्व का सार्थक परिचय देता है। श्रीरेश्वर भट्ट प्रवचन सुनते सुनते ही उसी अभेदावस्था में चले गये। प्रवचन की समाप्ति पर ही उनकी तुरीयावस्था टूटी।

स्वामी रामानन्द उन योगियों में से थे, जो शास्त्र ज्ञान में तो निष्णात थे ही परमात्म दर्शन की ध्यान क्रिया में सिद्ध हस्त थे। आत्म दर्शन का सबसे सरलतम मार्ग शब्द सुरति योग अथवा रामभक्ति उन्होंने प्रचारित किया। जिसमें न तो नेति, धोती वाली क्रिया थी, न हठयोग वाली पद्धति थी, न खांडे की धार पर चलना था। जिसके लिए न तो

घर बार छोड़ वनान्तर की खाक छाननी थी, न हिमालय की कोई एकान्त गुहा ढूंढनी थी। स्वामी जी का आत्म साक्षात्कार का पथ तो प्रेम का पथ था। मिलन की उत्कण्ठा का पथ था। नाम जप का पथ था। चेतना को जिह्वाग्र से उतार सुषम्ना के पथ से आत्मा से मिलाना था। जो भी स्वामी जी के पास आया, उसने अपना अभीष्ट पाया है। कोई निराश नहीं लौटा है। देवता तक जिनकी इस अद्वितीय अप्रतिम तथा अद्‌भुत शक्ति से परिचित थे तथा अपने भक्तों को मोक्ष के लिए श्रीमठ में स्वामी जी की सेवा में भिजवाते रहे हैं। ऐसा ही एक दृष्टान्त सिन्ध के मुनि विनय का है वे दुनिया भर में भटक लिए, कोई उन्हें परमात्मा के दर्शन करा दे। पर उन्हें कहीं सफलता नहीं मिली। जहाँ गये वहां यही सुनने को मिला। मुक्त हस्त मोक्ष लुटाने वाले विश्व में आज एक ही सन्त हैं, काशी के श्रीमठ के स्वामी रामानंद।

ब्रह्म जिज्ञासा लिए मुनि काशी आ गये। यहां आकर वे बड़े-बड़े पंडितों, यतियों, मुनियों, सन्तों से मिले। जिनसे मिले, मुनिविनय स्पष्ट कहते, 'मुझे पुस्तकीय प्रमाण नहीं चाहिए। मुझे युक्तियाँ मत बताइये। मुझे ब्रह्म से मिलाइये। कोई भी मुनि विनय की ब्रह्म जिज्ञासा पूरी नहीं कर सका। हर कोई उनसे यही कहता स्वामी रामानन्द से मिलो। इन सारे कथनों ने स्वामी रामानंद के प्रति मुनि विनय की श्रद्धा जगी। अपनी भटकन समाप्त कर एक दिन मुनि विनय सारे संकोच छोड़ सीधे श्रीमठ जा पहुंचे। आचार्य अनन्तानंद को अपना परिचय दिया तथा स्वामी जी से मिलाने का निवेदन किया। आचार्य अनन्तानंद उन्हें गुहा द्वार तक ले गये। पर्दा लगा था। मुनि विनय ने बाहर से ही अपना परिचय दिया। कहा- आत्म दर्शन की इच्छा से अपने स्वरूप में स्थित होने के भाव से आपकी सेवा में आया हूँ।

अन्तर्यामी स्वामी जी ने जान लिया, यह न तो शास्त्र से समझेगा, न युक्तियों से। इसे ब्रह्म को ऐसी विधि से समझाना पड़ेगा, ताकि इसे श्रीमठ की शक्ति पर विश्वास जग आये। पर्दे के भीतर से ही स्वामी जी ने कहा- 'तुम्हारी ब्रह्म जिज्ञासा अवश्य पूरी होगी। जाओ पहले विश्वनाथ मंदिर से एक विल्प पत्र ले आओं। इसपर मुनि विनय ने कहा- 'स्वामी जी आपकी यही आज्ञा है तो जाता हूँ। अन्यथा मैं किसी मंदिर पर आज तक नही गया। किसी देवता की आराधना नहीं की। न पूजा की न प्रार्थना। यह कह कर मुनि विनय विश्वनाथ मंदिर के लिए चल दिये।

विश्वनाथ मंदिर से जब मुनि विनय विल्व पत्र लेकर लौट रहे थे। तब उन्होंने वेद मंत्र **'ये हास्ति यच्च नास्ति सर्वे तदस्मिन् समाहितमिति'** बोलते विल्व पत्र को सुना। बड़े विस्मित एवं चकित हुए। उनकी गति में त्वरा आ गई। यथा शीघ्र स्वामी

जी से मिलने तथा वस्तु सत्य बताने की उत्कण्ठा जग आई। सीधे दौड़े-दौड़े गुहा द्वार पर जा पहुँचे। पर्दा हटा स्वामी जी ने अपने दिव्य दर्शन दिये। दिव्य दर्शन पाते ही मुनि विनय अपने को भूल गये। स्वामी जी की छवि में उन्हें दिव्य दर्शन होने लगे। तभी स्वामी जी ने पूछा-

'ले आये विल्व पत्र?'

'हाँ, यह तो वेद मंत्र बोलने लगा है।'

'तुम्हें सन्तोष हुआ या नहीं?'

'यह तो मैं जानता हूँ। वह सर्वत्र है। वही सर्व है।'

'फिर क्या कसर रही'?

'पूर्णानुभव की। साक्षत् दर्शन की'

उसके यह कहते ही स्वामी जी ने अपने जल पात्र से मुनि के सर पर छींटे दिये। सर पर छीटें पड़ते ही मुनि विनय समाधि में चले गये। समाधि में उन्होंने साक्षात् विभु को देखा। कुछ क्षण मुनि विनय को उस आनंद में स्वामी जी ने डुबाये रखा। समाधि जब टूटी, मुनि विनय, धन्य हो आपकी जय हो कहते हुए स्वामी जी के चरणों में लोट गये। सच में जैसा सुना था, आपको वैसा ही पाया। आप पृथ्वी पर उतरे महान सन्त हैं। ज्ञान के सिंध हैं। भक्ति के आगार हैं। आपकी जय हो यह कह मुनि विनय वहाँ से प्रस्थान कर गये।

स्वामी रामानंद के सहज सुरति योग तथा राम नाम जपने भर से अमरत्व की प्राप्ति ने कई कर्मकाण्डियों के कान खड़े कर दिये थे। काशी में तो कर्म काण्डियों की कमी थी ही नहीं। एक बार काशी के ही प्रसिद्ध कर्म काण्डी वैदिक विद्वान श्री विश्वनाथ इसी जिज्ञासा को लेकर स्वामी जी के पास आये। सत्संग में समय था। स्वामी जी गुहा बाहर आ गये थे। पं विश्वनाथ ने स्वामी जी से प्रश्न किया, 'स्वामी जी इस राम नाम का अन्तरंग रहस्य क्या है? भगवान् आशुतोष ने भी इसे ही जपा था। आप भी इसी एक नाम को जपने का आदेश देते हैं। हमें इसकी महत्ता समझाइये। ताकि नाम पर प्रतीति हो सके। इस प्रश्न पर स्वामी जी ने कहा-

'आपकी जिज्ञासा तो उचित है, लेकिन इस तत्त्व ज्ञान को योगी ही जान सकता है। इस परम कल्याणकारी परम पुनीत अनमोल रत्न रकारमकार की प्राप्ति तभी होती है, जब प्रसन्न होकर इसे गुरु शिष्य को प्रदान करता है। इस तत्त्व के सबसे अधिक

जानकार स्वयं ईश्वर ही हैं, जो सुषुप्ति के विभु हैं। जीव और शिव, प्रकृति और पुरुषोत्तम को घट घट में प्रतिष्ठित करने वाली सत्ता राम नाम हैं। जो भी किसी साधन से अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर लेता है, वह रकार मकार की रमण क्रीड़ा को देख लेता है। जगत ब्रह्म और शब्द ब्रह्म के अभदेत्व को समझ जाता है। यही ओंकार का आदि रूप है। सोऽहम् का आधार है। गुणातीत अवस्था में होने वाली अनाहत ध्वनि का सार है। जिसके हृदय में भगवान् का वास है, वही सच्चा भक्त है। वही गुणातीत विरक्त है। वही सर्वज्ञ है। वही मंत्रराज का द्रष्टा है। सप्तभंगी, चतुर्विज्ञान, त्रिविध कर्म, एकादश भक्ति तथा त्रयोदश त्याग स्वतः उसके करतल गत हो जाते हैं। ज्योति जगत में सर्वत्र व्याप्त है। जो इसे देख लेता है, पहचान लेता है, उसकी भेद बुद्धि नष्ट हो जाती है। वह भगवद्‌मय होकर इच्छा रहित हो जाता है। द्वन्द्व से परे हो जाता है। वही त्यागी विरागी है। फल त्याग ही यथेच्छा उपभोग का अधिकार देता है। यही त्याग विद्या का स्वरूप है। नाम रूप पर मर मिटने वाली वासना से जीव को पूर्ण रूप से मुक्त कर देना ही उस त्याग की महिमा है। विद्या विनय सम्पन्न प्राणी के हृदय में उस त्याग वृत्ति का अंकुर जगता है। अमरत्व का उपयोग विद्या से सम्भव है। बिना विद्या के उसकी सम्पूर्णता में प्राप्ति सम्भव नहीं है।

इस विस्तृत विवेचन को सुनकर पं विश्वनाथ की मुंदी आंखों के पटल खुल गये। उन्होंने राम नाम का यह अनमोल रत्न उन्हें भी प्रदान करने की प्रार्थना की।

सत्संग का समय हो गया था। स्वामी जी ने इतना ही कहा, सत्संग में आते रहो। एक दिन उचित समय देख कर स्वामी जी ने राम नाम का अनमोल रतन पं. विश्वनाथ को उपलब्ध करवा दिया। वे स्वामी के दीक्षा प्राप्त शिष्य हो गये।

काशी में किसी भी मत का कोई भी विद्वान् आता तो वह स्वामी जी के दर्शन अथवा शंका समाधान की दृष्टि से श्रीमठ अवश्य आता था। स्वामी जी ने शब्द सुरति योग का एक नवीन आध्यात्मिक अनुष्ठान समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया था। यह सगुण एवं निर्गुण समन्वित मध्यम मार्ग था। जिससे साधक सहज ही समाधि की ब्रह्म सहोदरा स्थिति को प्राप्त कर, समस्त दिव्य शक्तियों से विभूषित हो जाता। मोक्ष के इस सरलतम मार्ग से आकृष्ट हो ज्ञानमार्गी कर्मकाण्डी तथा भक्ति भाव में डूबे जन तेजी से दौड़े चले आ रहे थे। स्वामी जी की चमत्कारिक कीर्ति चारों ओर फैल चुकी थी। इनके आगे भूत प्रेत तक अपने उद्धार की कामना लिए, हाथ फैलाये थे। तंत्र मंत्र इनकी शक्तियों के आगे झक मारते थे। सीधा परमात्मा से जिनका सम्बंध था। सारी परमात्म शक्तियां जिनके सामने खड़ी रहती थीं। उन्होंने शब्द के भीतर छिपी शक्ति को

उद्घाटित कर शब्द ब्रह्म के कथन को सार्थकता प्रदान की थी।

काशी में यज्ञ का विशाल आयोजन था। उस यज्ञ के ब्रह्मा बनकर महाराष्ट्र के नामधारी मीमांसक शास्त्री श्री चिपलूणकर जिन्होंने प्रयाग के लब्ध ख्यात मीमांसक श्री कुमारिल भट्ट के बाद इस क्षेत्र में बहुत प्रतिष्ठा अर्जित की थी, आये थे। काशी के कर्मकाण्डी नागरिकों ने उनके शुभागमन पर बहुत बड़ा सम्मान समारोह आयोजित किया था। महायज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् शास्त्री श्री चिपलूणकर भी स्वामी जी के दर्शनार्थ श्रीमठ आये। वे जैमिनी मीमांसा शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। जैमिनी ने वेदों में वर्णित ज्ञान को निरर्थ कहा है। श्री चिपलूणकर इसका कारण जानना चाहते थे। स्वामी जी ने शास्त्री चिपलूणकर को दर्शन नहीं दिये। पर्दे के भीतर से ही वार्ता की।

शास्त्री चिपलूणकर ने स्वामी जी से पूछा- स्वामी जी आचार्य जैमिनी ने 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वात् आनर्थक्यम् अतदर्थानाम्' लिखकर वेद की ज्ञान गाथा को निरर्थक क्यों कहा है? इसपर स्वामी जी ने कहा वेद से ईश्वर को कोई सम्बंध नहीं स्वीकारने, जन्म मरण के चक्र को स्थिर बनाये रखने तथा नर लोक से मंत्र मूर्ति तथा देवगण का सम्बंध ब़नाये रखने के उद्देश्य से महर्षि जैमिनी ने ऐसा कहा है। स्वामी जी के इस उत्तर को सुन कुछ काल तक मौन रहकर विचारते रहे। चिपलूणकर बोले- 'भगवन् इससे तो मैं और भी चक्कर में पड़ गया हूँ।

कुछ भी समझ में नही आया। कृपया कुछ और स्पष्ट कीजिये। तब स्वामी जी ने यह विचार कर कि शास्त्री शब्द के माध्यम से इसका मर्म नहीं समझेगा, इसलिये स्वामी जी ने आचार्य अनन्तानंद के माध्यम से आठ पंखुडी वाला पुष्प भेजा और कहा- 'इसे देखो, शास्त्री चिपलूण कर ने जैसे ही उसे देखा, दो पंखुड़ियों पर किसी सुन्दरी के पीन पयोधर, दो पर तराजू के पलड़े, दो पर अंकुरित वनस्पति तथा दो पर सूर्य चन्द्र दिखे तथा मध्य में परमात्मा का बाल रूप दिखा। उससे चकित हो शास्त्री कुछ पूछने वाले थे कि स्वामी ने अपना दक्षिणावर्त शंख गुंजा दिया। उस दैविक शंखध्वनि ने शास्त्री के मन के उपजे सारे आध्यात्मिक भ्रमों एवं सन्देहों को [illegible] दिया।

शास्त्री चिपलूणकर अध्यात्म बोध की इस विधि से बहुत प्रभावित हुए बोले 'भगवन आपके सम्बंध में बहुत सुना है। आज आपकी शक्तियों का प्रत्यक्ष दर्शन कर अभिभूत हूँ। आप इतने पहुँचे हुए महात्मा हैं, यह मै अनुमान भी नहीं कर सकता था। स्वामी जी ने कहा- कर्मकाण्डी मीमांसक काल के प्रभाव को 'बह्वीन्द्र सहस्त्राणि देवानां च युगे युगे, कालेन समतीतानि कालोहि दुरतिक्रमः' जब समझते हैं तब अपवर्ग पर

जुटते हैं। इस बात को स्वामी जी के श्रीमुख से सुन शास्त्री चिपलूणकर के मुख पर सन्तोष की रेखा झलक उठी।

श्री चिपलूणकर स्वामी जी के यथार्थ ज्ञान प्रदान करने की सरलतम विधि तथा उनकी नवीनतम विद्या से प्रभावित हो, स्वामी जी के तत्त्व ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वहां से विदा हुए। आचार्य अनन्तानंद द्वार तक पहुँचाने गये।

●

आठ

पुस्तकों से लोग दिव्य ज्ञान की प्रक्रिया तो जान लेते हैं। आपसी वार्तालाप, संगोष्ठियाँ तथा सत्संग से भी लोगों का बौद्धिक ज्ञान पर्याप्त रूप से विकसित हो जाता है; लेकिन पढ़ा सुना ज्ञान जब तक व्यवहार में नहीं आता, उपादेय नही होता। व्यर्थ का ही श्रम सिद्ध होता है।

काहड़ा के परम विद्वान, गुप्त रहस्यों के ज्ञाता श्री झीटाजी अन्तर पट खुलें, इस आशा को लेकर कई बार स्वामी जी की शरण में आये। परन्तु भाग्य साथ नहीं दे रहा था। पहली बार आये तब तो दर्शन ही नहीं हुए। दूसरी बार आये तब भी उन्हें तीन दिन भटकना पड़ा, फिर भी सफलता नहीं मिली। झीटा जी किसी प्रकार स्वामी जी का आशीर्वाद पाना ही चाहते थे। उन्होंने आना नहीं छोड़ा। अंततः उन्हें स्वामी जी के दर्शन का सौभाग्य मिल ही गया। झीटा जी दिव्य दर्शन पाते ही समाधि में चले गये तथा अनेक लोकों में घूमते रहे। समाधि के उतरने पर जैसे ही नेत्र खुले, वे स्वामी जी के सामने थे। झीटा जी ने बड़े संकोच के साथ कहा- 'प्रभो मन से विकार दूर होते ही नहीं। कृपा कर मन से काम के इस भूत को भगाइये इससे मुक्ति दिलाइये। रसातल में जाने से बचायें।

स्वामी जी अन्तर्यामी जो ठहरे। उन्हें घट-घट की बात ज्ञात थी। बोले- 'झीटा जी, यदि आपने अपनी पत्नी की बात मान ली होती, तो यह स्थिति नहीं आती। बोलों उसने आपसे यह नहीं कहा था कि घर और वन के बीच की घाटी बड़ी भयावह है, उससे निकल पाना सरल नही हैं। स्वामी जी ने पति-पत्नी के बीच की अन्तरंग वार्ता तक जानली, यह सोच झीटा जी सकुचा गये। धीमे से बोले- 'अन्तर्यामिन्, बात तो सही है, पर वन की भावना उस समय दृढ़मूल हो रही थी। दृढ़मूल तो आज भी है; पर उसपर घर प्रभावी होता जा रहा है। कृपा कर मुझे तृष्णा के ताप से बचाइये। वन के पथ पर निर्भीक बढ़ सकूँ वह साहस दीजिये। जीवन भर आपके गुण गाता रहूँगा। इस पर स्वामी जी ने कहा-

'झीटा जी जब पहली बार आप यहाँ से खाली हाथ लौटे थे, विना दर्शन के

ही जाना पड़ा था, जब भी आप मठ के मन्तव्य को नहीं समझे। पहले उन्हें लेकर आओ, तभी आपकी समस्या का समाधान सम्भव हैं। झीटा जी भागे-भागे कहाड़ा पहुँचे। पत्नी चुपन्ना को काशी लेकर आये। सत्संग समाप्त हो चुका था। सन्ध्या हो गई थी। स्वामी जी ध्यान में चले गये थे। ध्यान की समाप्ति पर पर्दा खुला। दम्पत्ति दिव्य दर्शन पा कृतार्थ हो गये। पंडिताइन ने शिष्टाचार वश चढ़ावा चढ़ाया। आरती उतारी। चरण धोकर चरणामृत पिया।

स्वामी जी ने झीटा को उन्हें लाने का भावार्थ समझाने के लिए पहले श्रीमती चुपन्ना से दो प्रश्न किये। पहला प्रश्न था घर आंगन और वन आंगन में क्या अन्तर है। दूसरा प्रश्न था वह लोक कौन सा है जहां सूर्य प्रकाश नहीं पहुँचता। प्रथम प्रश्न के उत्तर में चुपन्ना ने आंख का काजल पोछ कर बता दिया। दूसरे प्रश्न के उत्तर में हथेली खोलकर चमका दी। झीटा जी तो कुछ नहीं समझे। स्वामी जी तो अर्थ समझे ही। उन्होंने चुपन्ना के प्रेम के परीक्षार्थ शंख ध्वनि की। शंख ध्वनि होते ही वह खड़ी होकर प्रार्थना करने लगी, 'प्रभो भेद मत खोलिए। मेरी लज्जा रखिये।' स्वामी जी ने कहा 'तुमने एक बार में ही तीन रूप धारण कर जिस विलासिता का विस्तार किया, उससे कोई-कोई ही बच सका है। तुम मूर्त रूप अविद्या हो आगे से ऐसा मत करना। पं. झीटा जी मेरी शरण में आ चुके हैं। देखो कैसे कर बद्ध खड़े रक्षा की प्रार्थना कर रहे हैं। इनके वन पथ की मुझे रक्षा करनी है।

स्वामी जी के यह कहते ही चुपन्ना वहां से चली गई। स्वामी जी के आशीर्वाद से पं. झीटा मोहान्धकार को चीर अपने स्वरूप में स्थित हो गये।

स्वामी जी अपनी शरण में आये हुए का कितना ध्यान रखते हैं, कितनी रक्षा करते हैं। इसका उदाहरण शिष्य पद्मतेश्वर को दिये जीवन दान से मिलता है। पद्मतेश्वर क़ाशी का ही था। स्वामी जी का अच्छा शिष्य था। प्रतिदिन सत्संग में आता था। घर पर नाम जप के साथ एकान्त में बैठ ध्यान साधना किया करता था। एक रात ध्यान साधना में चेतना के उर्ध्व गामिनी होने पर श्वास चौथी चौकी में अटक गया। उर्ध्वगति रुक गई।

ध्यान में स्वामी जी को जब शिष्य की इस स्थिति का पता चला, आचार्य अनन्तानंद को साथ लेकर सीधे पद्मतेश्वर के घर पहुंच गये। देखा खेचरी मुद्रा में उसके प्राण अटके हुए हैं। उन्होंने उसे तुरन्त खेचरी मुद्रा से निकाला। पद्मतेश्वर ने अपनी आंखे ख़ोल दी। स्वामी जी ने उसे स्वस्थ होते ही गगन गुहा में पहुंचा दिया, जहां पहुँचने के लिए उसने प्राणों की बाजी लगा दी थी। गगन गुहा में पहुंच पद्मतेश्वर ने राम नाम

की शक्ति का दिव्य चमत्कार देखा। कठिन साधना से भी जो योग दुर्लभ था, स्वामी जी ने चुटकी में उसे उपलब्ध करा दिया। वह स्वामी के चरणों में लिपट गया। सावधान होकर ध्यान में बैठने का उपदेश दे स्वामी जी आचार्य अनन्तानंद के साथ वापस श्रीमठ आये।

परिवार धन्य मनाता हुआ कहता रहा, गुरु हो तो ऐसा हो। शिष्य के कल्याण के लिए रात तक नहीं देखी दौड़े चले आये।

काशी का ही एक और उदाहरण मिलता है। स्वामी जी के दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त बारह प्रमुख शिष्यों के अतिरिक्त सैकड़ों दीक्षा प्राप्त और भी शिष्य थे। सत्संग में नियमित आने वाले श्रद्धालुओं की संख्या का तो कोई पार ही नहीं था। सब पर स्वामी जी की समान कृपा थी। सबके कष्टों का निवारण करते थे। घबरहरा में स्वामी जी का एक शिष्य ब्राह्मण दूधनाथ रहता था। श्रवण कुमार की भांति वह भी अपने माता पिता के अनथक सेवा के लिए काशी में प्रसिद्ध था। एक दिन उसे सर्प ने डस लिया। मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके वृद्ध माता पिता बड़ा विलाप कर रहे थे। यह संवाद जैसे ही स्वामी जी तक पहुंचा, उन्होंने चरणोदक के साथ अपने विश्वसनीय शिष्य को दौड़ाया। दूधनाथ के मुख में चरणोदक डालते ही उसने आंखे खोल दी। इस घटना से स्वामी के प्रति उमड़ती काशी की जन श्रद्धा आकाश छूने लगी।

सर्प दंश की ही एक और घटना केदारेश्वर के श्री नागर के साथ घट गई। वह भी स्वामी जी का निष्ठावान शिष्य था। उसे भी एक बार सर्प ने डस लिया। उसकी पत्नी बड़ा विलाप कर रही थी। सूचना मिलते ही स्वामी जी उसके आवास पर स्वयं पहुंच गये। शंख ध्वनि करते ही डसने वाला सर्प आकर नाचने लगा। स्वामी जी ने कहा- 'तूने इस सती के पति को क्यों काटा। सारा विष खींचो। स्वामी जी के निर्देश पर नाचना छोड़, जिस जगह डँसा था, वहाँ से विष चूसना प्रारम्भ कर दिया। थोड़ी देर में ही नागर ने आंखें खोल दीं। सर्प स्वामी जी के चरणों में लिपट क्षमा मांगने लगा। स्वामी के क्षमा के संकेत पर चुपचाप वहां से चला गया। नागर दम्पत्ति स्वामी जी के चरणों को अश्रुओं से भिंगाने लगे। कष्ट के लिए क्षमा मांगने लगे। स्वामी जी के विराट औदार्य तथा असीम दैविक शक्तियों की घर-घर में चर्चा होने लगी।

स्वामी जी के अद्भुत उपकारों की कथाएं अनन्त हैं। उनका प्राकट्य ही जन सेवा के लिए हुआ था। उन्हें भूत भविष्य वर्तमान करतल गत था। कौन किस जन्म में किस योनि में था, यहाँ तक उनसे छिपा नहीं था। ऐसी ही एक कथा इन्द्रमणि की

है। इन्द्रमणि पूर्व जन्म में बकरी थी। एक दिन वह गंगा जी की बाढ़ में बह गई। बहते-बहते वह एक झाड़ में फंस गई और वहीं उसकी मृत्यु हो गई। गंगा में मृत्यु हुई थी, इसलिए उसे इस जन्म में मनुष्य योनि तो मिल गई, परन्तु झाड़ी में मुख फंसने की घटना उसे याद रह गई, इस कारण उसका मुख बकरी का सा हो गया। यह कथा मनोविज्ञान के साथ शरीर विज्ञान के भी अनेक उलझे प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करती है। यह कथा गंगा जल की पवित्र शक्ति तो उजागर करती ही है, यह तथ्य उद्घाटित करती है कि स्त्री लिंगी देह अगले जन्म में भी स्त्री लिंगी देह ही प्राप्त करती है। बकरी लड़की ही हुई। इन्द्रमणि नाम रखा। उसका मुख बकरी की तरह था। कोई उसे वर नहीं रहा था। कुरूपता सबसे बड़ी बाधा थी। पूरा परिवार चिन्ता ग्रस्त था। क्या करे, क्या न करे? किसी ने उन्हें परामर्श दिया। श्रीमठ जाओ। वहाँ के मठाधीश साक्षात् ब्रह्म हैं, बड़े दयालु हैं, दीनों पर बड़े कृपालु हैं। आँसुओं को देखकर तो वे मोम की तरह पिघल जाते हैं। वे इसके असुन्दर मुख को सर्वांग सुन्दर कर देंगे। उस परामर्श पर वे उसे लेकर श्रीमठ पहुँच गये। माता पिता बड़ा विलाप करने लगे। इन्द्रमणि लज्जा एवं संकोच से गड़ी जा रही थी। वात्सल्य अभी तक गले से लगाये रहा। पराये घर वात्सल्य कहां था। लज्जावश वह घूंघट काढ़े रहती थी। पिता ने गुहा की चौखट पर शीश टिका दिया। हिचकियां भर-भर कर रोने लगा। करुणार्थ स्वामी जी ने पर्दा हटा दर्शन दिये। इन्द्रमणि ने भी प्रणाम के बहाने शीश चौखट पर टिका दिया। स्वामी जी ने व्यक्ति की चिद् शक्ति को खींच कर सुषुप्ति में डाल देने वाली शंख ध्वनि की। पिता सुषुप्ति की भाव दशा में चला गया। उसके आगे गंगा का वह सारा दृश्य उपस्थित हो गया, जहाँ पलाश झाड़ में बकरी का सिर उलझा पड़ा था। यह दृश्य देखते ही वह सामान्य अवस्था में आ गया। बोला- स्वामी जी मुझे इसका भूत नहीं, इसका सुन्दर भविष्य देखना है। मुझ दीन ब्राह्मण पर कृपा कीजिए। किसी भी प्रकार इस कन्या के हाथ पीले कर दूँ।

स्वामी जी के लिऐ तो सभी समान थे। उनकी समदृष्टि में ब्राह्मण अब्राह्मण में कोई अन्तर नहीं था। अपनी प्रकृत्य अनुसार उस ब्राह्मण को सीधा सा उपचार बता दिया। कहा-तुम वही जाओ जहाँ वह अजा मुख किंशुक झाड़ में उलझा हुआ है। उसे वहां से निकाल संस्कारित कर वहीं भूमि में गाड़ दो। अजा मुख संस्कारित होते ही इसका मुख भी संस्कारित हो जायेगा। ब्राह्मण ने जैसा स्वामी जी ने कहा वैसा ही किया। इन्द्रमणि का मुख सर्वांग सुन्दर हो गया। इस पर ब्राह्मण दम्पत्ति ने बड़ा आनंदोत्सव मनाया। उपहार प्रसाद लेकर श्रीमठ पहुंचा। प्रसाद वहां उपस्थित सभी में

वितरित किया गया। स्वामी जी की कृपा से बड़ी धूम-धाम के साथ इन्द्रमणि का विवाह सम्पन्न हुआ। ब्राह्मण दम्पत्ति के हर्ष का कोई पारावार न था। कृतज्ञ दम्पत्ति मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर रहे थे।

ऐसी ही एक और विचित्र घटना ने स्वामी जी की दिव्यता और यशस्वी कर दिया। एक वैश्य दम्पत्ति अपनी पुत्री के साथ काम रूप वन में होकर जा रहे थे। तभी उन्हें ऐसी सुन्दर सारिका दिखी, जो रामानंद रामानंद रट रही थी। वैश्य पुत्री इससे बहुत प्रभावित हुई और उसने दौड़कर उसे पकड़ लिया। सारिका बहुत सीधी थी। उड़ भी नहीं रही थी। सहज ही पकड़ में आ गई। वैश्य पुत्री ने उसे सभी प्रकार का खाद्यान्न खिलाना चाहा, पर उसने नहीं खाया। जब अपने खाने की खीर उसे रखी तो वह फटाफट खाने लगी। उस विचित्र सारिका के प्रति सभी का सहज आकर्षण हो गया।

वैश्य दम्पत्ति ने एकत्र हुए आस-पास के लोगों से पूछा यह सारिका जिस रामानंद नाम को रट रही है, क्या वह कोई व्यक्ति है? यह सम्भावना भी बनी कि यह सारिका पूर्व जन्म की कोई मानुषी है और उससे मिलने की कामना अधूरी रह गई हो। तभी भीड़ में से एक व्यक्ति ने कहा काशी में महायोगी रामानंद निवास करते हैं, हो सकता है उनकी शिष्या रही हो। इस सम्भावना से आश्वस्त हो, वैश्य दम्पत्ति अपनी पुत्री के साथ पिंजरे में सारिका को बंद कर काशी पहुंच गये। पूछते पूछते श्रीमठ जा पहुँचे। आचार्य अनन्तानंद से मिल सारा वृत्त उनके सामने रखा। आचार्य अनन्तानंद स्वयं विस्मित हुए। उन्होंने यह वृत्त स्वामी जी के सामने रखा। स्वामी जी ने गुफा में से ही निर्देश दिया, सारिका को पिंजरे से मुक्त कर दो। वैश्य ने पिंजरा खोल दिया। सारिका उड़कर गुहा की चौखट पर जा बैठी। स्वामी जी ने शंख ध्वनि की। सारिका रूपवती नारी में परिवर्तित हो गई। वह स्वामी जी से कर जोड़ प्रार्थना करने लगीं, हे देव, हे पुरुषोत्तम, हे पातक हरण हे पुण्य दर्शन आपकी जय हो। आप ही मुझे यहाँ तक लाये हैं। अन्यथा मुझे तो कामरूप के पालिकों ने वहीं क्षेत्र बद्ध कर दिया था। खग योनि में परिवर्तित कर दिया था। मैं प्रियतम गौतम को खोजती खोजती वहां पहुंची थी। अब आप ही मुझे मानुषी रूप देकर प्रियतम गौतम में मिला सकते है। यह सुनते ही पर्दा हटा स्वामी जी बाहर पधारे। दिव्य दर्शन पाते ही सारिका वापस मानुषी हो गई। सारिका उषा किन्नरी थी। स्वामी जी ने कहा- 'जा वही अपने किन्नर लोक में। तुझे तेरा प्रियतम वहीं मिलेगा। यह सुन स्वामी जी के चरण स्पर्श कर उषा किन्नरी अदृष्ट हो गई।

वैश्य पुत्री देखती ही रह गई। इस चमत्कार ने वैश्य दम्पत्ति को बहुत प्रभावित

किया। वे स्वामी जी के शिष्य हो गये।

हिमालय की कन्दराओं में अनेक सन्त सैकड़ों वर्षो से साधना रत रह, उस परमात्म शक्ति के दर्शनों की कामना करते आ रहे हैं। शरीर झुर्रियों में खो जाये। केश बढ़ते-बढ़ते शरीर के लिए वस्त्र बन जायें। योग की सारी मुद्राओं का अभ्यास ही थक जाये, पर वे अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच, वही बर्फ की शिलाओं पर अपनी देह गला देते हैं। स्वामी रामानंद के समय में ऐसे ही अत्यन्त वृद्ध योगी गोहिणनाथ हिमालय में तप कर रहे थे। हिमालय देव भूमि है; किन्तु उन्हें वहाँ भी शाश्वत आनन्द की प्राप्ति नहीं हो रही थी। उन्होंने स्वामी रामानंद के शब्द सुरति योग की प्रशंसा सुनी कि विना किसी कठिन साधना के प्रेम भक्ति योग से ही आत्म साक्षात्कार का सुख सहज ही प्राप्त हो जाता है। वे हिमालय से चलकर श्रीमठ पहुंचे। स्वामी जी उस समय ध्यान साधना में थे। दर्शन में विलम्ब देख वे योग शास्त्र की प्राणायाम सहित सूर्य, मई, उज्जायी, शीतली, अस्मिका, भ्रामरी तथा केवली मुद्राएं दुहराने लगे। तभी शंख ध्वनि हुई। उस ध्वनि को सुनते ही योगी गोहिणनाथ के भीतर सूक्ष्म प्रकाश का उदय हुआ, जिसने सारा मोहान्धकार छिन्न-भिन्न कर दिया। स्वामी जी से कुछ छिपा नहीं था। वे पर्दा हटा योगी गोहिणनाथ के पास आकर बोले- 'योगिराज इतने प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं थी। पंच धारण एवं शाम्भवी मुद्राओं का अभ्यासी जालन्धर बंध मुद्रा की अपेक्षा नहीं करता। यह सुन योगी गोहिणनाथ ने विहँसते हुए कहा- 'गुरु के समक्ष बालक शिष्यवत अब तक का पढ़ा पाठ प्रस्तुत कर रहा था, ताकि आगे का पाठ प्राप्त कर सकूँ।' योगी गोहिणनाथ के इस चतुरतापूर्ण उत्तर को सुन, स्वामी जी मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। योगी की निरभिमानता ने स्वामी जी को अत्यंत प्रभावित किया। कहने लगे- 'कृत्रिम साधनों द्वारा प्राप्त ईष्ट वस्तु उन्हीं साधनों के अधीन रहती है। प्रेम द्वारा प्राप्त वस्तु निरपेक्ष ही नहीं, स्वाभाविक रूप से स्थायी होती हैं। इस पर योगी ने कहा- 'उसी प्रेम भक्ति को पाने के लिए ही तो हिमालय से चलकर सेवा में आया हूँ। कृपा कीजिए'। स्वामी रामानंद ने कहा- 'प्रेम आंखों के मार्ग से हृदय में उतरता है। आप अपनी आंखों पर लटकी हुई इन बरौनियों को उठाइये तो।' जैसे ही योगी ने उन्मुक्त आंखों से स्वामी जी की ओर देखा, वे वहीं समाधिस्थ हो गये। आत्मस्थ हो गये। जो आनन्द वर्षों से हिमालय में गलते हुए योगी राज नहीं उठा पाये, उसे स्वामी जी ने पलक उठाते दे दिया।

समाधि टूटते ही योगी गोहिणनाथ ने कहा- आप महान संत हैं। परम सिद्ध पुरुष हैं। मैंने सारा जीवन हिमालय में खपा दिया। आपने प्रेम योगी बना उस राम से मिले

रहने की प्रबल भावना जगा दी। आनंद की इसी स्थिति में बना रहूँ, यही कामना विरह की तरह अकुलाने लगी हैं।

'यही विरह कातरता प्रेम भक्ति का प्राण है। लगन के साथ निरन्तर उसका नाम जपते रहो। निरन्तर ध्यान समाधि में डूबे रहो। वह सदैव आपके पास ही रहेगा। नाम में बड़ी शक्ति है। राम तो प्रेम का भूखा है।

कुछ दिन रहकर योगी गोहिणनाथ ने शब्द सुरति योग समन्वित रामभक्ति की दीक्षा लेकर, स्वामीजी का जय जयकार करते हुए श्रीमठ से विदा ली।

जीव जब तक प्रकृति की त्रिगुणात्मक माया के आकर्षण में अपने वास्तविक रूप को भूल अहंकारदृप्त रहता है, तब तक उसे परमार्थ मार्ग नहीं सूझता। किसी सद्‌गुरु के आशीर्वाद से, सत्संग के प्रभाव से, परमात्मा की कृपा से अथवा प्रारब्ध वश, मन जब भौतिक आकर्षण की रेशमी रज्जु के बंधनों को काट, पंच ज्ञानेन्द्रियों की प्रभविष्णुता से मुक्त हो, अन्तर्जगत् में विचरने लगता है, तब वैराग्य के उत्कर्ष से बुद्धि आत्मस्थ हो जाती है। ऐसा मनुष्य अपने जीवन काल में ही परमात्म तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। इस ज्ञान विज्ञान से अपरिचित पश्चिमी अग्नि पूजक आर्यों के गुरु करोंवियां का शिष्य मंगी पुरोहित स्वामी जी की ख्याति सुन गुरु आज्ञा लेकर श्रीमठ पहुँचा। उस समय सत्संग चल रहा था। उसने स्वामी जी के चरणों में प्रणाम कर कहा 'मैं तन मन से निष्पाप हूँ। परमार्थ की पहचान हेतु सेवा में आया हूँ। तब स्वामी जी ने कहा- 'परमार्थ की प्राप्ति तो उसे ही होती है जो निरभिमानी हो। अहंकार मुक्त हो। तुम्हें निष्पाप होने का जो दुरभिमान है, पहले उसे दूर करें।' तब मंगी पुरोहित ने कहा- उसे आप ही दूर करें। तब स्वामी जी ने कहा- पावों में घुँघरू बांधे परमार्थ भक्ति में डूबा वह मस्त पड़ा है न, उसके चरण चूम लो। तेरा सारा अभिमान गल जायेगा। मंगी पुरोहित ने जैसे ही चरण चूमने की चेष्टा की, वह मस्त साधु उठ बैठा। उसने उठते ही मंगी को अपने गले से लगा लिया। दो निष्पाप हृदयों का यह स्नेह मिलन था। मंगी के निष्पाप होने का जो अहंकार उसमें समाया था, वह सहसा उड़ गया। मंगी ने उसके चरण चूमने की बहुत चेष्टा की, पर उसने अपनी छाती से हटने ही नहीं दिया। अपने भक्ति स्रवित अश्रुओं से मंगी को नहलाता रहा। इस मिलन ने दोनों के भीतर खिंचा हुआ अज्ञान का पर्दा हटा दिया। दोनों ने अपने भीतर शुद्ध बुद्ध आत्मा के दर्शन किये। दोनों परमार्थ प्राप्ति के अधिकारी हो गये।

स्वामी जी सत्संग से उठ, गुहा में चले गये। उनके पीछे ही दोनों गुहा पर पहुँच

गये। बाद में दोनों ही स्वामी के शिष्य हो गये। गुरु रामानंद की अद्वितीय आध्यात्मिक शक्ति देख दोनों चकित एवं स्तम्भित थे। स्वामी जी ने कैसे एक शिष्य की चेतना से दूसरे आशार्थी के देह में चेतना का प्रवाह विस्तारित करवा दिया! दूर बैठे कैसे शिष्यों को अध्यात्म शक्ति से विभूषित करवा दिया! स्वामी जी ने मंगी को यह कह कर वापस अपने देश भेजना चाहा कि अब तुम वहीं जाकर साधना करते रहो। करोंबिया वहाँ हैं ही। परन्तु मंगी ने लौटने से इन्कार करते हुए भारत में ही रहने की इच्छा व्यक्त की स्वामी जी ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा। मंगी पुरोहित ने गुरु करोंविया को भी यही संदेश भिजवा दिया। स्वामी जी की दिव्यता की चर्चा घर-घर में होने लगी।

चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में यूनान से भारत के बहुत घनिष्ठ सम्बंध जुड़ गये थे। सिल्यूकस ने भारत से अपने सम्बन्धों को सुदृढ़ एवं स्थायी बनाने की दृष्टि से अपनी पुत्री हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ कर दिया था। अन्तोलियो एशी मत का साधु था। वह भगवान् के बाल रूप की आराधना किया करता था। पटना शहर से दूर एकान्त में रहता था। एक बार जंगल में वह रुग्ण हो गया। स्थिति विकट हो गई। संभाले नहीं संभल रही थी। उसे गांव वाले बैल गाड़ी में डाल उसकी कुटी ले लाए। वहीं उसकी अकाल मृत्यु हो गई। कहते हैं जब किसी की अकाल मृत्यु होती है, तब उसकी वासनाएं अधूरी रह जाती हैं। अधूरी वासना के फलस्वरूप न तो उस मृतक को मुक्ति मिलती है, न उसका पुनर्जन्म ही होता है। वह अधूरी वासनाएं लिए प्रेत योनि में भटकता रहता है। अन्तोलियों की प्रेतात्मा जब हिमालय पर डोल रही थी, तब सन्ध्या समय उसे रूक्मानंद जी के दर्शन हुए। उन्हें अपनी सारी कथा कही। उन्हें उसकी प्रेतावस्था पर दया आ गई। उन्होंने उसे कहा- 'यदि तू अपनी इस योनि से मुक्ति चाहता है, इसी अवस्था में स्वामी रामानंद जी के पास काशी श्रीमठ जा। वे बड़े सिद्ध सन्त हैं। बड़े कृपालु हैं। जो भी उनकी शरण में पहुँचा है, उसका उन्होंने उद्धार किया है। तेरा भी उद्धार कर देंगे। कहाँ तक प्रेत योनि में भटकता रहेगा।

यह सुनते ही अन्तोलियो की प्रेतात्मा काशी आकर श्री मठ के चक्कर काटने लगी। उसे स्वामी जी के दर्शन नहीं हो रहे थे। उसे भ्रमण करता देख स्वयं स्वामी जी ने बुलाया। पहुंचते ही उसने स्वामी जी का स्तवन किया- हे संसार समुद्र से पार उतारने वाले कर्ण धार, हे दीन वत्सल महाप्रभु मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। मेरी दीनावस्था पर कृपा करें। मुझ अधम का इस प्रेत योनि से उद्धार कर मनुष्य योनि प्रदान करें। स्वामी तो लोक संग्रह का भाव लिये ही थे। उन्होंने उसे आश्वस्त करते हुए कहा- 'मत घबरा, रुक्मानंद ने दर्शन दे, यहाँ भेज जो कृपा की है, उसने तेरा भग्योदय ही

किया है। सन्त का मिलना ही ईश्वर का मिलना है। दर्शन मात्र ही व्याधियों का निवारण कर देता है। संकट टल जाते हैं। अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। कोई कामना शेष नहीं रहती। उसे अपनी वास्तविक स्थिति में पहुँचते देर नहीं लगती। यह कर उन्होंने मंत्रित जल उस पर छिड़का। वह प्रेत योनि से युक्त हो सीधा भूमा के प्रकाश राज्य में चला गया। सिद्ध लोक पा गया। अन्तोलियों के इस उद्धार की चर्चा यूनान तक जा पहुंची। स्वामी रामानंद की सिद्धता, दिव्यता तथा विद्वता की चर्चा यूनान तक होने लगी। वे सही रूप में जगद्गुरु हो गये।

स्वामी जी ने प्रेतों से ही पीड़ितों को मुक्ति नहीं दिलाई, भ्रष्ट कामुक तांत्रिकों से भी समाज के युवा वर्ग को मुक्त कराया है। मांझा की वीनी नामक एक विप्र कन्या कापालिकों के चक्कर में पड़कर तंत्र विद्या तो सीख गई, पर उनके द्वारा योग माया के रूप में निरन्तर प्रयुक्त होने से, उसमें कामुकता इस चरम सीमा तक पहुंच गई थी, कि रात्रि में सोते हुए युवाओं को छतों से उठा लाती थी तथा चक्रनायक बना अपनी अतृप्त वासना की पूर्ति किया करती थी।

वीनी स्वयं सुन्दरी थी। यौवन मद उसके शरीर पर गदराया था। काशी में रात्रि में विचरते हुए उसने पलंग पर सोये एक स्वस्थ एवं सुन्दर युवा को देखा। उसकी बलिष्ठ देह पर लहराते यौवन तथा सौन्दर्य भरी काया को देख वह उस पर मोहित हो गई। वह उसे सुप्तावस्था में ही अपनी तंत्र विद्या से उठा मांझा ले आई। वह उसे चक्र नायक बना कई दिनों तक उसके साथ काम सुख भोगती रही। काशी में उसके माता पिता बहुत चिन्तित हुए। एक दो दिन प्रतीक्षा की। कहीं चला गया होगा, लौट आयेगा। इधर उधर जा खोज भी की। जहाँ जहाँ उसके होने की सम्भावना थी, वहाँ वहां गये भी, पर उन्हें अपना पुत्र कहीं भी नही मिला। निराश होकर पड़ोसियों के परामर्श पर वे स्वामी रामानंद की शरण में पहुंचे। रोते रोते उन्होंने स्वामी के सम्मुख सारी व्यथा कथा रखी। बोले, हमारी वही एक मात्र सन्तान थीं उनकी शरण में आ काशी में कोई व्यथित रहे यह असम्भव था। वे उनकी कातर वाणी सुन पिघल गये। उन्होंने ध्यान कर जैसे ही देखा तो वह युवा उन्हें मांझा में एक महिला तांत्रिक के वश में पड़ादिखा। स्वामी जी ने कहा-'तुम्हें तुम्हारा पुत्र मिल जायेगा'। यह सुनते ही दम्पत्ति के मुख पर प्रसन्नता खेल गई। आंखों के आंसू आंखों मे ही समा गये। पिता ने हाथ जोड़कर पूछा- 'कहाँ है हमारा बेटा। कब मिल जायेगा। हमारे तो प्राण निकले जा रहे हैं। आप सर्वज्ञ हैं। साक्षात् भगवान् हैं। स्वामी जी ने कहा- 'तुम्हारा बेटा माझा में वीनी नाम महिला तांत्रिक की कड़ी निगरानी में उसके घर में बंद है। वहां जा बिना बोले सीधे उसके घर

में घुस जाओं। वह एक पलंग पर अर्ध चेतन अवस्था में पड़ा होगा। पहुंचते ही उसके तकिये के नीचे रखा फूल निकाल उसे सुंघा देना। वह सचेतन हो उठा खड़ा होगा, तथा तुम्हारे साथ चला आयेगा। जब तुम वहां पहुँचोगे, तब वीनी घर पर नहीं होगी। तुम उसे लेकर तुरंत बाहर आ जाना।

विना समय खोये वे स्वामी जी के निर्देशानुसार माझा में वीनी का पता पूछ, पुत्र के कमरे तक पहुँच गये। वहाँ वह अर्ध चेतन अवस्था में पलंग पर पड़ा था। पिता ने तुरन्त सिरहाने के नीचे से फूल निकाला और उसे सुंघा दिया। पुत्र चेतन हो गया। माता पिता को सम्मुख देख घबराया हुआ सा उठ बैठा तथा सीधा उनके साथ बाहर निकल आया।

वीनी जब घर लौटी तथा पलंग पर युवक को नहीं देख जल भुन उठी। अपनी तांत्रिक क्रिया करने लगी। तंत्र क्रिया से उसने जाना कि काशी के स्वामी रामानंद ने उसका पता बताया है तथा उसकी मुक्ति की विधि भी उन्होंने ही बताई हैं तो वह रोष में आंखे लाल किये श्रीमठ में आ घुसी। आचार्य अनंतानंद ने उसे रोका। स्वामी जी ने भीतर से ही शंख ध्वनि की। उस शंखध्वनि को सुनते ही वीना का सारा तंत्रमंत्र धरा रह गया। स्वामी जी ने अपनी यौगिक शक्ति के कई अतीव डरावने, भयानक दृश्य दिखा डरा दिया। वह भयभीत हो उठी। उसने आचार्य अनन्तानंद से उसे स्वामी जी के दर्शन करवाने हेतु निवेदन किया। गुहा द्वार पर पहुंच उसने बड़ी कातर वाणी में स्वामी जी से प्रार्थना की, मुझे इसपाप कर्म से उबारिये। मैं क्षमा मांगती हूँ। भविष्य में कभी ऐसा दुष्कर्म नहीं करूंगी मेरी रक्षा करें।

स्वामी जी ने कहा- 'तुमने उस महाकाल की तंत्र शक्ति को कलंकित किया है। तंत्र के नाम पर तुम कलंक हो। इसपर वीनी ने कहा- मुझे क्षमा करें। दुष्ट कापालिकों ने मुझे योग माया के रूप में प्रयुक्त कर मेरी ऐसी वासना जगा दी थी कि मैं पुरुष के विना रह ही नहीं सकती थी। मैं अपराधिनी हूँ। आप ही इस स्थिति से मेरा उद्धार कर सकते हैं। मेरा कल्याण कर सकते हैं। मुझे परमार्थ पथ पर लगा सकते हैं। मुझे बचाइये। स्वामी जी ने कहा- 'माझा में तुम्हें कापालिक शांति से नहीं रहने देंगे। वे महादुष्ट हैं। तंत्र विद्या लोक कल्याण के लिए थी। इन वामाचारियों ने उसे कलुषित किया है। नारी की अस्मिता के साथ खुला खिलवाड़ किया है। तुम यहीं कुछ समय के लिए ठहरो। यहां ठहर मंत्र दीक्षा ले, शब्द सुरति योग जैसी सात्त्विक प्रक्रिया का अभ्यास करो। तुम्हें शांति मिलेगी। इस अभिशाप से मुक्त हो निर्विघ्न परमार्थ पथ पर बढ़ सकोगी। वीनी यह सुनते ही स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ी। कृपा की भीख मांगने

लगी कुछ दिनों बाद उसे स्वामी जी ने विन्ध्य क्षेत्र में भेज दिया। वीनी वहां जाकर शांति से साधना करने लगी।

प्रेत योनि और राक्षस योनि अलग-अलग होती हैं। प्रेत किसी को परेशान नहीं करता, जबकि राक्षस सांसारिकों के घरों में आवासियों को नानाविध कष्ट पहुँचाता है। मठ के पास ही एक प्रेत, जो पूर्व जन्म का अच्छा संस्कृत कवि था, कर्म वशात् प्रेत योनि में चला गया था, मठ के चक्कर लगा स्वामी जी से मुक्ति की कामना करने लगा था। कहता रहता था, हे कृपा निधान, मैं तो मठ में प्रवेश नही कर सकता, बाहर से ही आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझे इस योनि से मुक्ति दिलवाइये। मैं कबसे आपकी कृपा की बाट जोह रहा हूँ।

स्वामी जी उसकी करुण पुकार पर पसीज गये। उसे उन्होंने कृपा पूर्वक प्रेत योनि से मुक्ति दिला, सीधे स्वर्ग भेज दिया। प्रेत मुक्ति पा जिस देव विमान से स्वर्ग जा रहा था, तब एक ब्रह्म राक्षस, विमान के पास जाकर प्रेत से कहने लगा, मुझे भी अपने साथ स्वर्ग ले चलो। तब प्रेत ने राक्षस से कहा, इस राक्षस योनि से मुक्त हुए विना तुम कैसे स्वर्ग चा सकते हो। तुम मेरा पीछा छोड़ो तथा काशी में उन्हीं श्रीमठ के स्वामी की शरण में जाओ। उन्हीं से विनती करो। वे बड़े कृपालु हैं। वही तुम्हारा उद्धार कर सकेंगे। इसपर भी वह ब्रह्म राक्षस नहीं माना, और उसने विमान को पकड़ लिया। तब देवदूतों ने उसे मारपीट कर नीचे गिरा दिया। जब वह नदी की रेती में गिरा, तब वहाँ स्नान करते एक श्रेष्ठि पुत्र के सिर पर सवार हो गया। उसके घर पहुँच, अपने स्वभावानुसार श्रेष्ठि परिवार को परेशान करने लगा। कभी घर में आग लगा देता, कभी खाट घसीटने लगता। प्रति दिन घर में कोई न कोई उपद्रव खड़ा ही कर देता। सेठ ने ओझाओं को बुलवा कर कष्ट निवारण करवाना चाहा पर कुछ हुआ नहीं। तब उस ब्रह्म राक्षस ने कहा- 'आप इस बालक को स्वामी रामानंद की सेवा में श्रीमठ ले चलो। वही मेरा भी उद्धार करेंगे। बालक भी स्वस्थ हो जायेगा। सेठ बालक को लेकर मठ में गया। उसके साथ ही वह ब्रह्म राक्षस भी मठ में प्रवेश कर गया। सेठ ने स्वामी जी से अपने पुत्र को ब्रह्म राक्षस से मुक्त कराने हेतु प्रार्थना की। स्वामी जी दुविधा में पड़ गये। तब बालक के मुख से वह ब्रह्म राक्षस ने हाथ जोड़कर विनत निवेदन किया, 'कृपा कर मुझे भी इस राक्षस योनि से मुक्ति दिलवायें। स्वामी जी ने कहा- तेरी मठ में आने की कैसी हिम्मत हुई। तेरी मुक्ति असम्भव हैं। यह सुनते ही वह राक्षस चरणों में लोट गया। स्वामी जी ने कहा, 'कर्म भोग के लिए तुम्हें एक जन्म और लेना पड़ेगा। तुम्हारे श्रेष्ठ एवं पवित्र कर्म ही तुम्हारी मुक्ति के प्रमाण होंगे। तभी आना। इस बालक

को छोड़ तुरन्त मठ से बाहर चले जाओ।

ब्रह्म राक्षस स्वामी जी का आदेश मान श्रेष्ठि पुत्र को मुक्त कर मठ से बाहर चला गया। स्वामी जी की कृपा से थोड़ी दिनों में ही उसने पुनर्जन्म ले लिया। सभी धर्म कर्म पूरी निष्ठा से करने लगा।

स्वामी जी की आध्यात्मिक शक्तियों के आगे देवता भी नत् शिर थे। कारण, देवता देव योनि में रहते मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते थे। मोक्ष प्राप्ति के लिए उन्हें मनुष्य जन्म लेना ही पड़ता था। नन्दीश्वर (नदेसर, वाराणसी) के निवासी शापग्रस्त लुम्बवाहन तथा चन्द्रप्रभ की काम वासना शान्त नहीं हुई थी। लुम्बवाहन भूलोक की ब्राह्मण कन्या पर तथा चन्द्रप्रभ वैश्य कन्या की ओर आकृष्ट हो, उन्हें चाहने लगे थे। वे उन दोनो कन्याओं को कभी स्वादिष्ट खाद्य पदार्थो का तो कभी सुगन्धित पुष्प मालाओं का प्रलोभन दे बुलाते थे। उनके पीछे लगे रहते थे। वे इनकी शादी भी नहीं होने दे रहे थे। जिससे भी शादी की बात चलती, उसे येन केन प्रकारेण मरवा देते थे। इससे दोनों कन्याओं के पिता व्यथित होकर स्वामी जी की शरण में आये। स्वामी जी ने दर्शन दे दोनों की कष्ट कथा सुनी। ध्यान किया, ध्यान में वे दोनों दिखे। वे तो कुलीन देव वंशी विद्याधर थे। अपनी यौगिक शक्ति से स्वामी जी ने उन दोनों को वहीं आहूत कर लिया। वे अदृश्य रूप में आ वहाँ उपस्थित हुए। स्वामी जी के संकेत पर वे अप्रकट रूप छोड़कर प्रकट हो गये। उनके रूप लावण्य तथा आकर्षक सामुद्रिक को देख ब्राह्मण एवं वैश्य दोनों उन्हें अपनी पुत्रियों के लिए योग्य वर मानने लगे। स्वामी जी ने भी कहा- 'तुम्हें ऐसे श्रेष्ठ वर खोजे भी नहीं मिलेंगे। स्वामी जी के कहने पर दोनों पिता सहमत हो गये। पिताओं की स्वीकृति को स्वामी जी की कृपा मान दोनों विद्याधर पुत्रों ने कृतज्ञ भाव से स्वामी जी के चरण छुए। इसी बीच स्वामी जी के संकेत पर आचार्य अनन्तानंद भीतर से चार प्रसादी मालाएं ले आये। लुम्ब वाहन ने ब्राह्मण कन्या के तथा चन्द्र प्रभ ने वैश्य कन्या के गले में, इसके बाद ब्राह्म कन्या ने लुम्बवाहन के तथा वैश्य कन्या ने चन्द्रप्रभ के गले में परस्पर मालाएं डाल विवाह बंधन में बंध गये। दोनों वरों ने बधुओं के उपस्थित पिता के चरण छू मौन स्वीकृति ली। चारों ने फिर स्वामी जी के चरण छू दिव्य आशीर्वाद प्राप्त किया।

स्वामी जी की कृपा से सम्पन्न हुए इन दोनों विवाहों से देव लोक तथा भू लोक के एकत्व का श्रीमठ में पहली बार श्री गणेश हुआ। नन्दीश्वर पहुंचने पर दोनों के परिवारों में भी पृथक्-पृथक् बड़े समारोह हुए।

बहुत वर्षों बाद दोनों युगल, दाम्पत्य सुख भोगते हुए, पूर्ण तृप्तावस्था में, स्वामी जी के लिए स्वादिष्ट पायस तथा आश्रम के सन्तों के लिए सोने चांदी के पात्रों में मिष्ठान्न लेकर श्रीमठ आये। स्वामी जी को श्रद्धापूर्वक दोनों युगलों ने प्रणाम किया तथा सम्मान में कर बद्ध देववाणी संस्कृत भाषा में स्तवन किया। तदन्तर आरती उतारी। लुम्ब वाहन ने निवेदन किया- 'स्वामी जी आपके दर्शनों के बाद से ही हमारी भौतिक विषयों में कोई रुचि नहीं रही। लगने लगा, निवृत्ति ही परम सुख है। इसके तुरन्त बाद चन्द्रप्रभ बोला- स्वामिन्, देव लोक विषय भोगों के लिए जाना जाता है। स्वर्ग में भोग ही भोग है, ऐसा कहा जाता है। देवता भोग में उत्पन्न होकर भोग में ही मरते हैं। देव दुर्लभ सुख आपके पास हैं।

'देव लोक में भी ऋषि हैं। आप वहीं उनसे परमार्थ दीक्षा ले सकते थे।'

'जिस सिद्ध पुरुष ने हमें दाम्पत्य में बांधा, जिसने हमारे मनों में निवृत्ति के बीच बोये, उसे छोड़ हम अन्य क्यों भटके।' लुम्बवाहन ने कहा। चन्द्रप्रभ ने लुम्बवाहन की बात में अपनी बात जोड़ते हुए कहा- 'स्वामी जी तीनों लोको में आप जैसा दूसरा सिद्ध पुरुष हमने नही देखा। आपतो देवताओं के भी देवता हैं। आपका अवतरण केवल मानवों के लिए ही नहीं, देवताओं के उद्धार के लिए भी हुआ है। देवता अपने उद्धार के लिए पृथ्वी पर जन्म ले रहे है।' इस प्रशंसात्मक शब्दावली को सुन स्वामी के मुख पर वैश्य चातुर्य्य देख, स्मित खेल गया। स्वामी जी ने कहा-

'तुम्हारी विरक्ति की कामना स्वागत योग्य है। स्वयं का सुख छोड़कर मानव सुख के लिए अपनी आयु समर्पित कर दो।

दोनों दम्पतियों ने स्वामी जी के इस निर्देश को स्वीकारते हुए उनके चरणों पर अपने शीश टिका किये। स्वामी जी ने उचित समय पर दोनों युगलों को वैराग्य की नैष्ठिक दीक्षा दे, आत्म दर्शन का वह सुख दिया, जहाँ काम का प्रवेश नहीं है। उन्हें आदेश दिया, 'आप चित्रकूट जाकर वनवासियों की सेवा करो। चित्रकूट में चिति शक्ति का पूर्ण प्रकाश विस्तृत है। वह सनातन ब्रह्म राम, वहाँ सदा निवास करता है।

स्वामी जी को प्रणाम कर दोनों दम्पत्ति चित्रकूट के लिए प्रस्थान कर गये।



नौ

अयोध्या यात्रा के बाद से ही स्वामीरामानंद के मन में भक्ति के व्यापक प्रचार प्रसार, विधर्मी अत्याचारों से देश एवं समाज को बचाने के भाव से धर्म यात्रा पर निकलने का मन था। आचार्य अनन्तानंद ने अपने शिष्यों के सहयोग से श्रीमठ की पूरी व्यवस्था संभाल रखी थी। वहाँ सेवा देने वाले श्रद्धालुओं की एक बड़ी टोली जो खड़ी करली थी। इससे शिष्यों के भरोसे मठ को छोड़, उनके भी धर्म यात्रा पर जाना कोई असम्भव कल्पना नहीं थी। आचार्य अनन्तानंद ने गुर्वादेश पर लोक संग्रह रत दोनों प्रधान शिष्य श्री कबीर एवं श्री रैदास के साथ बैठ धर्म यात्रा के कार्यक्रम को विस्तार के साथ नियोजित किया। स्थान-स्थान से आ रहे निमंत्रणों पर भी गम्भीरता से विचार विमर्श किया। सन्त पीपा जी का निमंत्रण तो कब का ही आया था। स्वामी जी की इच्छा भी पहले गागरोन गढ़ ही चलने की थी। इसलिए गागरोन गढ़ पहुंचने का मार्ग तय हुआ। कहाँ-कहाँ होकर, किन-किन तीर्थ स्थानों को देखते हुए वहाँ पहुंचना होगा, यह तय हुआ। स्वामी जी के लिए पालकी की व्यवस्था हुई। साथ चलने वाले शिष्यों एवं ब्रह्मचारियों के नाम तय हुए। इस तरह साठ लोगों की सूची तैयार हुई, जो साथ चलेंगे। सबको बताया गया। स्वामी जी के साथ धर्म यात्रा में चलने को तो बहुत सारे भक्त एवं श्रद्धालु थे, पर आचार्य अनन्तानंद ने व्यवस्था की दृष्टि से साठ को ही साथ चलने के लिए बताया। सभी ने इस संख्या को पर्याप्त भी समझा। स्वामी जी के निर्देश पर आचार्य अनन्तानन्द ने एक शिष्य को सूचनार्थ पूर्व में ही गागरोनगढ़ के लिए रवाना कर दिया।

आचार्य अनन्तानंद इधर गुरु भाइयों के साथ धर्म यात्रा के कार्यक्रम का निर्धारण कर रहे थे, उधर राम रूप स्वामी रामानंद के रमन में दिग्विजय से पूर्व त्रेता के दाशरथि राम का लंका विजय से पूर्व शिव पूजन का दृश्य आकार ले रहा था। सोचने लगे, आज शिवरात्रि है क्यों न विश्वनाथ मंदिर पहुँच आशुतोष से आशीर्वाद ले लूँ। वे बड़े तड़के ब्रह्म मुहूर्त में ही तैयार हो विश्वनाथ मंदिर पहुँच गये। मंदिर के पट बंद थे। इधर उधर देखा कोई पंडा पुजारी आ रहा है क्या? थोड़ी देर प्रतीक्षा की। जब कोई आता

नहीं दिखा तो लौटना ही चाह रहे थे तभी अचानक मंदिर के पट स्वतः खुल गये और क्या देखते हैं, नंदीश्वर उन्हें भीतर लिवाने के लिए प्रसन्न मुद्रा में द्वार पर खड़े हैं। स्वामी रामानंद के हर्ष का परावार नहीं था। जैसे मंदिर में प्रवेश किया स्वयं भगवान् विश्वनाथ भगवती पार्वती सहित उन्हें गले लगाने को प्रस्तुत थे। स्वामी रामानंद जैसे ही भगवान् आशुतोष को प्रणाम करने के लिए झुके, धूर्जटी ने उन्हें अपने निकट आसन पर बिठा लिया बोले- 'एक बार राम-नाम लेने वाले को मैं तीन बार प्रणाम करता हूँ। आपतो सतत् तुरीयावस्था में रह रामानंद में डूबे हैं आपके सम्मान में मैं क्या करूं, समझ में नहीं आ रहा। तब स्वामी रामानंद के कहा 'जैसे आपने दाशरथि राम को लंकापति रावण पर विजय दिलाई है, वैसे ही मुझे भी आशीर्वाद दीजिए धर्म यात्रा में दिग्विजयी हो, वापस लौटूँ। समय बड़ा विकट है। देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा है। आक्रान्ताओं के अत्याचार तो बढ़ ही रहे हैं, अपने ही धर्म-धुरीण आपस में द्वेषकर वातावरण को विषाक्त बना रहे हैं। आप तो विषपायी नीलकण्ठ हैं। इस स्थिति में धर्मयात्रा पूरी हो सके, मुझे असम्भव लग रहा है। आपकी कृपा का आकांक्षी हूँ।' इसपर भगवान् शिव ने आशीर्वाद देते हुए कहा- 'आपकी धर्म यात्रा मंगलमय हो। आप स्वयं सारे विरोधों को शांत करने वाला यह दक्षिणावर्त शंख साथ लिए हैं। आपको और क्या चाहिए?' इसपर स्वामी रामानंद ने कहा- आपका सतत सान्निध्य। कलिकॉल को तो मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि वह मेरे पथ की बाधा न बने। उसने मुझे आश्वस्त भी किया है। आप काल के भी काल महाकाल हैं। आपके सान्निध्य की बात और ही है। यह कहते हुए स्वामी रामनंद ने षोडश उपचारों से अवढ़र दानी शिव का पूजन अर्चन किया। मस्तक पर चंदन तिलक लगाया। नीलकण्ठ में सुगन्धित हार पहनाया। चरणों पर अक्षत चढ़ा जैसे ही नतमस्तक होना चाहा, भूतनाथ से उन्हें गले से लगा लिया। 'आप रामानंद है। राम मेरे पूज्य हैं। आप स्वयं रामरूप हैं। आप मेरा पूजन करें या मैं आपका। आपने उस धूर्त कलि को मना लिया, यह अच्छा किया। उसने महर्षि व्यास से भी उपदेश लेना चाहा था, पर उस पाखंडी को उन्होंने उपदेश देने से ही मना कर दिया था। आपने उसे उपदेश दे, कृतार्थ किया है। आपकी धर्म यात्रा सफल हो, आप अपनी रामभक्ति का प्रचार करते हुए सकुशल दिग्विजयी हो काशी लौटें, मेरी यही शुभकामना हैं। देवी भगवती सारा वार्तालाप ध्यान पूर्वक सुन रही थी। उन्होंने अपना दिव्य प्रसाद स्वामी जी के सामने उपस्थित किया। जिसे पाकर वे और कृत-कृत्य हो गये। बोले 'आप महादेव की महाशक्ति हैं।' आपके आशीर्वाद के बिना मुझे शक्ति कैसे प्राप्त होगी? इसपर भगवती शिवा ने प्रसन्न मुख करतल उठा

अपना आशीर्वाद दिया।

स्वामी जी ने उठ जैसे ही आज्ञा चाही, भगवान् विश्वनाथ ने कहा- 'हमें अपनी शंखध्वनि नहीं सुनाओंगे'। स्वामी जी ने अपना दक्षिणावर्त शंख जैसे ही फूंका, सर्वत्र एक दिव्य चेतना प्रसारित हो गई। जागरण हो गया। पंडे पुजारी जग गये। स्वामी जी विदा हो चुके थे। जैसे ही पंडे पुजारियों ने देखा, मंदिर के कपाट खुले हैं, तो वे आश्चर्य में पड़ गये। चकित भाव से विचार करने लगे। उनका ध्यान सीधा श्रीमठ के स्वामी रामांनद की ओर गया। सारी वस्तुएं यथा स्थान हैं। भगवान् आशुतोष का विग्रह चंदन चर्चित है। निश्चित ही यह किसी दिव्य पुरुष का ही चमत्कार है जो ब्रह्म मुहूर्त में शिव पूजन कर गया है। शिवरात्रि थी ही। स्वामी रामनंद ने आकर शिवार्चन किया है, यह चर्चा सर्वत्र फैल गई। मंदिर के पट स्वतः खुल गये; इस प्रसंग ने स्वामी रामानंद की दिव्यता का एक और शिलालेख गाड़ दिया।

स्वामी रामानन्द ने देश में उत्साह का वातावरण निर्मित करने, विखंडित समाज को एक जुट कर समरसता के भाव को जगाने तथा हिन्दू समाज की जाग्रत संगठित शक्ति खड़े करने की प्रबल इच्छा ले, अपनी शिष्य मंडली के साथ शुभ मुहूर्त में गागरोन गढ़ के लिए प्रस्थान किया। स्वामी जी पालकी में विराजमान थे। आचार्य अनन्तानंद तथा शिष्य नरहर्या नंद अगल-बगल में खड़े हो चँवर डुलाने लगे। समय पर गागरोन गढ़ पहुँचा जाये, इस भाव से यात्रा स्थान-स्थान पर ठहरी तो सही, पर स्वामी ने प्रवचन का कार्यक्रम कही नहीं रखा। तो भी नगर ग्राम कस्बों के श्रद्धालु जन मंगल यात्रा में स्वतः ही साथ आने लगे। श्रद्धा भक्ति की नदी जैसे उमड़ कर बह रही हो। वे स्वामी के दिव्य दर्शन की एक झलक पाने की उत्कंठा लिए थे।

परम प्रिय शिष्य श्री पीपा के हर्ष का कोई पार नहीं था। जैसे ही हलकारे से सूचना मिली, धर्म यात्रा गागरोन गढ़ के निकट आ पहुंची है श्री पीपा जी राजा भोजराज के साथ अगवानी के लिए आगे आ गये। पूरे राजसी स्वागत की तैयारियाँ थीं। सन्त पीपाजी ने दण्डवत् प्रणाम के साथ गुरुदेव का बड़ा भाव भीना स्वागत किया। राजा भोजराज ने भी चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया। आगत सभी सन्तों का भी पीपा जी तथा राजा भोजराज ने विनत अभिवादन किया। गाजे बाजे के साथ स्वामी जी को गागरोन गढ़ लिवा कर लाये। स्वामी जी के आवास के लिए पृथक् से पर्ण कुटी बनाई गई थी। सभी सुविधाओं से वह युक्त थी। उसे सजा कर बाहर से भी बड़ा आकर्षक रूप दिया गया था। निकट ही सभी सन्तों के ठहरने की भी उचित व्यवस्था गागरोन राज्य की ओर से की गई थी।

गागरोन गढ़ कालीसिंध एवं आहू नदियों के संगम पर एक ऊंचे पहाड़ पर स्थित चारों ओर से सुदृढ़ ऊंची प्राचीर से आरक्षित है। गढ़ में भीतर पहुंचने के लिए भी दो बड़े दरवाजे पार करने पड़ते हैं। उस समय गागरोन एक बड़ा राज्य था। रजवाड़ों में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। ब्रह्मचारी पूर्व सूचना लेकर आया, तब से स्वामी जी की दिव्यता के चमत्कारों की कथा सुना ही रहा था। जनता में दर्शनों की उत्कट लालसा पहले से ही जगी थी। प्रतिदिन के सत्संग में भारी संख्या में आस-पास के ग्रामों के श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ने लगी थी। रानियों ने भी स्वामी जी की सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ रखी थी। प्रतिदिन स्वामी जी का पाद प्रक्षालन, परिक्रमा,आचमन तथा प्रणाम करते हुए सान्निध्य में बैठ राम नाम का ज़ाप करती हुई वे अपने को धन्य मान रही थीं। सत्संग में भी स्वामी जी के प्रवचन से पूर्व उपस्थित श्रद्धालुओं को जब सन्त श्री कबीर तथा सन्त श्री रैदास राम-नाम का जाप करवाते थे, सारा वातावरण राममय हो जाता था। स्वामी रामानंद प्रतिदिन पाण्डाल में पधार, अपने दिव्य दर्शन से उपस्थित श्रद्धालु श्रोताओं को कृतार्थ करते थे। प्रवचन से पूर्व शंख ध्वनि वातावरण को शान्त ही नही करती थी, आध्यात्मिकता से पवित्र भी कर देती थी। स्वामी जी के प्रवचन सुन, विमुग्ध जन शिष्यता ग्रहण करने हेतु उमड़े पड़ते थे। स्वामी जी सभी से यही कहते थे- 'अपनी आत्मा को इतना विशाल तथा सोच को इतना व्यापक बनाओ कि अखिल विश्व उसमें तथा अखिल विश्व में स्वयं आप दिखें। गागरोन गढ़ धन्य है जहाँ पीपा जैसे रामनुरागी सिद्ध योगी विराज रहे हैं। यहाँ के सभी वासी धन्य हैं जिन्हें इस दिव्य ज्योति के प्रकाश में जीवन यापन का सौभाग्य प्राप्त है। यह भूमि पवित्र भूमि है, जिसे ऐसे दिव्य पुरुष को जन्म देने तथा अपनी गोद में खिलाने का अवसर मिला है। आप इन पर विश्वास करके चलें। जहां सन्त पीपा हैं वही रामानन्द हैं। इनमें और रामनन्द में कोई भेद न देखें। इनका उपदेश ही मेरा उपदेश है। आप सब मिल इस पवित्र धरती को राम नाम से इतना गुंजा दें कि यहां के वृक्षों से, यहां की नदियों से, इन पहाड़ों से राम राम की मंगलदायी ध्वनि ही गूंजती रहे। राम ही जगत् नियन्ता है। यह जगत भी राम रूप ही हैं राम से भिन्न कुछ नही है। राम-नाम में अपार शक्ति है। सब अपने-अपने घर के एकान्त कोने में ध्यान की मुद्रा में बैठे राम-नाम का अखण्ड जाप करें। वह जगत नियंता राम आपसे दूर नहीं है। वह आपके भीतर ही बैठा है। राम नाम के जाप से वह स्वतः आपको पुकार लेगा। स्वयं आकर आपको दर्शन देगा। आपके लोक परलोक को सार्थक करेगा। स्वामी जी के इस प्रवचन को सुन कृतार्थ श्रद्धालु श्रोता मुक्त कण्ठ से स्वामी जी का जय जय कार करते थे।

एक दिन प्रवचन के उपरान्त एक श्रद्धालु ने खड़े होकर पूछा-'स्वामी जी, आपके इस अमूल्य उपदेश को चरितार्थ एवं फलितार्थ करने के लिए हमें और क्या क्या करना चाहिए'? इसपर स्वामी जी ने कहा- 'चातुर्मास हमारा यहीं होगा। आचार्य अनान्तानंद से आप मिल ले। वे आपको राम नाम रूपी शब्द सुरति योग की विधि समझा देंगे। यह बड़ी सहज एवं सरल विधि है। इसमें न तो निर्गुण की तलवार की धार पर चलना है न सगुण के कर्म काण्ड में उलझना है। यह तो मध्यम मार्ग है जिसमें मिलन की तीव्र उत्कण्ठा है, दर्शन की प्रबल इच्छा है, तथा नाम जप के साथ ध्यान साधना में बैठना है। अभ्यास से सारी प्रक्रिया सरल है। इसके बाद तो आचार्य अनन्तानंद की धर्म कक्षाएँ गढ़ में लगने लग गई। आचार्य अनन्तानंद के निर्देश पर लोक संग्रह हेतु नियुक्त संत कबीर तथा संत रैदास लोगों के साथ बैठ उनसे धर्म चर्चा करते हुए उन्हें राम नाम की महिमा बताते, ध्यान की विधि बताते तथा शब्द सुरतियोग का विधिवत् अभ्यास कराने लगे थे। अन्य सन्त भी स्वामी जी के दिव्य चमत्कारों की कथाएँ सुना लोगों को राम भक्ति की ओर उन्मुख करने लगे थे। श्रद्धालुओं में इस प्रेम भक्ति योग की ओर निरन्तर आकर्षण बढ़ रहा था। जब भी स्वामी जी के प्रस्थान की बात छिड़ती, जनता उन्हें रोकने तथा और ठहराने की पीपा जी से मांग करती। पर वे यही कहते, यह गागरोन वासियों का सौभाग्य है कि स्वामी जी चार माह तक लगातार यहां ठहरे हैं। अन्यथा स्वामी जी कहीं जाते नहीं हैं इस यात्रा में भी वे सबसे पहले गागरोन ही पधारे हैं। यही क्या कम है। आप भी साधना करें। फिर मैं हूँ ना।

स्वामी जी के चातुर्मास का सर्वाधिक लाभ पीपा जी को मिला। उन्होंने अपनी गुरु निष्ठ सेवाओं से जहां सबको प्रसन्न किया; वही गुरुदेव को प्रसन्न कर देव दुर्लभ वैराग्य प्राप्त कर लिया। गुरुदेव ने प्रसन्न हो स्वयं उन्हें अनेक सिद्धियों से अलंकृत कर दिया। चातुर्मास के बाद ही आगे की यात्रा का कार्यक्रम बना। वहां से सीधा जगन्नाथपुरी जाना था। पीपा जी को भी साथ चलना था। तभी श्री पीपाजी की सबसे छोटी रानी सीता ने राजर्षियों की उत्कृष्ट रीति के अनुसार पति के साथ गमन की इच्छा की। सभी ने पथ की कठिनाइयों की ओर उसका ध्यान खींचते हुए उसे रोकने की भरसक चेष्टा की, पर वह नहीं मानी। अन्त में स्वामी जी ने उसे वैराग्य दे साथ चलने की स्वीकृति दे दी। रानी ने संत वेश धारण कर लिया। रानी सीता का मूल नाम रानी सोलंखड़ी पद्मावती था। रानी के सीता की तरह पति के साथ सहगमन की दृढ़ता देख स्वामी जी ही उसे सीता नाम से पुकारने लगे। स्वयं पीपा जी इसे रानी सीता कह कर पुकारा करते थे। यात्रा के इस क्रम में स्वामी जी ने बीच-बीच में अनेक तीर्थों, मन्दिरों

तथा आश्रमों का दर्शन कर जन-कल्याणार्थ उपदेश दिया।

धर्म यात्रा जब जगन्नाथ पुरी के निकट पहुंची, तभी जगन्नाथ भगवान् ने बटुक रूप धर स्वामी जी की अगवानी की। स्वागत में पालकी के पास पहुंच मान-पत्र समर्पित किया। इस दिव्य रहस्य को केवल स्वामी जी जाने और कोई नहीं। मंदिर की ओर से स्वामी जी के आवास एवं भोजन की सुचारु व्यवस्था की गई। स्वामी जी केवल पायस ही लेते थे। उसकी पृथक से व्यवस्था हुई।

जगन्नाथ पुरी के निवासियों ने स्वामी जी के सम्मुख यदा-कदा समुद्र के सीमोल्लंघन की पीड़ा का वृत्त रखा। स्वामी जी ने कबीरदास को इसका उपचार करने का संकेत किया। संत कबीर ने प्रात वेला में पहुंच चिमटा गाड़ समुद्र से कह दिया, वह इससे आगे न बढ़े। इसी तरह वहाँ के आवासियों ने चन्दन तालाब का वृत्त रखा। जीर्णोद्वार के पश्चात् भी उसमें पानी का कोई स्त्रोता नहीं फूट रहा था। स्वामी जी ने योगानंद को सरोवर पहुंच जन कष्ट हरने को कहा। शिष्य योगानंद पाल पर पहुंच समाधि लगा कर बैठ गये। स्वामी जी की कृपा से सरोवर जल से पूरा भर गया। जनता में हर्ष की लहर दौड़ गई। स्वामी जी की सेवा सुश्रुषा में जगन्नाथ पुरी उलट पड़ी।

विदा की वेला से पूर्व बटुक रूप भगवान् जगन्नाथ स्वयं पायस लेकर पधारे। अन्तर्यामी स्वामी जी से क्या छिपा था? स्वामीजी ने इतने दिनों की सेवा के उपलक्ष्य में बटुक भगवान् का अभिनन्दन किया। अपने साथ विठाकर उन्हें स्वयं खीर खिलाई। बटुक भगवान् ने रामेश्वरम् तक के पथ की सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी स्वयं लेते हुए जमात को ससम्मान वहां से विदा किया। पुरी की प्रसन्न जनता ने स्वामी जी का जयजयकार किया।

पुरी प्रवास के समय स्वामी जी ने सांख्य दर्शन के प्रवर्तक मुनि कपिल देव का आह्वान किया। महर्षि कपिल के उपस्थित होने पर स्वामी जी ने अपने कर कमलों से उनका मंत्रों से अर्चन किया। स्वामीजी ने गंगा सागर तीर्थ की महिमा का बड़े ही भाष्य पूर्ण शब्दों में वर्णन करते हुए कहा- 'सब तीरथ बार बार गंगा सागर एक बार'। स्वामी जी ने महर्षि कपिल से गंगा सागर को अपना धाम बनाने का अनुरोध किया। मकर संक्रांति पर कपिल तीर्थ में प्रतिवर्ष पवित्र स्नान की परम्परा चल पड़ी।

रामेश्वर धाम पहुँचने से पूर्व ही विजयनगरम् के राजा श्री बुक्काराय ने स्वामी जी का राजसी अभिवादन किया। रामेश्वरम् में आवासादि की सारी व्यवस्था विजयनगरी की ओर से होती रही। जब जमात मंदिर के द्वार पर दर्शनार्थ पहुंची, तब वहाँ पंडे पुजारियों

की ओर से यह कह कर बाधा खड़ी कर दी कि मंदिर में त्रिपुण्ड तिलक धारी ही प्रवेश कर सकता है। उर्ध्व पुण्ड्र धारी वैष्णव नहीं। उन दिनों वहाँ शैवों एवं वैष्णवों के बीच संघर्ष चल रहा था। वैष्णव कह रहे थे कि मंदिर वैष्णवों का है। शैवों को तो केवल सेवा पूजा भर का अधिकार है। स्वामी जी तो एकता तथा समरसता का संदेश लेकर ही धर्म यात्रा पर निकले थे। उन्होंने अपना दक्षिणावर्त शंख उठा, ज्योंही फूंका। उसकी दिव्य ध्वनि सुन सारे पंडे पुजारी का हृदय खिल उठा। संकोच जाता रहा। क्या देखते हैं, सम्पूर्ण जगत के भाल पर त्रिपुण्ड सुशोभित है। इस चमत्कार से चमत्कृत पंडे पुजारियों ने प्रसन्न हो मंदिर के सारे अवरोध हटा दिये। इसे उन्होंने भगवान् आशुतोष शिव की आज्ञा मान कर ही स्वीकार किया। पंडे-पुजारियों ने आगे रहकर स्वामी जी का शैव पद्धति के अनुसार पधरावनी कर, स्तुति सहित आरती कर हार्दिक सत्कार किया। तब स्वामी जी ने उनसे कहा प्रीतिमान की बात प्रीतिमान जानते हैं। भक्तिमान की खातिर भी भक्तिमान ही जानते हैं। हृदय की विशालता जगत में प्रमाण है। मर्मी इस तथ्य को जान व्यवहार करते हैं।'

स्वामी जी के इन दार्शनिक सर्वधर्म समभावी विचारों को सुन उपस्थित जन समुदाय गदगद् भाव से स्वामी जी की सदाशयता तथा सहृदयता की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगा। सभी पुजारियों ने महन्तों ने स्वमी जी का उपदेश शिरोधार्य कर वैसा ही कान का वचन दिया। स्वामीजी को महायोगी मान महन्तों पुजारियों ने पूरी निष्ठा के साथ उनकी सेवा सुश्रुषा की। वैष्णव समुदाय ने तो उनका सार्वजनिक अभिनंदन किया। उस समय शैव-वैष्णव एकता का अद्भुत दृश्य उपस्थित था।

रामेश्वर की जनता के अनुरोध पर शैव वैष्णव एकता स्थापित करने के भाव से स्वामी जी ने कहा- 'शिष्य योगानन्द यहीं रहकर आपकी एकता को सुदृढ़ करेंगे। शिष्य योगानंद ने दोनों हाथ ऊंचे कर सबको नमन किया। शिव प्रतिमा स्थापित करने वाले, उनकी अर्चाना करने वाले स्वयं वैष्णव राम हैं। इस दृष्टि से यह धाम उतना ही वैष्णवों का है जितना शैवों का। शिव को स्वयं वैष्णव पूजा स्वीकार है। फिर उन्हें यहां रोकने का क्या औचित्य है। शिव तो स्वयं वैष्णवाग्रगण्य हैं, प्रस्थान से पूर्व स्वामी जी जमात के साथ धुनषकोटी तथा रामसेतु देखने गये। रामसेतु को देखकर स्वामी जी ने कहा-रामसेतु हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। अतीत के वैज्ञानिक विकास का प्रकटीकरण है। अधर्म के विरुद्ध धर्म की विजय का प्रतीक है। इसकी हर प्रकार से रक्षा होनी चाहिए। विधर्मी शक्तियाँ हमारे इतिहास को झुठलाने, हमारे मान बिदुंओं को मिटाने तथा उस गौरवशाली अतीत को भुलवाने को पूरी शक्ति से प्रयत्नशील हैं। हिन्दू

समाज को संगठित होकर ऐसे प्रयत्नों का विरोध करना चाहिए। इस पर उपस्थित शैवों तथा वैष्णव भक्तों ने तालियाँ बजाकर समवेत स्वागत किया।

राजा बुक्काराय ने स्वामी जी के अभिनन्दानार्थ विजयनगर को दुलहिन की तरह सजाया था। मार्ग में स्थान स्थान पर तोरण द्वार सजाए थे। फूल मलाएं लटकी थीं। स्वामी जी की जमात के निवास की वहाँ के प्रसिद्ध उद्यान में व्यवस्था की गई थी। उद्यान के बीच में सरोवर था। स्नान के लिए उसमें बड़े-बड़े घाट बने थे। विद्यारण्य स्वामी वहाँ के बड़े ख्यात नाम धर्मपुरुष थे। वे भी स्वामी के दर्शन लाभ की आकांक्षा लिए राजा के साथ स्वागत हेतु प्रस्तुत थे। स्वामी जी जमात के साथ नगर के निकट आ गये हैं। राजा बुक्काराय तथा मुनि विद्यारण्य स्वामी ने नंगे पाव नगर पार पहुंच, स्वामी का तथा जमात का स्वागत किया। दोनों ने ब्रह्मचारियों को हटा पीनस को अपना कंधा लगा आत्मिक प्रीति का उद्घाटन किया। सुन्दर स्वच्छ सरोवर को घेरे पुष्पित हरियाये रमणीक उद्यान में पहुंच जमात ने विश्राम लिया।

सायंकाल प्रवचन में स्वामी जी ने उपस्थित राजा तथा सेवकों को सम्बोधित करते हुए कहा- 'राजयोग एवं भोग साथ नहीं चलते। राजयोग में भोग की उपस्थिति अत्यधिक हानिप्रद है। भोग विलास में जो भी लिप्त रहा, वह राज्य, राज वंश सहित नष्ट हुआ है। राजा को चाहिए कि वह यम नियमपूर्वक प्रजा रंजन रूपी प्राणायाम को नित्य प्रति संयम सहित सम्पादित करें। राजा, स्वामी जी के इस उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे भूर्ज पत्र पर लिखवा कर सोने के अंगद में मंडवा, भुजा पर बॉध लिया। स्वामी जी नौ दिन तक विजयनगर में रुके। प्रति दिन उपदेश सुनते सुनते राजा को विश्वास हो गया, कि वह भी पूर्व जन्म का कोई योगी ही है। स्वामी जी की ओर से प्रसाद रूप में प्रदत्त पायस को ग्रहण करते करते राजा का हृदय रोग जाता रहा।

इधर लोक संग्रही कबीर ने उन नौं दिनों में वहां के राज मंत्री को अपना बना लिया। राजमंत्री स्वयं पहले से ही विशिष्टाद्वैती था। इस कारण घनिष्ठता और भी सुदृढ़ हो गई। नौ दिन तक अलग-अलग समाजों के भण्डारों, राज प्रसाद के विविध व्यंजनों तथा सुस्वादिष्ट पायस का आनंद लेते हुए जमात कांचीपुरी के लिए विदा हुई। नगर के बाहर तक श्रद्धालुओं की भीड़ के साथ स्वयं राजा बुक्काराय तथा मुनि विद्यारण्य स्वामी ने आकर अपना सम्मान प्रकट किया। मुनि विधारण्य ने कांची में पुनः दर्शन का विश्वास प्रकट कर स्वामी को प्रणाम निवेदित किया। राजा ने विनत भाव से चरण स्पर्श किये। राजमंत्री जो कबीर के सत्संगी हो गये थे, राजा के निर्देश पर स्वामी जी

की सुचारु व्यवस्था तथा निरापद सुरक्षा के लिए कांची तक के लिए साथ हो लिए। श्रद्धालु भारी हृदय से विदाकर वापस लौटना नहीं चाहते हुए भी, परिस्थितिवश लौटे। यात्रा की लम्बी दूरी के कारण स्वामी जी जहाँ भी विश्राम करते वहाँ एक बड़ी रामभावधारा बहती दीखने लगती।

विष्णु कांची में रंगनाथ जी के मंदिर के पुजारियों में ब्राह्मणिक श्रेष्ठता बोध भर्त्सना की सीमा तक घर किये हुए था। वे वर्ण विचार प्रधान भेद बुद्धि जी रहे थे। जातिवादी हेय बुद्धि एक ही समाज तक को ऊंच नीच के भेदों में बाँटे हुई थी। श्रेष्ठता के अहंकार का राक्षस देश की एकात्मकता को नृशंसता के स्तर तक खा रहा था। एक अदने से व्यक्ति ने संत कबीर को जुलाहा तथा संत रैदास को चमार कह अपमानित एवं लांछित किया तथा उनके मंदिर प्रवेश पर आपत्ति की। स्वामी जी ने उस अबोध को आध्यात्मिक आधार पर समझाने की बहुत चेष्टा की। यहां तक कहा- 'हमारी संस्कृति को कुशा जैसे तृण तथा गौ जैसे पशु तक की श्रद्धा सहित पूजा करने वाली है। फिर व्यक्ति व्यक्ति के बीच यह भेद की दीवार कैसी। कट्टरवादियों ने स्वामी जी एवं संतो के स्वागत सम्मान की सारी तैयारियों को उलट कर रख दिया। विरोधात्मक आन्दोलन खड़ा कर दिया। वातावरण इतना विषाक्त तथा प्रदूषित कर दिया कि स्वामी जी के भक्त तक न तो उनके दर्शन कर सके न उन्हें सुन सके। वे दुबक कर एक ओर हो गये। अपने भाग्य को कोसने लगे। विषम स्थिति देख, स्वामी जी ने अपने ब्रह्मास्त्र शंख ध्वनि का प्रयोग किया। उस आध्यात्मिक ध्वनि से सर्वत्र सम्मोहन की स्थिति व्याप्त हो गई। स्वामी जी वहां से अन्तर्धान हो, प्रभु रंगनाथ के गर्भगृह में प्रकट हुए। प्रभु रंगनाथ ने प्रसन्न होकर अपने हाथ बढ़ा, अपनी ओर खींच, गले लगा लिया। गर्भ गृह में जो पुजारी भगवान् की पूजा अर्चा में व्यस्त थे, यह दिव्य दृश्य देख चकित एवं स्तम्भित हो गये। अपनी त्रुटि पर पछता, स्वामी जी के चरणों में गिर, क्षमा की प्रार्थना करने लगे। क्षण भर में यह समाचार पूरी कांची में फैल गया। कांची की धर्म प्राण जनता, मंदिर परिसर में भीड़ की भीड़ दौड़ी आकर एकत्र हो गई। स्वामी जी के दर्शन को लालायित हो उठी। तब स्वामी जी ने गर्भ गृह से आकर उपस्थित जन समूह को अपने दर्शन दिये। अपना सारगर्भित उपदेश देते हुए कहा 'सारी सृष्टि एक उसी ईश्वर की एक से अनेक होने की इच्छा का परिणाम है। सारी सृष्टि जब ईशावास्यमयी है फिर उस अद्वैत से द्वैत कैसा? गुण ही गुणों में वर्त रहे हैं। फिर कर्म के कर्त्ता होने का अभिमान थोथा नही है? वही अपनी योजनानुसार, किससे क्या काम लेना है, ले रहा है। ईश भाव से दिया हुआ कोई भी काम न तो छोटा होता है न बड़ा। न ऊंचा

होता है न नीचा। मनुष्य मनुष्य से बीच घृणा तो अविद्या, अनीति तथा अहंकार का परिणाम है। यह सही नहीं है। वह परम प्रभु तो प्रेम का भूखा है। श्रद्धा भक्ति का आकांक्षी है। श्रद्धा भक्ति से किया हुआ कोई भी काम उसी का काम है। फिर कौन स्पृश्य है और कौन अस्पृश्य। यह सोच ही दुर्भावनापूर्ण है। 'जात-पात पूछे ना कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' आप हरि भक्त, हरिमंदिर में हरि भक्तों को प्रवेश से रोक रहे हैं। यह भगवान् रंगनाथ का आदेश नहीं है। यह तो अहंकार का परिणाम है। अहंकार ईश्वर के मिलन पथ की सबसे बड़ी बाधा है। आज देश धर्म जिस संकट में फंसा है, उस स्थिति में अहंकार जनित यह द्वेष, यह विभेद, समाज पर आघात को निमंत्रण देना है। हमें इस समय पूरे समाज को एकता के सूत्र में बांध, समन्वय के मंच पर खड़ा करना है। समरसता का सिंहनाद गुंजाना है। सभी को एक जुट हो, सुदृढ़ शक्ति के रूप में खड़ा होना है। तभी देश धर्म तथा यह समाज विधर्मी आतंक का सामना कर सकता है। तभी मंदिर सुरक्षित रहेंगे तभी आपकी यह पूजा अर्चना सुरक्षित रहेगी। तभी गौ ब्राह्मण सुरक्षित रहेंगे। स्वामी जी ने जैसे ही अपना प्रवचन समाप्त किया, उपस्थित जन ही, जय हो जय हो का घोष गुंजाते हुए, रुकी हुई जमात को दर्शन के लिए भीतर ले गये। सब आत्म साक्षात्कारी पहुंचे हुए सन्त थे। वहाँ न कोई भेदभाव था न कोई द्वैत ही था। सहज भाव से सब मंदिर के दर्शन कर लौट आये।

जमात का पड़ाव विष्णुकांची के उत्तर भाग में स्थित शून्य में था। वहीं पास ही मूलप्रभ नामक विद्याधर प्रवेश का आवास था। स्वामी जी के चमत्कार की कथा से वह सर्वाधिक प्रभावित हुआ। उसने पूरी जमात की सेवा का दायित्व कंधों पर ले लिया। स्वादिष्ट पायस बनकर स्वामी जी के लिए आ गया। दूसरे दिन मुनि विद्यारण्य स्वामी तथा राजमंत्री वहां पहुंच गये। कल की घटना सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। स्वामी जी से राजमंत्री ने इस कष्ट के लिए क्षमा मांगी। तब स्वामी जी ने कहा- 'अप्रिय बातें योग पाकर हो ही जाती हैं। दैव की प्रेरणा और ईश्वर की आज्ञा से होती हैं, इन्हें कोई टाल नहीं सकता। इसपर मुनि विद्यारण्य स्वामी ने प्रश्न किया- ऐसे कठिन समय में क्या वह परम सूत्रधार भी कोई व्यवस्था करेगा? इसपर स्वामी जी ने कहा- हाँ, 'परित्राणाय साधूनाम वाला गीता का श्लोक इसका प्रमाण हैं धर्म रक्षा का पथ वही भगवान् अवश्य प्रशस्त करेगा। स्वामी जी के इस कथन से मुनि विद्यारण्य संतुष्ट हुए। तभी स्वामी जी ने उन्हें एक पुष्प देते हुए कहा- 'इसके पल्लवों पर एकाग्रता से देखिए। आपको अपना व्यक्तित्व स्पष्ट दिखेगा। उस दिव्य दर्शायक पुष्प दर्पण में अपना भविष्य देख मुनि विद्यारण्य चकित हो, प्रसन्नता से स्वामी के चरण पकड़ लिए। इस बीच

स्थान-स्थान पर स्वामी जी तथा उनके शिष्यों द्वारा सत्संग-प्रवचन चलता रहा।

कांची से विदा लेकर स्वामी जी की धर्म-यात्रा गिरिनार पर्वत पर पहुंच गई। वहाँ पर्वत पर स्थित शैव सन्तों की समाधियों के स्वामित्व को लेकर जूनागढ़ के नबाब ने जैनियों एवं शैवों का आपस में लड़ा रखा था। नबाव ने पुलिस के सहयोग से समाधियों पर जैनियों का कब्जा करवा दिया था। स्वामीजी इस विवाद में नहीं उलझ ऊपर स्थित सीधे माता मंदिर पर चले गये। वहां से दत्तात्रेय के पद चिह्नों के दर्शनार्थ सुदूर पहाड़ी पर भी गये।

वहाँ से सोमनाथ होकर जमात सीधी द्वारिका पहुंची। द्वारिका वासियों ने स्वामी जी का हृदय से स्वागत किया। द्वारिका में जमात ने द्वारिकाधीश के दर्शन किये। भेंट द्वारिका गये। गोमती स्नान किया। समुद्र की उछालों का आनंद लिया। संत पीपा की सदृधर्मिणी सीता तो द्वारिकाधीश के दर्शनों से इतनी प्रभावित हुई कि उसने स्वामी जी से साक्षात् भगवान् कृष्ण से मिलवाने का अनुरोध किया। संत पीपा भी साथ थे। तब स्वामी ने कहा- 'कृष्ण के साक्षात् दर्शन ही करने हैं तो दोनों समुद्र में कूद जाओ। पीपा के लिए तो गुरुवचन पत्थर की लकीर था। अविश्वास का कोई कारण ही नही था। वे दोनों पति पत्नी समुद्र में धम्म से जा कूदे। भगवान् कृष्ण ने उन्हें संभाल लिया। रुक्मिणीजी ने महल में ले जा कर दम्पत्ति का बड़ा सत्कार किया। गद्‌गद् हृदय सन्त पीपा ने इतना ही कहा- 'भगवत् प्रेम के समुद्र में डूबा हुआ प्राणी भवोदधि में कभी नहीं डूबता, यह सत्य आज जान लिया। तभी धीमे से पत्नी सीता ने सन्त पीपा से कहा- 'बाहर लोग कैसे विश्वास करेंगे कि हम भगवान् कृष्ण के साक्षात् दर्शन करके आये हैं।' कृष्ण इस कथन को सुन रहे थे। आचार्य समझ उन्होंने उनके शंख चक्र की छाप लगादी। लौटते समय पीपा जी और सीता ने झुक कर कृष्ण रुक्मिणी के चरण स्पर्श किये और कहा 'हमने आपको बड़ा कष्ट दिया। भगवान् ने गले लगा, उन्हें वापस भूमि पर भेज दिया। जमात तो उनकी प्रतीक्षा कर ही रही थी। पीपा जी ने आते ही गुरुदेव के चरण पकड़ लिये। कहा- 'आपने हमे भगवान् कृष्ण के दर्शन करवा दिये। मूर्तियाँ तो देखते ही रहते थे। जीवन सफल हो गया। तभी एक सन्त ने कह ही दिया क्या प्रमाण है कि आपने कृष्ण के साक्षात् दर्शन किये हैं। तब उन्होने शंख चक्र वाली छाप बता, आश्वस्त कर दिया।

स्वामी जी सात दिन तक द्वारिका में ठहरे। स्वामी रामानंद ने राम और कृष्ण की एकता बताते हुए अपने प्रवचनों में कृष्ण की षोड्श कला युक्त लीलाओं का बड़े ही भावपूर्ण शब्दों में आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विश्लेषण किया। द्वारिकावासी जिसे

सुन झूम उठे। स्वामी जी ने सन्त पीपा से कहा- गागरोन लौटना चाहो तो लौट सकते हो। तुम्हें आत्म साक्षात्कार हो ही चुका है। सीता ने भी दक्षिण यात्रा पूरी कर ली है। सन्त पीपा 'जैसी गुरुदेव की आज्ञा' कह कर वहाँ से सीधे गागरोन लौट आये। जमात वहां से आबू पर्वत पर भक्तहरि की गुफा दिखाते हुए पुष्कर सरोवर में स्नान करते हुए रासेश्वर के धाम वृन्दावन आ गई। वृन्दावन में स्वामी जी ने गोप बालकों में श्री कृष्ण की भावना कर प्रतिदिन वृहद् भंडारा करते हुए जिमाया। एक दिन एक बालिका भंडारे में आ गई। स्वामीजी ने उस बालिका के अद्वितीय रूप, माधुर्यमयी वाणी तथा अप्रतिम सरलता में रासेश्वरी राधा के दर्शन किये। उस अलौकिक रूप को देखकर स्वामी रामानंद भाव विह्वल हो गये। उन्होंने उस बालिका को अपने लिए आयी खीर अपने हाथों से खिलाई। दूसरे दिन स्वामी जी ने वृन्दावन की समस्त बालिकाओं का पृथक् से भंडारा किया। इससे पूरे ब्रज के घर घर में स्वामी रामानन्द की भक्ति भावना की चर्चा गूंजने लगी।

वृन्दावन से जमात के साथ स्वामी जी हरिद्वार पहुंचे। हरिद्वार में वह पूरी मंडली के साथ गंगा आरती में सम्मिलित हुए। वहाँ एक बड़ी घटना घटी। स्वामी के तम्बू के पास आकर बड़े डील डौल वाले दो संस्कृत भाषी तपस्वी भिक्षा पात्र दिखाते हुए भीख मांगने लगे। ब्रह्मचारियों ने उन्हें भिक्षा देकर विदा करना चाहा, पर वे हट नहीं रहे थे। वे तीन पेड़ के फल, पांच अन्न के दाने तथा सात मृग-मद मांग रहे थे। उनकी आंखे बड़ी-बड़ी थीं। कभी खुलती कभी मुंदती थीं। उन्होंने अपना दण्ड आकाश में घुमा भयभीत करना प्रारम्भ कर दिया। तभी स्वामी जी ने अपने तम्बू में से शंखध्वनि की। उस ध्वनि को सुन वे दोनों तुरीया अवस्था में चले गये। परन्तु उनके साथ के दण्ड छूट नहीं रहे थे। वरिष्ठ पट्ट शिष्य अनन्तानंद तथा अन्य उन्हें पहचानने लगे थे, तभी तम्बू में से स्वयं स्वामी ने आ उन्हें जगाते हुए कहा- 'स्वागतम् करुणा निधौ।' आंखें खोल जैसे ही उन्होंने स्वामी जी को देखा, आनंद उदधि में डूब गये। स्वामी जी ने आगे बढ़कर उन्हें गले लगा लिया। स्वामी जी ने मानस पूजा करते हुए योग तथा ध्यान रूपी तीनों पेड़ों के फल, पंच प्राण रस रूपी पांच अन्न के दाने तथा सप्त भूमि ज्ञान रूपी सातों मृगमद से उनका भिक्षा पात्र भर दिया। वे निहाल होकर बोले- 'आप हमारे दर्शन को बद्रिकाश्रम जा रहे थे। लम्बी कष्टप्रद यात्रा से आपको बचाने के भाव से हम नर नारायण स्वयं यहां आ गये हैं।' यह कह वे दोनों अदृश्य हो गये।

हरिद्वार से धर्म यात्रा वापस वृन्दावन आ गई। स्वामी जी वृन्दावन की कृष्ण भूमि में इस बार अकेली राधा जी को नहीं, रासेश्वरी को रास रचयिता के साथ भोजन करते

हुए देखना चाहते थे। अपनी प्यासी रह गई कामना की, आप्तकाम स्वामी जी वहाँ पूर्ति देखना चाहते थे। उन्हें लगा कि वृन्दा भूमि वह दिव्य भूमि है जिसे कण-कण में छिपा माखन चोर स्थूल भौतिकता से उलझे मन को आध्यात्मिकता की ओर अनायास खींच रहा है। दूसरे दिन स्वामी जी ने वृन्दावन के कुमारावस्था प्राप्त सभी लड़कों को भोजन कराया। तभी एक सुन्दर बालिका यमुना जल से भरा कलश सिर पर उठाये आई। ब्रह्मचारी को कलश देकर उसने कहा- 'लड़कों को भोजन कराया जा रहा है। फिर लड़कियों ने क्या विगाड़ा है। वे कहां से आईं। यह बात स्वामी जी तक पहुंची तो तीसरे दिन स्वामी जी ने लड़कों व लड़कियों दोनों का सम्मिलित भंडारा किया। जब लड़के और लड़कियां अलग अलग पंक्तियों में बैठे षट्रस भोजन पा रहे थे, तभी वहाँ गौर वर्णा कुमारिका तथा श्यामघन सुकुमार लड़का साथ साथ आये। अपनी अपनी पंक्तियों में भोजन करने के बाद वे दोनों स्वामी जी, जो घूम-घूम कर बाल विनोद का आनंद ले रहे थे, के निकट आकर बोले, बाबा हमें पायस नहीं खिलावोगे? स्वामी जी समझ गये, ये सामान्य नहीं साक्षात् राधा कृष्ण है, तब बोले, 'ठहरो, ला रहा हूँ।'' वे गति से गये और पायस लाकर साथ-साथ विठा कर उन्हें खिलाया। स्वामी जी उस आनंद को देख मन ही मन भाव विभोर हो रहे थे। पायस ग्रहण कर वे दोनों वहीं अदृश्य हो गये। स्वामी जी का वृन्दावन लौटकर आने का महाभाव पूरा हो गया।

वृन्दावन से धर्म यात्रा नैमिषारण्य होती हुई चित्रकूट पहुंची। जमात ने अपना डेरा पवित्र मंदाकिनी तथा सिद्धस्थान कामद गिरि के बीच डाला। स्वामी जी को चित्रकूट बहुत प्रिय था। उन्होंने अपना चातुर्मास वहीं किया। स्वामी जी ने वहाँ कामदगिरि की परिक्रमा की। इसी अवधि में चरणांक तीर्थ में अचानक स्वामी जी अचिंत्य दशा को प्राप्त हो गये। दिव्य संगीत ने उन्हें जगा कर वास्तविक दशा में ला दिया। सत्संग में चित्रकूट के ऋषि मुनियों तथा पुजारियों के अतिरिक्त भारी संख्या में किरात स्त्री पुरुष आते थे। चातुर्मास में स्वामी जी ने अपनी तलस्पर्शी विद्वता तथा मनमोहिनी वाणी से ऐसा रस बरसाया कि चित्रकूट एक बार फिर राममय हो गया। वहां से स्वामी जी चलकर एक रात प्रयाग में ठहर, सीधे काशी आ गये। धर्म यात्रा में सभी पूरी तरह थक भी चुके थे। काशी पहुँचने पर विश्वनाथ, कालभैरव, विंदुमाधव आदि देवों की पूजा अर्चना कर पुनः श्रीमठ के सत्संग भवन में प्रतिदिन प्रवचलन करने लगे।

●

दश

जैसे ही स्वामी जी के तीर्थ यात्रा से लौट आने की शुभ सूचना काशी पहुंची, काशी के हर्ष का पारावार नहीं रहा। सभी धर्मावलम्बी आबाल वृद्ध नर नारी श्री मठ पर पूर्व में ही भारी संख्या में आकर उपस्थित हो गये। स्वामी रामानंद की जय के तुमुल घोष से गंगा तट गूंज उठा। जैसे ही पीनस से स्वामी जी उतरे, महिलाओं ने स्वामी जी की आरती उतारी। आरती समाप्त होते ही चरण स्पर्श करने क़ी होड़ लग गई। योगानंद, जो रामेश्वरम् से काशी लौट आये थे, बड़ी कठिनाई से भीड़ के बीच में से मार्ग बना, स्वामी जी को मठ में ले गये। आचार्य अनन्तानंद, कबीरदास, रैदास पहले ही मठ में पहुंच गये थे। उन्होंने सत्संग भवन में स्वामी जी के बैठने के लिए अच्छा मंच बना दिया था। स्वामी जी जैसे ही मंच पर आसीन हुए, एक बार फिर जय निनाद से मठ गूंज उठा। अभूतपूर्व दृश्य था। एक ओर महिलाएं बैठीं, दूसरी ओर पुरुष बैठे। दिग्विजयी धर्म यात्रा का वृत्त सुनने को व्यग्र थे। आचार्य अनन्तानंद ने पहले अभूतपूर्व अभिनंदन के लिए काशी की जनता का आभार व्यक्त किया। उन्होंने स्थान-स्थान के अनेक दिव्यता प्रदर्शित करते प्रसंग सुना श्रद्धालु श्रोताओं को चकित एवं हर्षित कर दिया। रंगनाथ मंदिर तथा वृन्दावन के प्रसंगों ने जहां भक्ति की भागीरथी बहादी, वही रामेश्वरम् तथा हरिद्वार की घटनाओं ने स्वामी जी की दिव्यता का एक नया अध्याय लिख दिया। उस समय करतल ध्वनि के साथ जय जयकार ने उत्साह का अविस्मरणीय प्रभावशाली दृश्य उपस्थित कर दिया। तभी आचार्य अनन्तानंद ने हाथ ऊंचा कर, करतल से सभी को शांत होने का अनुरोध करते हुए, परमपूजनीय स्वामी जी को अनेकानेक विशेषणों से अलंकृत करते हुए, अतीव विनम्र शब्दावली में आशीर्वाद प्रदान करने हेतु निवेदन किया। स्वामी जी ने जैसे ही शंखध्वनि की, सर्वत्र सन्नाटा पसर गया। सभी की दृष्टि स्वामी जी के गौरवान्वित श्री मुख पर जा टिकी। उन्होंने अमृत वाणी से, सार रूप में अपने उद्‌बोधन से, सबको अभिभूत करते हुए कहा-

'भारत सदैव से ही धर्म प्राण देश रहा है। सृष्टि के आदि से ही इसने मानव

के कल्याण के भाव से चिरन्तन सत्य तथा शाश्वत सुख की खोज की है। इसने ऐसी खोज के लिए सभी को पूरी स्वतंत्रता दी है। जब जब भी मानवता संकटग्रस्त हुई है, किसी न किसी महापुरुष ने अवतार ले, उसका उद्धार कर, धर्म की पुनर्संस्थापना की है। पीड़ा यही रही, कि जनता ने उस परमात्मा को बिसरा अवतरित इन महापुरुषों की प्रतिमाएँ गढ़, उसका ही पूजन अर्चन प्रारम्भ कर अपने-अपने सम्प्रदाय खड़े कर लिए। सम्प्रदाय बनाना भी बुरा नहीं था, पर अपनी ही श्रेष्ठता का दुरभिमान ले, पारस्परिक कटुता, द्वेषता उपजाना तथा घृणा का भाव ले कर जीना, बुरा ही नहीं, अपराध की सीमा तक पहुंच गया है। जहाँ समरसता की सरिता बहनी चाहिये थी, वहाँ कटुता का महासमुद्र उछाले मार रहा है। हर सम्प्रदाय अपने को ही श्रेष्ठ मान द्वेष जीने लगा है मनुष्य, मनुष्य से घृणा करने लगा है। सम्प्रदायों की आपसी कलह ने आज देश धर्म एवं समाज के सम्मुख एक बड़ा संकट खड़ा कर दिया है। प्रतिदिन लड़ाई झगड़े हो रहे हैं। रक्तपात हो रहा है। एक दूसरे के प्रतीक चिह्नों, मान बिंदुओं पर चोट पहुंचाई जा रही है। उनके आदर्शों को नहीं समझ, उनकी खिल्ली उड़ाई जा रही है। अपने सम्प्रदाय के आदर्शों की श्रेष्ठता का दुरभिमान इतना तीव्र हो गया है कि शांति नाम की कोई चीज ही दिखाई नहीं देती है। दक्षिण में यह कट्टरता सर्वाधिक है। परन्तु दक्षिण के मंदिरों के देवताओं ने इस शरीर को अपने हाथों से खींच कर गले लगाया है। वृन्दावन में तो गोप गोपिका वेश में स्वयं रासेश्वर एवं रासेश्वरी ने इन हाथों से प्रसाद ग्रहण किया है। ईश्वर के यहाँ कोई भेद नहीं है। उसकी दृष्टि में सब समान हैं। भक्ति ही बड़ी है। जिसने भी उसे पूरे भक्ति भाव से स्मरण किया है, वह उसका हुआ है।

इस शरीर ने धर्म यात्रा के ब्याज से सर्वत्र मानव एकता, समदर्शिता तथा उसे एकमेव परमात्मा की ही भक्ति का प्रचार प्रसार किया है। साम्प्रदायिक कट्टरता मिटाई है। मंदिरों के द्वार सभी के लिए खुलवाये हैं। छुआछूत, ऊँच नीच, जाति वर्णादि की श्रेष्ठता का अभिमान हटा, हरि को भजै सो हरि का होई' वाला मंत्र सबको दिया है। हम सबकी धर्म में रति तथा परमार्थ में गति होनी चाहिए। इसी में सभी का कल्याण है, सभी का हित है। आपने मेरे धर्म यात्रा से लौट आने पर यह जो भाव भींना स्वागत किया है, उसके लिए परम प्रभु आपको अनन्त सुख का लाभ प्रदान करें।

तभी आचार्य अनन्तानंद ने सूचना दी कि काशी वासियों ने स्वामी जी के सम्मान में तीन दिन का भंडारा बिना किसी भेद भाव के आयोजित किया है। आप सब उसमें आमंत्रित हैं। तीनों दिन स्वामी जी के अमृत वचनों तथा शंखध्वनि का आनन्द बराबर मिलता रहेगा।

भंडारे के दिनों में ही स्वामी जी को विजयनगर के राजमान्य वेद विद्वान मुनि विद्यारण्य स्वामी का पत्र मिला। मुनि विद्यारण्य ने उसमें लिखा था कि आपकी प्रेरणा से वेद भाष्य तो खिलना प्रारम्भ कर दिया है, पर पग पग पर गूढ़ार्थ असमंजस में डाल रहा है। भाष्यकार के रूप में अग्रज का नाम देना तय कर लिया है। यश लोभ को आदेशानुसार संवरण किया है, तो भी वेद ऋचाओं का भाष्य ठीक से नही हो पा रहा है। शायद वेद के ईश्वरीय ज्ञान का भाष्य करने के लिए ईश्वरीय बुद्धि आवश्यक है। कृपया वह ईश्वरीय बुद्धि प्रदान करें। पत्र पढ़ कर स्वामी जी मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। उत्तर भिजवाते हुए उन्होंने विद्यारण्य को लिखा-

तुम्हारे कार्य में बाधाएँ आ रही हैं, उसके पीछे विद्या की देवी सरस्वती के प्रति तुम्हारा उपेक्षा भाव ही कारण है। तुमने पत्र लिखकर पूछा, यह अवश्य निरहंकारिता प्रकट करता है। अन्यथा अहंकार बुद्धि तत्त्व के तल तक पहुँचने नहीं देती। अहंकार ईश्वर बुद्धि जनमने ही नहीं देता। आस्तिकता का भाव भी मन में होना चाहिए। जब तक मन में आस्तिकता का भाव नहीं होना, न तो ईश्वरीय बुद्धि जन्मेगी न तुम वेद भाष्य के साथ न्याय कर सकोगे। अर्थ के भीतर छिपे अध्यात्म तक नहीं पहुँच सकोगे। राम-नाम रूपी शब्द सुरति योग करते रहें। यही आपके भीतर ईश्वरीय बुद्धि जगा देगा। आप द्वन्द्वातीत अवस्था को प्राप्त हो जायेंगे, विश्वास रखें।

प्रभु और प्रकृति में द्वन्द्व नहीं हैं। प्रकृति की रचना प्रभु की ही महिमा है। इसी महिमा के द्वारा प्रभु अनन्त रूप उत्पन्न करना चाहता है। देहों में पृथक्-पृथक् दिखने वाली आत्मा एक ही है प्रकृति के वैभव का उपभोग त्याग पर ही अवलम्बित है। जगत का नहीं, उस ईहा का त्याग जो सच्चिदानंद की वैकारिक विकृति है, आवश्यक है। अपनी अहन्ता का त्याग कर अद्वैत का अनुभव करना ही अमृतत्व का उपभोग है। 'एक' और 'बहु' दोनों सत्य हैं। दोनों तत्त्वतः एक ही हैं। भव एक है विभव अनेक हैं। दृश्यमान सारा विभव, वह एक अद्वितीय भव ही हैं वह एक ही अपनी महिमा में अवस्थित होकर रमण रहा है। जब यह ज्ञान आपके भीतर उत्पन्न हो सब कुछ एक अद्वितीय ही भासने लगे, तब समझिये, आप में ईश्वरीय बुद्धि का आविर्भाव हुआ है। रसज्ञ ही रस भोक्ता हो सकता है। ब्रह्मविद् ही अमृतत्व को प्राप्त करता है। सत्य और त्यक् वही एक विभु है। जब इस रहस्य को साधक समझ लेता है, तब वह ब्रह्मविद् निश्चय ही ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। इसी अध्यात्म रहस्य की प्रत्यक्ष अनुभूति होते ही देव दुर्लभ ईश्वरीय बुद्धि स्वयमेव जग आती है। तब वेद रहस्य अपने आप करतल गत होता चला जायेगा।

लिखते रहिये। आपका लिखा वेद भाष्य अवश्य प्रामाणिक माना जायेगा। पत्र वाहक के साथ यह उत्तर स्वामी जी ने मुनि विद्यारण्य जी को भिजवा दिया।

एक ही पंक्ति में भोजन करते देख स्वामी जी ने कहा 'भगवान् को सहस्त्र मुख से भोजन करता देख, हृदय भाव बिह्वल है, कंठ गद्गद है। इस आनंद को भूल पाना सचमुच बड़ा कठिन है। आपने कृपा पूर्वक पधार भंडारे के साथ मुझे भी कृतार्थ किया है। मेरे आनंद की कोई सीमा नहीं है।'

तभी निकट ही बैठे एक वरिष्ठ संत ने कहा 'ऐसा कौन होगा जो आध्यात्मिक मंदिर में आकर भी मन में विभेद का काला सर्प पालेगा। इस अद्वैत की गंगा धारा में नहाकर कौन पवित्र नहीं हुआ है?

तभी स्वामी जी ने कहा- 'अध्यात्म का बोध क्षुद्र संकुचितताओं के बंधन काट देता है। आज भी सामाजिक रूढ़ियों की स्थिति अत्यधिक भयावह, अत्यधिक सोचनीय तथा अत्यधिक दुखप्रद बनी हुई है। इस स्थिति को मिटाने में यह संत समाज ही समर्थ है। संत समाज को आगे आकर इस गुरुत्तर दायित्व को संभालना होगा।'

तभी भट्टारक जी जो प्रसाद पाकर हाथ प्रक्षालित कर चुके थे, खड़े होकर कहने लगे- 'सारा जीवन भगवत् चरणों से विमुख रह कर बिता दिया। आज इस महाप्रसाद को ग्रहण कर आत्मा तृप्त है। नये भावोदय ने हृदय के सारे संकुचित विचारों को ध्वस्त कर, व्यापक विशाल सोच के साथ जोड़ दिया है। भगवन् यदि आपकी यह कृपा नहीं होती तो अंधकार में भटकी इन आंखों में ज्ञानांजन की शलाका कौन आंजता। आप मुझे आज्ञा दे, शक्ति दे, एकता के इस महायज्ञ में मैं अपनी प्रथम आहुति देने को तत्पर हूँ।'

भोजनोपरांत सभी आमंत्रित अतिथि संत जैसे ही स्वामी जी को घेर कर खड़े हुए, झिणु भगत ने निकट पहुँचकर पूछा-, 'स्वामी जी आनंद का मूल क्या है?

'अंहकार का अभाव ही आनंद का मूल है। यहाँ कर्म करते हुए अहंकार का अभाव होता है, वहीं परमात्मा का निवास होता है।' इसपर झिणु भगत ने फिर पूछा 'स्वामी जी अहंकार का अभाव कैसे हो, तब स्वामी जी ने मुस्कान बिखेरते हुए कहा- 'अभी एक पंक्ति में बैठ सहभोज करते आपने अंहकार के अभाव का दर्शन नहीं किया।' इस उत्तर को सुनकर सभी उपस्थित संत वृन्द ने 'धन्य हो धन्य हो' कहते हुए, झिणु भगत की ओर उपहासात्मक दृष्टि से देखा। झिणु भगत मौन हो गया। तभी स्वामी जी ने अपने हाथ के शंख को अधरों से लगा, मधुर शंखध्वनि की। सभी आनंद

की आध्यात्मिक भावभूमि में पहुँच गये। स्वामी जी राम-राम जयसिया राम की शब्द ध्वनि करते हुए अपनी गुहा में चले गये। आचार्य अनन्तानंद के साथ उपस्थित सभी शिष्यों ने आगत अतिथि संतों का अभिवादन करते हुए उन्हें सादर विदा किया। सभी संत उस आनंद की प्रशंसा करते हुए अपने अपने आश्रम को बिदा हुए।

त्रिदिवसीय भण्डारे के बाद एक दिन संध्या के समय काशी का एक विद्वान प्रतिष्ठा प्राप्त लोकप्रिय कवि सुधीगण काव्य में झूमता हुआ आया। वह स्वामी जी के सम्मान में एक प्रशस्ति रच कर लाया था। कविता उसी तरह सर्जक के मन में अहम् जनित स्वाभिमान की सृष्टि करती है, जिस प्रकार किसी धार्मिक के मन में सत्पथ से कमाया धन। कवित्त मद इतना प्रबल होता है कि वह अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझता। अपना सृजन जहाँ आंतरिक तृप्ति का कारण बनता है, वहीं लोकप्रतिष्ठा का भी। उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। आश्रम में पैर धरते ही स्वामी जी की सिद्धता, दिव्यता तथा विद्वता की कल्पना भर से उसका काव्य मद सहसा विगलित हो गया। आश्रम में प्रवेश कर उसने अति विनीत भाव से स्वामी जी के दर्शन की इच्छा प्रकट की। आचार्य अनंतानंद ने स्वामी जी तक सूचना पहुँचाई। स्वामी जी कृपा पूर्वक परदे से बाहर आ गये। कवि सुधीगण ने आते ही चरण स्पर्श किये। स्वामी जी ने उसे गले से लगाया तथा बाहर लगे काष्ठासन पर आदर से अपने पास बिठाया। स्वामी जी के मन में प्रारम्भ से ही कवियों के प्रति बड़ा आत्मीय भाव रहा। वे मानते थे कि कवि ही अपनी शब्द शक्ति के माध्यम से सनातन संस्कृति को भावी पीढ़ियों तक पहुँचाता है। वह एक विशुद्ध संस्कृति कर्मी है। योगी का ध्यान तो शब्द पर होता है, परन्तु कवि की एकाग्रता शब्द से अधिक अर्थ पर केन्द्रित होती है। वह श्रेष्ठ का आलेखक, सत्य का उजागर कर्ता तथा शाश्वत ज्ञान का समर्थ संवाहक है। सुधीगण संस्कृत का कवि था। स्वामी जी संस्कृत प्रेमी थे ही। वे केवल लोक संग्रह के लिए ही लोकभाषा के व्यवहार पर बल देते थे। इसलिए भी सुधीगण के प्रति उनके मन में बडा आदर था। कवि भी दिव्य मूर्ति स्वामी जी का पहली बार दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझ रहा था। उसने बड़ी शिष्टता एवं विनम्रता के साथ गीर्वाण भाषा में कहा- 'स्वामी जी आपने अपनी तीर्थ यात्रा में जिस समन्वयी दृष्टि का परिचय दिया, उससे भारत की आध्यात्मिक दृष्टि पुष्ट हुई है। आपने सम्प्रदायों में बंटे अलग अलग ईश्वरों को एक किया है। आपने मंदिरों के द्वार सर्वजन सुलभ कराये हैं। इससे राष्ट्रभाव सुदृढ़ हुआ है।'

'कवि, आश्रम में लोग या तो मोक्ष कामना लेकर आते हैं या अपने रोगों से मुक्ति

पाने। मूलाधार से ऊपर उठ विज्ञानमय कोश तक भी उनकी सोच नहीं जाती। तुम्हारी संवेदना ने मुझे भावित किया है। मैं तुम्हारे भीतर देश धर्म की विघटित स्थिति के प्रति उपजी गहरी पीड़ा देख रहा हूँ। जो काम मैंने भारत यात्रा करके किया है, वह तुम शब्द के माध्यम से कर रहे हो। शब्द की शक्ति बड़ी प्रबल होती है।'

'गुरुदेव आपने तो सहज ही कवि धर्म का सुंदर विश्लेषण प्रस्तुत कर मेरा मार्गदर्शन कर दिया है। मैं तो एक अंकिचन शब्दोद्यान का माली भर हूँ। शब्दों की माला गूंथता रहता हूँ। आपकी संस्तुति में कुछ शब्दों का ग्रंथन किया है, आज्ञा हो तो प्रस्तुत करूँ।

'सरस्वती पुत्र, तुमने इतनी तो प्रशंसा कर दी। कुछ और शेष रह गया क्या।'

'स्वामी जी, भाव, छंद में बंध, गति लय ही नहीं, कर्णप्रिय, सांगीतिक सौन्दर्य भी धर लेता है।'

'ठीक ही कह रहे हो। संगीत स्वयं में ही एक ईश्वरीय वरदान है। संगीत से जुड़ काव्य प्रस्तुति की शोभा द्विगुणित हो जाती है। अच्छा कहा क्या लाये हो।'

कवि सुधीगण ने संस्कृत में लिखी अपनी कविता का डूबकर सस्वर पाठ किया। उसका संक्षेप में भावार्थ था- आप वस्तुतः जगत्गुरु हैं। आपका उपदेश शाश्वत सत्यों का उद्गाता है। मानवता का प्रस्थापक है। भारतीय अध्यात्म का सारभूत निचोड़ है। जिसे समाज भूल चुका है। आप ज्ञान के सूर्य हैं। आपके ज्ञान का प्रकाश भारतीयों के चिंतन में व्याप्त विभेदात्मक अंधकार को विदीर्ण करने में सक्षम है। आपके अमृत वचनों ने जनमन में ज्ञान की अग्नि प्रज्ज्वलित की है। सद्भावों की सुधाकरी चाँदनी का विस्तार किया है। आप शाश्वत ज्ञान क़े पुरोधा हैं तथा सदा तुर्यावस्था में निवास करते हैं। आप जैसा अद्वैत भावापन्न संत ही भेदों के बीच अभेद का शंखनाद कर सकता है। मानव-मानव के बीच पनप रही घृणा को मिटा, एकात्मक समाज का निर्माण कर सकता है। आप धन्य हैं। आपकी महानता को मैं प्रणाम करता हूँ।

जैसे ही कविता समाप्त हुई, उपस्थित सभी शिष्यों, भक्तों तथा श्रद्धालुओं ने : जो वहाँ उपस्थित हुए थे, करतल ध्वनि से कवि एवं काव्य का अभिनंदन किया। तभी संकेत पर पट्ट शिष्य अनंतानंद ने गुहा के भीतर से ला नारियल, पीताम्बर तथा मेवों की थैली स्वामी जी को दी। स्वामी जी ने जैसे ही वह भेंट देनी चाही, श्रद्धा सहित कवि ने उठकर उस सम्मान को विनम्रता से ग्रहण किया तथा गृहीत प्रसाद के साथ ही उसने स्वामी जी के चरणों में झुककर प्रणाम किया। स्वामी जी ने उसके सिर पर

हाथ रख कर कहा तुम काशी के गौरव हो। तुम्हें पा सरस्वती स्वयं धन्य हुई हैं। अपने शब्दार्थ का अमृत फल समाज को बांटते रहो। गद्‌गद् भाव से पुनः चरण स्पर्श कर कवि ने जैसे ही विदा ली अनंतानंद तथा शिष्य वर्ग मठ के द्वार तक उसे सादर पहुंचाने गये।

गंगा पर्व पर श्रीमठ में संतों के भण्डारे का वृहद् आयोजन किया गया था। भण्डारे में सभी आश्रमों के संतों, महंतो तथा आचार्यों को विधिवत् सूचना भेज आमंत्रित किया गया था। स्वामी जी के संकेत पर पट्ट शिष्य अनंतानंद के निर्देशन में कबीर, रैदास, योगानंद आदि सिद्ध शिष्य प्रांगण में अतिथियों के बैठने के लिए पातिये बिछा द्वार पर जा आगवानी हेतु खड़े हो गये। नये शिष्यों ने जल व्यवस्था, भोजन व्यवस्था तथा द्वार पर पाद प्रक्षालन की व्यवस्था पहले से ही संभाल रखी थी। जैसे ही आमंत्रित सन्त विरक्त गृहस्थ विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य तथा सिद्ध पातियों पर बैठ भोजन करने लगे स्वामी जी ने गुहा से बाहर आ प्रसन्न मुद्रा में सभी का अभिवादन किया। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के साधु संतों को एक ही पंक्ति में भोजन करते देख स्वामी जी ने कहा- 'भगवान् को सहस्र मुख से भोजन करता देख, हृदय भाव विह्वल है, कंठ गद्‌गद है। इस आनंद को भूल पाना सचमुच बड़ा कठिन है। आपने कृपा पूर्वक पधार भंडारे के साथ मुझे भी कृतार्थ किया है। मेरे आनंद की कोई सीमा नहीं है।

स्वामी रामानंद के दिव्यत्व की चर्चा हर सम्प्रदाय में हर आश्रम में तथा सिद्ध क्षेत्र में होने लगी। सभी में दर्शन की बलवती उत्कंठा जगने लगी। एक के बाद एक संत मण्डली आने लगी। बड़े-बड़े महात्मा, फकीर, योगी, यति तो और भी अधिकता से आने लगे। स्वामी रामानंद की साधना में नाम जप ध्यान साधना तथा प्रेमानुभूति की तीव्रता का सम्मिलन था। एक अभिनव अध्यात्म दर्शन स्वामी रामानंद ने दिया। सिद्धि का सहजतम मोक्ष मार्ग स्वामी जी ने दिखाया, जिसमें न तो योगवादी खांडे की धार पर चलना था, न घर बार छोड़ हिमालय की कन्दरा में जाना था। विरक्त भाव से उस एकमेव अद्वितीय के प्रति नवोदित दुल्हनियाँ की सी मिलन अभिलाषा तथा विरहजनित पीड़ा लिये अनवरत उठते बैठते, खाते पीते, श्वास पर श्वास के साथ ढाई आखर वाला छोटा सा राम-नाम लेते रहना भर था। स्वामी रामानंद ने लोक संग्रह के भाव से समाज को संगठित कर एक सूत्र में बांधने की लालसा से तथा धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के अभिप्राय से अपने श्रीमठ का द्वार सभी समाजों तथा व्यक्तियों के लिए खोल दिया था। उनकी आत्मीयता, समरसता, सर्वधर्म संभाविता ही नहीं, उनका ज्ञान गर्भित साम्य मधुर प्रवचन तथा चैतन्यमयी ऊर्जा प्रसारित करती शंखध्वनि, दिव्य दर्शन सबको आनंदित

कर रहा था। स्वामी रामानंद के श्रीमुख से ज्ञान, भक्ति, कर्म तथा ध्यान साधना सम्बन्धी तात्त्विक विवेचन सुन, भक्त हृदय एक अद्वितीय चेतना का अपने भीतर अनुभव करता हुआ, दिव्य लोक में पहुँच जाता था। स्वामी रामानंद जिस कुशलता से षड्दर्शनों की व्याख्या करते करते ब्रह्मसूत्र, उपनिषदों तथा गीता के अठारह अध्यायों तक पहुँच बड़ी सरलता से प्रस्थान की ब्रह्मविद्या का क्रियात्मक रूप समझाते थे। भक्तों में प्रवचन से उठने की इच्छा ही शेष नहीं रहती थी। बैठे बैठे सुनते रहे, सुनते रहे, बस यही चाहते रहते। ज्ञानात्मक संचेतना जगा, क्रिया की रचनात्मकता इस विधि से प्रस्तुत करते, उसे अनपढ़ तक सहज ही हृदयंगम कर लेता था। साधक को उस परम पिता के द्वार तक सात्विक बुद्धि के साथ मेरुदण्ड सीधा किये अखण्ड नाम जप करते हुए तथा मिलन की उत्कट लालसा लिए पहुँचना चाहिये यही तो वे कहते थे आपकी साधना की परख वही करने वाला है। आपमें कौन कंकर है और कौन शंकर, यह पहचान केवल उसी को है। स्वामी रामानंद ने अपने सहज योग का नाम शब्द सुरति योग दिया था।

स्वामी जी की शंख ध्वनि, विरोधी तक को शांत कर देती थी। उसकी आक्रामक वृत्ति शरणागति में बदल जाती थी। वह अंत में स्वामी जी की शिष्यता ग्रहण कर अपना जीवन धन्य करता था। एक बार पश्चिम देश के रिलिहा धर्मगुरु ने अपने दो शिष्यों को स्वामी जी के पास तिर्यक योनि में सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करने हेतु भेजा। एक सर्प रूप में था तथा दूसरा व्याघ्र रूप में। संध्या समय जैसे ही उन्होंने काशी में प्रवेश किया, पूरे नगर में हड़कम्प मच गया। नगर के सुरक्षा कर्मी उन्हें पकड़ने के लिए उनके पीछे दौड़ने लगे लेकिन उनकी फूँकार तथा दहाड़ उन्हें प्राण लेकर भागने को विवश कर देती थी। दोनों सीधे श्रीमठ पहुँचे। वहाँ भी उपस्थित सामान्य भक्तजन, उन्हें अंदर आया देख इधर उधर भागने लगे। लेकिन सिद्ध शिष्यों ने सभी को आश्वस्त किया तथा उनका भय दूर किया। पट्ट शिष्य 'आचार्य अनन्तानंद ने इस रहस्य को पहचान लिया तथा उनसे मनुष्य रूप में आने का निवेदन किया। मनुष्य रूप लेते ही पट्ट शिष्य आचार्य अनन्तानंद ने उन्हें सत्कार के साथ सत्संग भवन में बिठाया। उस समय स्वामी जी गुहा में अपनी सांध्य साधना कर रहे थे।

साधना की समाप्ति पर जैसे ही शंख ध्वनि हुई वे दोनों शिष्य उठकर आत्मभाव में डूब नाचने लगे। नाचते-नाचते वे सत्संग भवन से निकल गुहा के बाहर आकर खड़े हो गये। जैसे ही स्वामी जी ने गुहा के बाहर पैर रखा दोनों उनके चरणों में विनत हो, साष्टांग प्रणाम करने लगे। उठ कर फिर करबद्ध जय जयकार करने लगे। स्वामी जी ने काष्ठासन पर बैठते हुए परिचय तथा प्रयोजन पूछा। तब एक ने कहा महात्मन हमारे

गुरु परम पूज्य रिलिहा ने जिस अभिप्राय से आपकी सेवा में भिजवाया है वह तो आपकी इस शंख ध्वनि तथा दर्शनों ने ही पूर्ण कर दिया। हमारे पूज्य गुरु ने हमें आत्मज्ञान दिया, क्रिया बोध भी दिया किन्तु ज्ञानाग्नि में कर्मों को दग्ध किये बिना सिद्ध स्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता है वह आपके दर्शनों ने पूरा कर दिया। आप महान है। विश्व में इस समय आप जैसा दयालु गुरु दूसरा नहीं है। आपने हमारा उद्धार कर दिया है। अब कोई विशेष आंकाक्षा शेष नहीं है। दोनों ने पुनः चरण स्पर्श करते हुए विदा मांगी। तब स्वामी जी ने उन्हें कहा- 'आप अपने गुरु से मेरी ओर से इतना ही कहें कि वे अपनी यौगिक शक्तियों का उपयोग भव सिन्धु में डूबते हुए जीवों के उद्धार के लिए इसी तरह करते रहे।' वे दोनों साष्टांग प्रणाम करते हुए अपने तिर्यक रूप में मठ से विदा हो गये।

इसी तरह एक बार बड़ी ऐतिहासिक घटना घटी। इस घटना ने महाभारत काल को स्वामी रामानंद के काल से सीधा जोड़ दिया। भारुकि नामक प्रकाण्ड कर्मेष्टि पंडित को सर्प ने डस लिया था। सब तरह के औषधियाँ ली, सारे झाड़ फूंक करवा लिए पर उसकी अचेतावस्था में कोई सुधार नहीं हो रहा था। अन्ततः पण्डित के प्राण पखेरू उड़ गये। उसके दोनों पुत्र तथा पत्नी स्वामी जी के परम भक्त थे। उन्हें स्वामी जी की शक्तियों पर विश्वास भी था। वे उस मृत देह को स्वामी जी की सेवा में ले आये। स्वामी रामानंद लोकसंग्रही थे ही। उस महामना, दयालु, कृपालु स्वामी रामानंद ने शंख ध्वनि की। मृत पंडित भारुकि ने आंखे खोल दी। वह जीवित हो गया। तभी क्रोध से भरा हुआ एक सर्प फुंकारते हुए सूं सूं की ध्वनि के साथ, सीधा मठ में आ पहुँचा। विप्र वेशधर वह मनुष्य वाणी में बोला- 'यह पंडित हमारे कुल का शत्रु है। यह हर जन्म में हमी से दंशित हो, मृत्यु को प्राप्त होता रहा है। इसी चण्ड ने महाभारतकालीन सर्प सत्र सम्पन्न करा हमारे वंश का नाश करवाया था। आपने इसे जीवित कर हमारे कुल को अत्यधिक क्षति पहुँचाई है। हम किसी सिद्ध पुरुष द्वारा एक बार जीवित किये पुरुष को दुबारा दंशित नहीं करते। यह हमारा नियम है। आप सिद्ध पुरुष है। क्या कहें। आप हमारे क्रोध को नहीं जान रहे।'

स्वामी रामानंद ने यह सुनकर बड़े शांत स्वर ें कहा 'सर्पराज इसे जगन्नियन्ता की इच्छा मानकर चलें। उसी ने मेरे द्वारा यह दया करवाई है। जन्म जन्मांतर वैर साधे रहना आपको शोभा नहीं देता। आपको प्रसन्न होना चाहिये। इस पंडित के लिए उस बैकुण्ठ क' द्वार खुल गया है जहाँ द्वारपाल के रूप में स्वयं शेष भगवान् खड़े रहते हैं। आप अपने नियम की यहीं इतिश्री करें। इतने जन्म इसे आपने दंशित कर लिया

यही क्या कम है। आप क्रोध शांत कर प्रतिशोध के दुर्भाग्यपूर्ण प्रकरण का यही पटाक्षेप कर दे।'

विप्रवेश धारी सर्प ने कहा- 'आपने इतनी दयालुता से इस पंडित का उद्धार किया है, तो कृपा कर मेरा भी उद्धार कर दीजिये।' यह कहते हुए वह विप्र वेश सर्प ने स्वामी जी के चरण पकड़ लिये। इस प्रकरण ने द्वापर को कलयुग से ही नहीं जोड़ा, स्वामी जी की यशस कीर्ति को विश्व विश्रुत कर दिया। इस प्रकरण ने मनुष्य देह धारियों के प्रति ही नहीं, पशु पक्षियों के प्रति भी स्वामी जी की कृपा को विस्तार दे दिया।

इन अलौकिक और चमत्कारी घटनाओं के अतिरिक्त श्रीमठ में नित्यप्रति भण्डारों का आयोजन स्वामी जी करते-कराते रहे। इन भण्डारों में सिद्ध, तपस्वी, साधक, साधु, गृहस्थजन तो आते ही थे, अत्यंत गरीब, निरावलंब लोग, भिक्षुक, जात-पाँत की सामाजिक मर्यादा से हीन नर-नारी भी प्रसादी ग्रहण करने आते थे। पाँच किलोमीटर में विस्तृत आश्रम की शोभा काशी में न्यारी थी। कभी-कभी इसमें भिक्षुक का रूप पकड़ महाकालेश्वर भी पधार ते थे। अन्नदान, संतशाला, गोशाला, वाटिका तथा आराधना स्थल से सुसम्पन्न श्रीमठ स्वामी जी के जीवनकाल में ही सनातन धर्म का केन्द्रीय स्थल बन गया था।



ग्यारह

दिव्यात्मा स्वामी रामानंद ने मुक्त हस्त से अपनी संजीवनी संरक्षिणी तथा मोक्षदायिनी करुणा बाँटते हुए धर्म संस्कृति एवं समाज के लिए आध्यात्मिक शक्तियों का जितना विकीरण किया है, वह स्वयं में एक इतिहास है। उनका दक्षिणावर्त शंख तथा उसकी ध्वनि, युग के महायोगी स्वामी रामानंद के साथ एकाकार हो गये हैं। भगवान् वेणी माधव द्वारा प्रदत्त वह शंख उनकी माता को वरदान के रूप में मिला था। भगवान् वेणी माधव ने ही माता को निर्देशित किया था कि यह शंख अपने पुत्र को ही दे देना। शंख वास्तव में शंख था ही कहाँ, वह तो सूक्ष्म चेतना सम्पन्न ईश्वरीय शक्ति थी। उसमें इतनी आध्यात्मिक शक्ति निहित थी कि वह श्रद्धा हीन आगंतुक के मन को भी परम सुख का अनुभव करा देता था। उसके मन के सारे संशयों, भ्रमों तथा अन्तर्द्वंद्वों को तिरोहित कर, दिव्यानुभूति में डुबो, शरणागति को विवश कर देता था। स्वामी जी ने जिस भक्ति आंदोलन का विस्तार किया,उसने न केवल विधर्मी अत्याचारों की आंधी को रोका, धर्मान्तरण, मूर्ति भंजन, अपहरण, शील हरण जैसे दुष्कृत्यों से समाज की हताश, निराश तथा पराभूत मानसिकता को जगा, प्रतिरोध की निर्भय शक्ति से अभिषिक्त कर दिया। एक लम्बी आय भोगकर स्वामी रामानंद ने दक्षिण से आयी भक्ति की कावेरी धारा को गंगा बना सारे उत्तर भारत में बहा दिया। जैसे वृक्ष बढ़ते-बढ़ते एक दिन जीर्ण शीर्ण हो अपने को समाप्त कर देता है। उसी तरह मनुष्य का शरीर भी श्वेत केशी हो झुर्रियों से भर और तेज से हीन हो अपने को धराधाम से उठा लेता है। प्रत्येक आत्मा स्रष्टा की योजनानुसार ही देह धारण करती है। वह एक निश्चित अभिप्राय तथा एक निश्चित उद्देश्य लेकर धरा पर आती है तथा उसकी योजना को पूर्ण कर वापस प्रस्थान कर जाती है। स्वामी रामानंद तो साक्षात् रामावतार ही थे। लोकाराधन के लिए उनका पृथ्वी पर अवतरण हुआ था। उन्होंने सघन आसन्न संकटों के विस्तार से पूर्व ही, समाज एवं धर्म की रक्षा हेतु, सहज भक्ति की ऐसी सुदृढ़ दीवार खड़ी कर दी थी, जिसे तोड़ना किसी भी अत्याचारी के लिए संभव नहीं था। उनके

अवतरण का प्रयोजन लगभग पूरा हो चुका था। मुक्त हस्त से शिष्यता बांट, उन्होंने सिद्ध पुरुषों की एक बड़ी टोली खड़ी कर दी थी, जो भावी संकटों को रोकने, धर्म तथा समाज की भविष्य में रक्षा करने में पूरी तरह समर्थ थी। यह एक ईश्वरीय कार्य ही था, जिसे ईश्वरीय शक्ति ही पूरा कर सकती थी। उसे स्वामी रामनंद के अवतरण ने पूरा किया।

एक दिन श्वेत पांखी हंस आकाश मार्ग से उड़ता हुआ आश्रम प्रांगण में उतर मंद-मंद गति से गुहा की ओर जाने लगा। ठीक उसी के पीछे एक कबूतर सीधा गुहा में ही घुस, स्वामी रामानंद के कर कमल पर जा बैठा। उड़ाये नहीं उड़ रहा था। पक्षी के लिए दाना ही उसका सबसे बड़ा लोभ है। स्वामी जी के संकेत पर पट्ट शिष्य आचार्य अनंतानंद ने स्वामी जी के हाथ के पास सरसों के दाने बिखरा दिये।वह कपोत हाथ से उतर सरसों के दाने चुगने लगा। दाने चुगते ही वह कपोत स्वामी जी के श्री चरणों के निकट पहुँच पंख फड़फड़ाने लगा। थोड़ी देर वह वहाँ से उड़ कर चला गया। हंस के लिए दूध का कटोरा रखा गया उसने जलांश छोड़ दूध पी लिया। वह भी मंद मंद चलता हुआ गुहा में पहुँच गया तथा अपनी चोंच से स्वामी जी के चरण को कुचरने लगा। इस रहस्य को दिव्य आदेश मान स्वामी जी ने 'एवमस्तु' कह उनके संकेत का उत्तर दे दिया।

स्वामी जी मौन हो गये। उपस्थित सभी वरिष्ठ शिष्यगण स्वामी जी के मौन से सारे रहस्य भेद जान गये। शिष्य वृन्द के मुख पर भी उदासी छा गई। वे निराश न हों, इसे दृष्टिगत रख स्वामी जी ने कहा 'संयोग-वियोग यह मानसिक स्थिति है। सर्वथा भौतिक है। आध्यात्मिक दृष्टि से न तो किसी का जन्म है न किसी का मरण। न संयोग है न वियोग। न आना है न जाना। यह तो मोह भर है। इस पर आचार्य अनन्तानंद ने कहा- 'गुरुदेव, सृष्टि में श्रद्धा भक्ति तथा प्रेम का भी तो अस्तित्व है। विरक्त से भी हटाये यह नहीं हटता। उसे हटना भी नहीं चाहिए।' तभी कबीर बोले- 'गुरुदेव इस समय इसके सांकेतिक भावार्थ को लोक कल्याणार्थ टाल देने में क्या आपत्ति है'? स्वामी जी ने कहा- 'तुम भी सब जानते हो। ब्रह्म देव तथा धर्मराज स्वयं आ आमंत्रण दे गये हैं। लगता है इस काम को अब कोई और महापुरुष आकर संभालने वाला है। या यह भी हो सकता है, उनकी दृष्टि से जितना कार्य होना अपेक्षित था, वह हो चुका है या अब आगे किसी और दृष्टि से, नवीन परिप्रेक्ष्य में, कुछ और अभिनव होने वाला है। उसकी भूमिका वहाँ रच गई है। मुझे उनका आदेश मान लेना चाहिए। हम तुम से अधिक इस देश की चिन्ता उस परम पिता परमात्मा को है। सारी मुक्तात्माएं यहीं आना

पसन्द करती हैं। तुम सबसे एक ही बात कहनी है, नई कोई योजना आये, तब तक, जिस विधि से यह कार्य चल रहा है, वह तथावत् चलता रहे। समरसता आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। स्थापित एकता, सौहार्द तथा सद्भाव को भंग नहीं होने देना है। भेदों को भेद, अभेद की ओर समाज को निरन्तर बढ़ाते चलना है। संगठित शक्ति ही आसन्न संकटों का निवारण कर सकेगी। और भी कहीं कोई आवश्यकता हुई तो वह सृष्टि नियन्ता ही समन्वय की नई योजना बना प्रस्तुत करेगा। गुरुदेव के इतने लम्बे कथन का अभिप्राय जान सभी वरिष्ठ शिष्य मौन हो, उदास मन वहां से चले गये। आचार्य अनन्तानंद ही वहाँ रह गये। अवसर देख स्वामी जी ने आचार्य अनन्तानंद के सम्मुख चैत्रशुक्ल नवमी की प्रातर्वेला में अपने प्रस्थान की इच्छा व्यक्त कर दी।

आचार्य अनन्तानंद ने धैर्य से काम लेते हुए, वरिष्ठ शिष्य कबीर रैदास आदि से मंत्रणा कर सत्संग भवन में काशी के सभी श्रद्धालु भक्तों की बैठक बुलवाई। बात कभी छिपती नहीं है। सभी बैठक के मन्तव्य को पूर्व में ही जान गये थे। फिर भी आचार्य अनन्तानंद ने खड़े होकर बड़े भरे गले से स्वामी जी के साकेत गमन के निर्णय से अवगत कराया। विस्तार के साथ हंस एवं कपोत वाली घटना सुना उसका अभिप्राय भी रखा। साकेत गमन की सूचना से सभी श्रद्धालुओं का हृदय भर आया। सोचने लगे, अब क्या होग? स्वामी जी के कारण ही काशी मोक्ष नगरी बनी हुई थी। इन्हीं से काशी की प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा थी। स्वामी जी के बिना तो काशी विधवावत् हो जायेगी। अनाथ हो जायेगा। आचार्य अनन्तानंद ने ढाँढस बंधाने के भाव से ही कहा- 'स्वामी जी सूक्ष्म रूप से सदा हमारे बीच ही रहेंगे। संकट के क्षण में सहयोग एवं सहायता करते रहेंगे। आचार्य के इस कथन ने अवश्य श्रद्धालुओं की आंखों में छलछला आये आँसू पोंछे। हृदय का बढ़ा स्पन्दन सामान्य किया।

इसके बाद आचार्य अनन्तानंद ने सबके सामने निर्मित अष्ट दिवसीय योजना प्रस्तुत की। जिसमें काशी के तथा बाहर से पधारे सभी सन्त श्रद्धालु भाग लेगे। यह योजना प्रतिदिन चार चरणों में पूर्ण होगी। प्रातः सभी सत्संग भवन में ध्यान की मुद्रा में बैठ मौन तारक मंत्र का जाप करेंगे। तत्पश्चात् विराट् श्रीराम महायज्ञ होगा। मध्याह्न में स्वामी जी का प्रवचन होगा तथा रात्रि को भजन कीर्तन होगा। अंतिम आठवें दिन अर्थात चैत्र शुक्ल अष्टमी को प्रातः एक करोड़ आहुति वाले यज्ञ का आयोजन होगा अपराह्न को प्रवचन का कार्यक्रम यथावत होगा इसके बाद भंडारा होगा। यह सारी व्यवस्था आप ही लोगों को सभांलनी है। इस तरह प्रतिदिन मूर्धन्य वैदिकों द्वारा शतकुण्डीय यज्ञ का समायोजन होता रहा।

आचार्य अनन्तानंद की इस योजना का सभी ने स्वागत किया। विचार विनिमय के पश्चात् तीन समितियों का गठन किया गया। हृदय सभी का अवश्य दुःखी था। पर देह में सभी के इन आयोजनों को सफल बनाने का उत्साह हिलोरें मारने लगा था। सब अपना अपना दायित्व संभाल पूरी शक्ति के साथ काम में जुट गये। सब स्वामी जी की अंतिम कृपा दृष्टि पाने की मन में सात्त्विक अपेक्षा जो लिए थे। स्वामीजी के अंतिम आशीर्वाद की कामना सबके हृदयों में हिलोरे लेने लगी थी।

चैत्र बदी अमावस्या को ही बाहर से पधारने वालों की भारी उपस्थिति देख, व्यवस्थापक और अधिक सक्रियता से अपने-अपने कार्य में जुट गये। स्वामी जी की अपनी दैनन्दिन क्रियाएं अवश्य यथावत् चलती रहीं। उनमें न तो साकेत गमन का दुःख था न सुख ही। वे तो आत्म रूप में ही पूर्ववत, थे। उनमें न तो राग का भाव था न विराग का। वही ध्यान साधना, वही शंखध्वनि। वही सत्संग वही आशीर्वाद प्रदान कहीं कोई कमी नही थी। स्वामी जी ने अमावस्या को आचार्य अनन्तानंद से अवश्य पूछा था, लोग कहां कहां से आये हैं। सबको यथा स्थान ठहराया या नहीं। सबके भोजन की उचित व्यवस्था हुई या नहीं। सत्संग भवन छोटा तो नहीं पड़ेगा। आचार्य अनन्तानंद ने सारी व्यवस्थाओं से उन्हें अवगत करा सन्तुष्ट किया।

सभी सन्त साधक श्रद्धालु प्रतिपदा को स्नानादि से निपट ठीक समय पर सत्संग भवन में पहुंच, मेरुदण्ड सीधा किये, नेत्र बंद किये, ध्यान की मुद्रा में पंक्ति बद्ध बैठ मौन तारक मंत्र का जाप करने लगे। एक अभूतपूर्व शांति विराज रही थी। ऐसा लग रहा था, मानो शून्य धरा पर उतर आया हो। दीपशिखावत् अविचल ध्यानस्थ बैठे हजारों साधकों की उपस्थिति बड़ा ही मनोहारी दृश्य उपस्थित कर रही थी। जैसे ही गुहा से शंखध्वनि हुई, ध्यानस्थ साधकों को अपने भीतर स्वतः शाश्वत आनंद की अनुभूति हुई जैसे ही उनके मुँदे दृग् खुले, लगा मानों वे किसी आनन्द भूमि से लौट कर आये हों। मुक्त कण्ठ से उस आनन्द की प्रशंसा करते हुए वे जीवन को धन्य मानने लगे।

विशाल प्रवचन कक्ष, अलग से बनाया गया था। ठीक समय अपराह्न में सभी आ उपस्थित हुए। आचार्य अनन्तानंद ने सबको यथाशीघ्र बैठने के लिए कहा। बाई ओर साध्वियों के बैठने की व्यवस्था की गई थी। दाहिनी ओर साधको को बिठाया था। आचार्य अनन्तानंद ने कहा, अभी शंखध्वनि होगी। उसके पश्चात् स्वामी जी पधारेंगे। उस समय सभी अपने स्थान पर खड़ होंगे। स्वामी जी के मंच पर आसन ग्रहण करने के बाद बैठेगें। स्वामीजी पधारे तब तक सन्त सुरसुरानंद रामधुन करवायेंगे। सियाराम

सियाराम सियाराम सियाराम की ध्वनि से पूरा पाण्डाल गूंज उठा। रकार और मकार की ध्वनि ने पूरे वातावरण को राम मय कर दिया। साधक उस मधुर स्वर समुद्र में डूब गये। इसी बीच शंखध्वनि हुई। आत्मीयता, एकता तथा अभेदता का ऐसा वातावरण व्याप्त हुआ कि सबको सबमें एक राम के ही दर्शन होने लगे। एकत्व का अद्भुत निदर्शन था। मानो आत्मा दूसरी आत्मा का आह्वान कर रही हो। संत सुरसुरानन्द ने जैसे ही स्वामीजी को पधारते देखा, राम धुन बंद कर खड़े हो गये। तभी स्वामी जी ने पाण्डाल में प्रवेश किया। सभी स्वतः खड़े हो गये। मंच पर चढ़ स्वामी जी ने सभी की ओर उन्मुख हो बैठने से पूर्व राम शब्द का उच्चारण किया। आचार्य अनन्तानंद ने जो नीचे मंच के निकट खड़े थे, सबको हाथ के संकेत से बैठने को कहा।

प्रवचन से पूर्व जैसे ही स्वामी जी ने पुनः सियाराम शब्द का उच्चारण किया, सभी सावधान हो, सुनने की स्थिति में आ, स्वामी जी की ओर उन्मुख हो गये। बड़ी मन्द मधुर वाणी में स्वामीजी बोले- 'मुझे आये लगभग एक सौ ग्यारह वर्ष होने को हैं। सोलह वर्ष की अवस्था में ही गुरुदेव ने मुझे मंत्र दीक्षा देकर नई आयु तथा नया जीवन दिया था। मुझे इस स्थिति तक पहुँचाने का सारा श्रेय गुरुदेव को ही है। (यह कह उन्होंने नेत्र मूँद गुरुदेव के श्री चरणों में अपना मौन विनत प्रणाम निवेदन किया।)

मोक्ष प्रत्येक की कामना है। यह संसार की अनित्यता को स्वीकार करती है। पर ब्रह्म को इस सृष्टि का एकमेव स्रष्टा, पालन कर्त्ता तथा संहारक मानती है। यही अभेदात्मक बुद्धि उसे कर्म प्रभाव से बचा, मोक्ष का पात्र बनाती है। कर्मो का क्षय जन्म जन्मान्तर के लख चौरासी के फेरों से बचा उसका मोक्ष पथ प्रशस्त करता है। आप सबने इस ज्ञान को बुद्धि के स्तर पर स्वीकार कर आचरण में भी उतारा है। इसकी पुष्टि श्रीमठ में आपका आगमन स्वतः कर रहा है। अपने दैनन्दिन कर्म तो सबको करने ही होते हैं। यह शरीर धर्म है। इनमें अन्तः करण साक्षीभर है। अन्तःकरण जब स्वयं कर्मशील होता है, तब कर्म बंधन कारी न हो इसलिए असम्पृक्तता, निष्कामता, इदम् न मम् का भावहोना आवश्यक है। सारे कर्म प्रभु ही करवा रहा है। हम उसी की प्रेरणा से ही काम कर रहे हैं, उसी का बताया प्रयोजन पूरा कर रहे हैं, यह मान कर चलने में, मैं का भाव नहीं रहता। यही निष्कामता है। ईशोपनिषद् का एक श्लोक है-

ईशावास्यमिदम् यत्किंचत्जगत्यांजगत

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा : मामृद्धः कस्यस्विद् धनम्।

यह सारा दृश्यमान जगत् उसी एक ईश्वर से आवेष्टित है। धन ने किसका साथ

दिया है। लालची न बन, इसका त्याग पूर्वक उपभोग करो। बड़ी ज्ञान प्रद उक्ति है। मनुष्य को धन के लोभ से ही नहीं, सभी को षड्रिपुओं से बचना चाहिये। धर्म शास्त्रों ने पांच हित साधी जीवन मूल्य निरूपित किये हैं। ये हैं सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य। ये सब जीवन में धारणीय हैं। प्रकृति आण्विक है। इसके प्रत्येक अणु में ये तीनों गुण सत् रज तथा तम सतत कार्यरत रहते हैं। यही मनुष्य प्रकृति का निर्धारण करते हैं। ब्रह्म के स्पर्श से जड़ प्रकृति सचेतन है। अणु सक्रिय होते हैं। इसीलिये ये ईश्वरीय माया कहे गये हैं। ब्रह्म को भी इसी हेतु से चिदचित् कहा गया है। चिदचिदात्मक यह सारा सृष्टि प्रपंच ब्रह्म का ही शरीरभूत है ऐसा माना जाता है। वही इस जगत का निमित्त कारण और वही उपादन कारण माना जाता है। वही जीव रूप से सब शरीरों में वास करता हुआ कर्त्ता, भोक्ता दोनों कहा गया है। जीव मायावी होने से सात्त्विक राजसी तथा तामसिक है। सत प्राणी को अचित से दूर कर चिद् की ओर ले जाता है। इस माया का ब्रह्म से निकट सम्बंध है। पर ब्रह्म ही सब पदार्थों के भीतर रहकर उनका नियमन करता है। इसी हेतु से चिद् अचिद् ब्रह्म के विशेषण हो गये हैं। ब्रह्म इनका विशेष्य हो गया। इसी से ब्रह्म को चिदचित् विशिष्ट भी कहते हैं। सूक्ष्म कारणावस्था तथा स्थूल कार्यावस्था का नियामक चिदचित् विशिष्ट ब्रह्म ही होने से दोनों एक अभेद है, अद्वैत है। इसी से अपने धर्म सिद्धान्त को विशिष्टाद्वैत भी कहते हैं। चेतन आत्म तत्त्व के रूप में वह सभी में विराजमान है। स्थूल जड़ प्रकृति में बुद्धि तत्त्व का अभाव होने से उसकी क्रियावस्था सर्वथा असिद्ध ही रहती है। मनुष्य शरीर बुंद्धि के स्तर पर सर्वोत्कृष्ट होने से, उसमें विवेक, तर्क तथा निश्चयात्मिका बुद्धि कार्यरत रहती है। सृष्टि रहस्य को समझने की हर जीव में जिज्ञासा रहती है। इसी भाव से उस ब्रह्म को प्राप्त करने की लालसा भी हर एक में स्वाभाविक रूप से रहती है। आत्मा सो परमात्मा। जिसने आत्म दर्शन कर लिया, उसने परमात्मा दर्शन कर लिया। परमात्म दर्शन की उत्कट लालसा को ही भक्ति कहते हैं। वह परमात्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा सर्व व्यापक है। उसके प्रति अनन्य प्रेम ही उसकी प्राप्ति की कामना जगाता है। यह प्रेमाभक्ति ही उस तक पहुँचाती है। उसे प्राप्त करने का सरलतम मार्ग केवल राम-नाम शब्द सुरति योग है। इससे सरलतम और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आप विश्वास के साथ इस पंथ से जुड़े रहें। आत्मदर्शन आत्म कल्याण सुनिश्चित है। यह कह स्वामीजी ने अपना उद्‌बोधन समाप्त कर राम शब्द का उच्चारण किया। आचार्य अनन्तानन्द स्वामी जी को लिवा कर गुहा तक ले गये।

रात्रि को देर तक सभी आगत अतिथि प्रेम के साथ भजन कीर्तन करते रहे।

प्रतिदिन इसी प्रकार यह चतुर्आयामी धर्म कार्य चलता रहा।

रविवार के प्रवचन में स्वामीजी ने विधर्मी अत्याचारों से त्रस्त समाज को मुक्ति दिलाने का दायित्व सन्तों पर डालते हुए कहा- 'आप आत्म ज्ञानी हैं। सभी भेदों से दूर, अभेद के उपासक हैं। अद्वैत के मीमांसक हैं। आप ही समाज के दलित, पतित, शोषित, वंचित वर्ग को गले लगा, उच्च वर्ग से उनके मानवाधिकार उन्हें दिलवा सकते हैं। उनके द्वारा की जा रही उपेक्षा, तिरस्कार तथा अवहेलना का लाभ उठाकर विधर्मी आतंकी प्रलोभन दे उनका धर्मान्तरण कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त हमारे बीच ही ऐसे मत एवं मतावलम्बी वर्तमान हैं, जो अपने को सनातन समाज व्यवस्था से पृथक माने हुए हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो वामाचार में विश्वास कर मुद्रा, मत्स्य, मांस, मदिरा, मैथुनादि को धर्म कर्म मान समाज के सात्त्विक स्वरूप को दूषित कर रहे हैं। नारी की स्थिति तो इतनी दयनीय हो गई है कि वह खुली धूप में भी अकेली घरसे बाहर नहीं निकल सकती। सदाचार, पापाचार में ढल रहा है। ऐसे कठिन समय में समाज की चिन्ता कौन करेगा? समष्टि भाव को भुला जन आज व्यष्टि में उलझा है। क्रूरता अराजकता तथा आतंक अपने चरम पर है। रक्षक ही भक्षक बने हैं। परकीय विधर्मी देश में घुस चुके हैं। सत्ता हथिया चुके हैं। उन्हें सत्ता च्युत कर निकाल पाना सम्भव नहीं रहा है। हम अपनों को तो, जो हमसे छिन्न भिन्न हुए, विभिन्न सम्प्रदायों में बँटे, ऊंच नीच छुआछूत जैसे थोथे विचारों में घुले समाजों को तो एक मंच पर ला सकते हैं। इसे समत्व दृष्टि सम्पन्न सन्त समाज पूरा कर सकता है। एकात्म के दृष्टा सन्तों की दृष्टि में सब बराबर हैं। स्वयं कलि काल ने मेरे पास गुहा में आकर देश धर्म एवं समाज की इस दयनीय स्थिति का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत कर अपेक्षा की है कि मैं प्रजा के इस कष्ट को दूर करूँ। आप साक्षी है, मैंने ही पहली बार चली आ रही जीर्ण शीर्ष रूढ़ियों तथा अव्यावहारिक हुई परम्पराओं को निर्ममता के साथ तोड़, श्री मठ के द्वार मानव मात्र के लिए खोले हैं। अस्पृश्य कहे जाने वाले समाज तक को आगे बढ़ गले लगाया है। कट्टरवादी आतंकियों के निर्दोष प्रजा पर हो रहे अत्याचारों एवं प्रतिबंधों को निर्मूल किया है। सद्ग्रंथ साक्षी हैं, अवतार पुरुषों ने भीलनी के झूठे बेर खाये हैं, भरी सभा में नग्न की जाती नारी का चीर बढ़ाया है, दुष्टों के विनाश के लिए पृथ्वी पर अवतरित होने की घोषणा की है, फिर आप अवतरित सिद्ध सन्त इस दायित्व को क्यों नहीं उठा सकते। जीवन मुक्त अवस्था में समाज के बीच विचरते हुए अपने ज्ञान एवं आचरण से सर्व धर्म समभावी वातावरण के निर्माण में सहायक तो हो सकते हैं। आज समय को समाज की संगठित शक्ति की आवश्यकता है। यह दुष्कर कार्य आप

ही कर सकते हैं। यह तो एक निरन्तर चलने वाला कार्य एक दिन में किसी जादुई चमत्कार से पूर्ण नहीं होने वाला है। इन आतंकियों से देश धर्म एवं समाज को बचाने के लिए जब तक संगठित युवा पीढ़ी आगे नहीं आयेगी, अराजकता का यह घटाटोप मिटने वाला नहीं है। धेनु और धरती कम्पायमान हैं। कामुकता अपने चरम पर है। दम्भ ने प्रणव को पथरा दिया है। कपट ने ज्ञान की गुदड़ी ओढ़ रखी है। अनृत ने ऋत का वेश धारण कर रखा है। ऐसे समय में आप जैसे तपोनिष्ठ सम दृष्टि सन्त ही मझधारा में डूबते समाज के जहाज को बचा सकते हैं।

ऐसा सहिष्णु वातावरण केवल श्रीमठ में निर्माण होने से काम नहीं चलेगा। यह तो सभी धर्माधिकारियों के आश्रमों, सभी सम्प्रदायों तथा सभी देवालयों में विस्तार पाना आवश्यक है। जो देश के बाहर के हैं। जिनका धर्म देश के बाहर का है। जिनके पर्व त्यौहार अलग हैं, संस्कृति अलग है। संस्कार अलग हैं, जिनके हृदयों में भारत भूमि, भारतीय जन तथा भारतीय संस्कृति के लिए लेश मात्र भी श्रद्धा भक्ति प्रेम नहीं। सन्तों के वचनों का आदर है। आप उन्हें जो भी ज्ञान देंगे, उसे वे ब्रह्मवाक्य मान स्वीकार करते हैं। अतः आप समाज के कष्टों को अपना कष्ट मान, सेवा में जुट जायें। यह कह स्वामी जी ने प्रवचन समाप्त कर राम के उच्चारण के साथ विराम लिया। श्रद्धालु श्रोताओं ने जय हो जय हो का घोष किया।

आचार्य अनन्तानन्द स्वामी जी को मंच से उतार गुहा की ओर ले गये। यही क्रम अष्टमी तक चलना था। अगले दिन अपराह्न में स्वामी के पधारते ही सन्त सुरसुरानंद की रामधुन बंद हुई। स्वामी जी मंच पर विराजे। श्रोताओं ने अपना स्थान लिया। आज के प्रवचन में स्वामी जी ने साधक की साधनाओं पर विशेष रूप से प्रकाश डालते हुए कहा-

परमब्रह्म राम को अपने स्वरूप में तथा सब भूतों में देखना ही सर्ग है। विमुक्त पुरुष यदि गुणातीत अवस्था प्राप्त नहीं करे तो उसका वैराग्य निरर्थक है। भगवत् रूप होकर जो इच्छाओं से रहित तथा द्वन्द्वों से परे होकर जीता है वही विरागी है, सच्चा त्यागी है। फलाशा त्याग ही वास्तविक त्याग है। नाम रूप पर मर मिटने वाली वासना से जीव का मुक्त होना ही त्याग की महिमा है। बिना ध्यान साधना के आत्म साक्षात्कार तथा योग की अमरत्व प्राप्ति असम्भव है। जाग्रत स्वप्न एवं सुसुप्ति की अवस्था में, दैनन्दिन के आचार-विचार में, देह में आती जाती प्राण वायु में, प्रकृति के समस्त कार्य व्यापार में जो चेतनात्मक सत्ता व्याप्त है वह ररंकार ध्वनि में संचारित हो रही राम ध्वनि ही है। इस रकार एवं मकार की रमण क्रीड़ा को वही देख पाता है, जिसे ध्यान साधना

से, नाम जपादि से अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। ओंकार का आदि अनादि रूप, उसका, प्रत्यक्ष श्रृंगार तथा सोऽहं का आधार भी यही राम नाम है। जीव और शिव, प्रकृति और पुरुषोत्तम को घट घट में प्रस्थापित करने वाली सत्ता राम नाम ही है। रकार एवं मकार से युक्त राम नाम एक अनमोल रत्न है। सद्‌गुरु जब इसे मंत्र रूप में शिष्य को प्रदान करता है, तब वह चेतन रूप में साधक में प्रवेश कर अपनी अचिन्तनीय अर्थवत्ता उद्‌घाटित करता है। इस राम नाम की रहन तबतक होती रहे, जबतक साधक को संचरित प्राण वायु में इस रकार मकार की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ने लगे। इस ध्वन्यात्मक प्रकरण में, गुणातीत अवस्था में, अविरल रूप से होने वाली अनहत ध्वनि का सार राम नाम ही है। राम नाम के इस जप को कान सुनते रहें तब तक समझिये आपका चित्त ध्यान से नहीं हटा है। जिस क्षण भी कान जप नहीं सुने, समझिये आपका चित्त शब्द-ध्वनि पर नहीं है। कहीं और भटक रहा है। राम में आपकी रति नहीं है। यति, रति की इति है। निरन्तर श्वास प्रश्वास के साथ संचरित राम ध्वनि कान सुनते रहें। आप उस ध्वनि में रमे रहें। शब्द (राम) में प्रीति (सुरति) बढ़ती रहे। श्रद्धा भक्ति बढ़ती रहे। प्रेम भक्ति के साथ योग (जुड़ा) रहे। इस प्रेमाभक्ति का नाम ही शब्द सुरति योग है। शब्द की अनाहत स्थिति ही सुरति है। शब्द साधना ही योग साधना है। शब्द सुरति ही योग की सिद्धि है। यह सहज लय योग है। ब्रह्म राम की अनुरक्ति की पराकाष्ठा ही शब्द सुरतियोग है। इसी चरमावस्था में अलौकिक आनन्द की रस वर्षा की प्राप्ति होती है। सुरति शब्द योग का संकेत वेदों में भी प्राप्त होता है। उपनिषद् काल से इसका क्रम बद्ध इतिहास मिलता है। छान्दोग्य में इस प्रणाली का उल्लेख है। ब्रह्म राम से मिलने की विरहाकुलता ही शब्द के स्तर पर सुरति है। सुषुम्ना में बीस घटियां है जिन्हें पार कर चेतना चौथे द्वार पर पहुंचती है। मेरु दण्ड को सीधा कर सुखासन या पद्मासन पर बैठ चित्त को राम नाम पर केन्द्रित कर जितना ध्यानस्थ रहेंगे, उतने ही आप उसके निकट पहुंचते चले जायेंगे। कण्ठ से नाम चेतना हृदय में उतर जायेगी। तब आपकी नाड़ियों का हर स्पन्दन राम-नाम लेने लगेगा। वह ध्वनि आप सुनते रहेंगे। हृदय से उतर जब वह शब्द चेतना मणिचक्र पर पहुंचेगी, आपको दिव्यता का स्वयं अनुभव होने लगेगा। वहां से नाम चेतना स्वाधिष्ठान होती हुई मूलाधार में साढ़े तीन आंटे लगा लिपटी हुई कुण्डलिनी को सचेतन कर देगी। शरीर में कम्पन होने लगेगा। सिहरन सी अनुभव होगी। यहीं से चेतना का उर्ध्व गमन प्रारम्भ होता है। साधक का यह नया जन्म है। यहाँ से चेतना सुषम्ना के पथ से सीधी चौथे द्वारा पर पहुंच वहां विहरती वायु से टकराती है, तब बादलों सी घरघराहट सुनाई देगी। रंकार ध्वनि सुनाई

पड़ेगी। कभी शंखध्वनि तो कभी वेणु नाद सुनाई देगा। यही अनाहत नाद है उसी अनाहत नाद को सुनते सुनते आपको उस परम सत्ता राम के दर्शन होंगे। आपकी चेतना उस महाचेतना में एकाकार हो जायेगी। यह एकाकारिता बनी रहे। आप अखण्ड आनंद में डूबे रहें, इसके लिए निरन्तर साधना की आवश्यकता है। तब आत्मा और परामात्मा में कोई भेद नहीं रहेगा। कोई द्वैत नहीं रहेगा। आप में अनन्त परमात्म शक्तियों का स्वयमेव उदय हो जायेगा।स्थूल देह सूक्ष्म हो जायेगी। चिन्मय हो जायेगी। अनाहत नाद आप सुनते रहेंगे। यह कोई कठिन प्रक्रिया नहीं है। सहज योग है। आवश्यकता एक ही है। उस परम सत्ता में लीन होने की आपके तड़प एक विरही की तड़प से भी अधिक तीव्र हो। मिलन की यह तड़प ही प्रेमा भक्ति है।' यह कह स्वामी ने अपने कथन को विराम दिया। राम शब्द का जैसे ही उच्चारण किया सारे साधक जो तन्मय होकर दत्तचिन्त भाव से स्वामी को सुन रहे थे वे उस महाभाव का अपने भीतर अनुभव कर रहे थे सहसा सजग हो खड़े हुए उत्साही श्रद्धालुओं ने स्वामी जी के जय जयकार से पाण्डाल गुंजा दिया।

यथावत् सारे निर्धारित कार्य चल रहे थे। चौथा दिन था। प्रवचन में स्वामी जी ने एक नया ही विषय लिया। 'महर्षि बदारायण ने बद्रीनाथ में बैठ जिन परमार्थ सूत्रों का प्रणयन किया, वे ब्रह्म सूत्र कहलाते हैं। ज्ञानान्वेषी ऋषि मुनियों ने वेदों में आये दार्शनिक मंत्रों को पृथक् कर लिपि बद्ध किया, वे उपनिषद् कहलाते हैं। कुरुक्षेत्र में विषाद ग्रस्त अर्जुन को युद्ध सन्नद्ध करने हेतु भगवान् कृष्ण ने जो वचन कहे, उन्हें वेद व्यास ने महाभारत में गीता नाम से उद्धृत किया है। ब्रह्म सूत्र उपनिषद तथा गीता तीनों मिला कर 'प्रस्थान-त्रयी' के नाम से विख्यात हैं। इस सम्मिलित ज्ञान को ही वेदान्त कहा जाता है। अर्थात ज्ञान का अन्त। भारतीय दृष्टि से यहाँ आकर दार्शनिक ज्ञान की पूर्णता समाप्त हो जाती है। प्रत्येक शिष्य को परमार्थ की इच्छा ले, वेदान्त का अध्ययन मनन करना चाहिए।

जीवात्मा, प्रज्ञात्मा तथा परमात्मा (राम), परम पुरुष के ये तीन रूप हैं। जीवात्मा चिदाभास है। प्रज्ञात्मा चिन्मय है तथा परमात्मा चिदानंद है। प्रज्ञात्मा परमात्मा से अभिन्न है। सुषुप्ति में प्रतिदिन हमारा प्रज्ञात्मा से मिलन होता है। इस मिलन को हम नहीं जान पाते। जीव अणु है। गुणों के वैषम्य से घट घट में जीव अलग अलग है। ब्रह्म एक है निर्गुण है। वह इस त्रिगुणात्मक प्रकृति से परे है। सगुण ब्रह्म ही कृपा करके उस निर्गुण ब्रह्म एवं उसके स्वरूप के रहस्यों को शिष्यों को बताते हैं। गुरु ही उस निर्गुण ब्रह्म तक पहुंचाने वाला है। उस निर्गुण ब्रह्म को जानने का और कोई मार्ग नहीं है। गुरु

ही सच में सगुण ब्रह्म है। सगुण ब्रह्म प्रत्यक्ष है, वही उस बोध गम्य निर्गुण ब्रह्म तक पहुंचाता है। इसलिए वह सभी शिष्यों का प्रथम इष्ट है। श्रुति में निर्गुण ब्रह्म के लिए नपुंसक लिंग का तथा सगुण ब्रह्म के लिए पुल्लिंग का प्रयोग हुआ हमें मिलता है। परम पद प्राप्त साधकों की दृष्टि इन उभय लिंगों से परे जा उसे पहचानती है। उसे दिव्य गोचर दृष्टि हो जाने से निर्गुण ब्रह्म सगुण तथा सगुण ब्रह्म निर्गुण भासने लगता है। उसके लिए सगुण एवं निर्गुण एक हो जाते हैं। ऐसा शिष्य दोनों में भेद करके नहीं चलता। विवाद तभी तक रहता है, जब तक शिष्य साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त नहीं होती। दिव्य दृष्टि प्राप्त होते ही साधक के सारे शंका संशय दूर हो जाते है। वह द्वन्द्वातीत हो जाता है।

जीवात्मा जब उस परमात्मा को पा लेता है, तब वह नाम रूप की उपाधि से परे चला जाता है। स्वयं ब्रह्म हो अद्वैत हो जाता है सारी लड़ाई पारिभाषिक शब्दो की है। वितण्डावादी तर्क शास्त्रियों की है। एक बार भी जिसने उस अखण्ड अनाहत आनन्द का लाभ उठा लिया, शुद्ध बुद्ध चेतन हो गया, फिर कैसा तर्क कैसा विवाद। कैसी शंका कैसा संशय? वहाँ तो निर्णय ही निर्णय है। साधक शिष्य सदा इन षड् वाक्यों को ध्यान में रखें। वह तू है, वह तेरा है। वह तुझसा है। तू वही है। तू उसी का है। तू उसी जैसा है। इससे एकत्व का बोध सहज ही होगा। उसे प्राप्त करने का भाव भी हृदय में दृढ़तर होगा। गुरु मंत्र में भी यही शक्ति है। उसपर शिष्य का अगाध, अटूट, अटल विश्वास आवश्यक है। गुरु मंत्र में ही वह शक्ति होती है जो शिष्य को ब्रह्म तक पहुंचाती है। शिष्य कभी उसकी शक्ति पर सन्देह नहीं करे। गुरु और गोविन्द के बीच की दूरी पाटने वाला गुरु मंत्र ही है। गुरु मंत्र में गुरु शक्ति निहित होती है। सच्चा स्नेह ही उस सच्चे स्नेही से मिलाता है। इसमें आपकी श्रद्धा भक्ति और प्रेम ही प्रमाण है। यह कह स्वामी जी ने अपना प्रवचन समाप्त किया। सियाराम शब्द का उच्चारण किया।

आचार्य अनन्तानंद उठ पूर्ववत् स्वामी जी को लिवा कर ले गये। पंडाल जय निनाद से गूंजता रहा। अष्टदिवसीय अनुष्ठान का पांचवा दिन था। चतुर्चरणीय व्यवस्था में किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं आ रही थी। सारे कार्यक्रम पूरी व्यवस्था से चल रहे थे। साधक श्रद्धालु संत सभी पूरी निष्ठा लगन एवं समर्पण के साथ जुटे थे। प्रातः की ध्यान साधना के बाद अपराह्न में स्वामी जी का प्रवचन था। गम्भीर सैद्धांतिक विवेचन में सभी बड़ी रुचि ले रहे थे। जैसे ही स्वामी जी मंच पर बिराजे। राम नाम का उच्चारण किया, पूरे प्रवचन कक्ष में शांति पसर गई। सबकी दृष्टि स्वामीजी पर जा

टिकी। स्वामी गुरु गम्भीर स्वर में बोले-

आप सब आस्थावान शरीर हैं। आपके हृदयों में उस अद्वैत चेतन सत्ता के प्रति गहरा विश्वास है। वस्तु जगत् के प्रति आत्मिक दृष्टि है तथा आपका आचरण सांस्कृतिक परम्परा का प्रतिबिम्ब है। स्रष्टा, सृष्टि तथा संकृति के प्रति आपका आस्तिक भाव ही आपकी आस्था है। इनके प्रति समर्पित एवं नैष्ठिक भाव भूमि पर ही आस्था का भवन खड़ा है। संक्षेप में कहें तो कहेंगे आस्था श्रेष्ठ सांस्कृतिक चेतना है, परम्परा का विनम्र आचरण है। आस्था से समाज का स्व, संस्कृति की परम्परा, राष्ट्र की अस्मिता तथा गौरव शाली इतिहास का बोध जुड़ा होता है। चिन्तन का औदात्य, धर्मानुकूल आचरण तथा वैज्ञानिक सिद्धता इसकी प्रामाणिकता है। इसका सम्बंध अपनी मानसिकता से है। सांस्कृतिक परम्परा की स्वीकृति में इसका जन्म तथा धर्माचरण में इसकी अभिव्यक्ति होती है। इस तरह आस्था निरपेक्ष सत्ता नहीं है। एक सापेक्ष चिन्तन है। उदात्त की ओर अग्रसर होने की निरन्तर आकांक्षा ही इसकी समाज सापेक्षता है।

आस्था के मूल्य शाश्वत तो होते हैं, परन्तु इनकी उत्पत्ति मनुष्य के सोच की पराकाष्ठा है। इसी पराकाष्ठा के चलते परम्परा का निर्माण होता है। यही परम्परा संस्कृति बनती है। आस्था कोई मिथक नहीं है। काल सापेक्ष होकर काल बाह्य सत्य है। ऐसा जीवन मूल्य है, जो वर्तमान से ही नहीं, भूत भविष्य से भी संस्पर्शित होता है। भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, अनुदात्त से उदात्त की ओर अणु से विराट् की ओर अग्रसर करती आस्था श्रेष्ठ सांस्कृतिक चेतना है। यह परम्परा से चले आ रहे सांस्कृतिक मूल्यों की पहचान कराती है। साथ ही मूल्यों की अर्थवत्ता की अनवरत खोज में प्रवृत्त कराती है। इसका गंतव्य या मूल स्थान तो एक ही है परन्तु पहुंच के मार्ग अनेक हो सकते हैं। परमार्गों के अनेक होते भी वर्तमान के प्रति जिज्ञासा सतत् बनी रहती है।

लोग आस्था तथा आस्तिकता को एक ही मान लेते हैं। ऐसा नहीं है। आस्तिकता बाह्य की आन्तरिक स्वीकृति है जबकि आस्था आन्तरिक स्वीकृति की आचरणिक बाह्य अभिव्यक्ति है। आस्था इस तरह अधिक व्यापक है। यही जीवन मूल्य बन कर व्यक्ति के समग्र व्यवहार में प्रकट होती है।

आज हमारी आस्थाओं पर चारों ओर से आक्रमण हो रहा है। हमारी आध्यात्मिकता पर यह सीधा सीधा भौतिकवादी, भोगवादी, व्यक्तिवादी तथा कट्टरतावादी आक्रमण है। संस्कृति आज आहत है। हमारे मान बिन्दु नकारे जा रहे हैं। गौ माता का हमारी आंखों

के सामने वध हो रहा है। मां बहनों का शील हरण हो रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति में यदि हम सचेत नहीं होगे। अपने सामाजिक धार्मिक संरक्षा के कर्त्तव्य से विमुख रहेंगे, तो देश धर्म और संस्कृति को कौन बचायेगा? सत्ता सिंहासन पर विधर्मी आसीन हैं। वे जैसे अमानवीय अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें मौन बैठ देखना, अपनी मृत्यु स्वयं बुलाना है।

श्री मठ ने इसे राष्ट्रीय कर्त्तव्य मान रक्षा का दायित्व स्वीकारा है। श्री मठ ने लोक संग्रह की दृष्टि से प्रान्त प्रान्त में अपने सिद्ध सन्त भेजे हैं, उनके माध्यम से समाज पर जो रक्षाछत्र श्रीमठ ने ताना है उसे ताने रखने की आवश्यकता है। समाज को अपनी धर्म संस्कृति से जोड़े रखना है। यह कार्य आपको अपने कन्धों पर लेना है। समाज में धार्मिक सांस्कृतिक चेतना के साथ राष्ट्रीय चेतना का भाव भी 'श्रीमठ' को जगाना है। श्रीमठ ने लोक संग्रह के जितने प्रकल्प प्रारम्भ कर रखे हैं, उन्हें अनवरत रखने का काम आपका है। राज्य व्यवस्था इतनी क्षीण, दुर्बल तथा विभाजित है, वह इन कट्टरतावादियों, भोगवादियों का सामना करने में सर्वथा अक्षम है। उसने घुटने टेके हैं। ऐसी स्थिति में सन्त समाज का यह दायित्व हो जाता है कि वह भक्ति आन्दोलन खड़ा कर व्यक्तियों की मानसिकता को उनकी आस्थाओं से दृढ़ता से जोड़े रखे। उन्हें डिगने न दे। देश को समाज को तथा संस्कृति को यदि कोई बचा सकता है तो एक प्रबल भक्ति आन्दोलन ही बचा सकता है, जो इन दुष्ट आततायियों के किसी भय या प्रलोभन के आगे नहीं झुके। सन्त समाज धर्म पर अडिग रहा तो समाज के अडिग रहने में कोई शंका नहीं रहेगी। आप सब विवेकशील हैं। वर्षो से श्रीमठ और उसकी क्रान्तिकारी नीतियों तथा योजनाओं से जुड़े रहे है। आपसे और अधिक क्या कहूँ। जय सियाराम कह स्वामी जी ने प्रवचन समाप्त कर दिया।

आज जय के नारे नहीं लगे। एक गहन सोच में सब डूबे थे। आचार्य अनन्तानंद स्वामी जी को लिवा कर ले गये।

अष्ट दिवसीय अनुष्ठान का छठा दिन था। प्रवचन कक्ष में सिद्ध सन्त, विरक्त, त्यागी, ब्रह्मचारी तथा श्रद्धालु उसी निष्ठा एवं आस्था के साथ स्वामी जी को सुनने के लिए यथा स्थान बैठ गये थे। गुहा से गुंजित शंख ध्वनि ने सबमें उत्सुकता बढ़ा दी थी। सुरसुरानंद अपने मधुर कण्ठ से तन्मयता के साथ रामधुन करवा रहे थे। स्वामी जी के पाण्डाल में पग धरते हुए रामधुन बंद हो गई। सम्मान में सभी अपने स्थान पर खड़े हो गये। महिलाओं की संख्या निरन्तर बढ़ रही थी। पुरुषों की व्यवस्था सन्त भावानंद सुखानंद योगानंद आदि देख ही रहे थे।

आज के प्रवचन में स्वामी जी ने समरसता के सामायिक प्रसंग को अनेकानेक दृष्टिकोणों से विवेचित करते हुए प्रस्तुत किया। बोले- 'ईश्वर के प्रति आस्था का भाव हम आज उनमें अधिक बढ़ा देख रहे हैं, जिन्हें उच्च वर्ण के महानुभाव अछूत, अस्पृश्य तथा नगण्य मानते हैं। ये ही लोग धर्म पर मर मिटने का गहराभाव लिये हैं। ये ही सांस्कृतिक व्रतों, पर्वो, त्यौहारों को मनाने में आगे दिखते हैं। आप जानते हैं श्री मठ ने अपना एकान्तिक रूप छोड़ कर लोकहित में लोक संग्रही स्वरूप ग्रहण किया है। लोक मंगल का जो दायित्व श्री मठ ने निभाया है, वह अपने आप में एक इतिहास, एक युग बन गया है। इन छोटी कही जाने वाली जातियों में भी अपने अपने सन्त हैं। उन्हें ज्ञानवान गुरुओं की आवश्यकता है। आज स्थिति यह है कि उच्च वर्ग के पंडित विप्र, द्विज तथा पुरोहित इनके गुरु वन मार्ग दर्शन तक करने को प्रस्तुत नहीं है। इन्हें अपने व्यक्तित्व निर्माण की, घर निर्माण की चिन्ता है। समाज की राष्ट्र की चिन्ता नहीं है। अपने श्रेष्ठता के दर्प में अन्धे हो रहे हैं। उन्हें न तो जन्मभूमि की मिट्टी से प्यार है न इन वंचित शोषित, पीड़ित समाज से ही। हमें जाति-पांति के थोथे भेदों से ऊपर उठ मानवीयं दृष्टि अपनाते हुए, सबको गले लगाना है। श्रीमठ ने पुरानी रूढ़ियों का परित्याग करते हुए महिलाओं को भी विरक्त संत बनाया है। दुर्बल मानसिकता वाले तो इनकी छाया तक से दूर भागते रहे हैं। इन्हें माया मान ठुकराते रहे हैं। श्रीमठ तो हरिभजन का केन्द्र है। यह न तो जातिवादी है न व्यक्तिवादी। भक्ति के द्वार सबके लिए खुले हैं। कर्म कोई अपवित्र नहीं होता। यह विश्व तो कर्म प्रधान है। संसार कर्म की नींव पर ही खड़ा है। संत होने का अर्थ कर्म विमुख होना नहीं है। आप अपने कर्म में ही हरि के दर्शन कीजिये। हर काम हरि का ही काम है। हरि के लिए ही हम कर रहे हैं। हरि की आज्ञा से ही कर रहे हैं। आपकी मुक्ति में कर्म बाधा नहीं है। यदि आपने अपने काम को प्रभु समर्पित मान कर किया तो आपके काम को प्रभु स्वयं आकर पूरा करेगा। हमारे सिद्ध सन्त इस सत्य से परिचित हैं। प्रभु आपके हाथों से बहुत बड़े-बड़े काम करवाना चाह रहा है। सन्त ही इस देश के रक्षक बनेंगे। प्रवृत्ति मूला भक्ति ही भागवत धर्म है। लोक संग्रह आज का युगधर्म है। भक्ति के आधार पर समाज की धर्म निष्ठ संगठित शक्ति खड़ी करने का दायित्व विभुने आपको दिया है। सन्त ही देश की डूबती इस नाव को संस्कृति के तट पर लगायेंगे। भक्ति ही इस डूबती नाव की पतवार बनेगी। आत्म साक्षात्कार की जितनी सुगम विधि इस शरीर ने दी है, विश्व के किसी और धर्म में आपको नहीं मिलेगी। इसके लिए न तो आपको हिमालय की गुफा में जाने की आवश्यकता है न किसी मंहगे कर्मकाण्ड की। काम करते चलो,

नाम रटते चलो। काम से निपटते ही कहीं भी एकान्त में उस चिन्मय के ध्यान में बैठ जाये। उसी मे खो जायें। चेतना की उर्ध्व यात्रा आपको चौथे द्वार तक सीधे पहुँचा देगी। किसी उपकरण, किसी क्रिया विशेष को कोई आवश्यकता नही है। बस एक ही आवश्यकता है, गुरु रूप में किसी पहुंचे हुए संत को स्वीकारने की। यह कह स्वामी जी ने अपना प्रवचन समाप्त कर दिया। सियाराम कह मौन हो गये। आज के उद्बोधन ने सभी श्रोताओं को झकझोर, मुंदी आंखें खोल दी। एक एक शब्द गले उतर हृदय में बस गया। स्वामी जी को आचार्य अनन्तानद उठ सादर गुहा में ले गये।

सातवें दिन स्वामी जी ने आते ही गुरु महिमा का अधूरा प्रसंग ले लिया। कहा गुरु शब्द का अर्थ है अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला और ले जाने में वही समर्थ एवं सक्षम है, जो या तो स्वयं प्रकाश मय हो या जिसने प्रकाश को देख व जान लिया हो। साथ ही जो प्रकाश के पथ से पूरी तरह परिचित हो। तम ज्योति का नकार है। सारा विश्व उस एकमेव सच्चिदानंद स्वरूप परम ज्योति से प्रकाशित है। सूर्य चन्द्रादि उसी की ज्योति से भासमान है। अग्नि उसी का स्वरूप है। जहाँ ज्योति नहीं है, ज्योति पर विचार नही है, वहाँ तम होगा ही। जहाँ उस परमात्मा से एकाकार होने, आत्म साक्षात्कार कर दिव्यता प्राप्त करने का चिन्तन नहीं है वहाँ अन्धकार ही मानिये। चार्वाकीय बन जीवन जीना है। भोग वाद में पड़ जीवन नष्ट करना है। षड् रिपुओं को गले लगाना है। इससे परलोक तो नष्ट होता ही है, लोक में भी हिंसा, अराजकता, विद्वेष, द्वन्द्व कलह कोलाहल को जन्म देना है। अपहरण, बलात्कार, चोरी, डकैती, तस्करी, आतंक को पनपाना है। समाज की समृद्धि के लिए शांति आवश्यक है। वह धर्म एवं नीति के पवित्र सिद्धान्तों के अनुपालन से ही सम्भव है। मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा से ही हो सकती है। आत्मीय प्रेम इसकी नींव है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, तथा ब्रह्मचर्य शांति भवन के स्तम्भ हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर अमानवीय हैं, दुर्गुण हैं। शांत जीवन के शत्रु हैं। शुद्ध बुद्ध शान्त जीवन के लिए विषवत हैं। गुरु बनने वालों को इन अनीतिकर कर्मो से दूर रहना है। एक आदर्श जीवन जीना है। जिसका जीवन स्वयं आदर्श नहीं है वह दूसरों का जीवन कैसे आदर्श बना सकता है। गुरु शब्द का प्रयोग प्रारम्भ में अध्यात्म पुरुषों के लिए ही होता था। कालान्तर में गुरु शब्द शिक्षकों अध्यापको, प्राध्यापकों के लिए रूढ़ हो गया। शायद इसके पीछे गुरु शब्द की विशिष्टता वरिष्ठता तथा महत्ता भले ही प्रमाण रही है। इस प्रयोग से गुरु शब्द उपहास का कारण बना है। कलंकित हुआ है। अपमानित हुआ है। उसके पीछे जो श्रद्धा भक्ति थी, जो गौरव गरिमा थी, उसमें कमी आई है।

समाज वास्तविक गुरुओं की तीव्रता से प्रतीक्षा कर रहा है। आप में से अनेकों में वास्तविक गुरु बनने की क्षमता अर्जित कर ली है। आपको वेदान्त ज्ञान का तलस्पर्शी विद्वान् बन ताल ठोक कर खड़ा होना है। आपको याद है न वामाचारियों, कापालिकों तथा अवधूतों का झुण्ड, अट्टहास करता हुआ, सुन्दरियों को आगे कर श्रीमठ में नहीं घुस आया था। ऐसों से निपटने की यौगिक शक्ति भी गुरु में होना चाहिए। ऐसी स्थितियों में स्वयं को ज्ञान से विज्ञान से, दुष्टों को पराभूत करने वाली प्रक्रियाओं से, समृद्ध एवं सिद्ध करना है। आने वाला भविष्य बड़ा कुटिल, कठोर तथा कलुष भरा है। वाक् शूरों से निपट पाना सरल नहीं होगा। आप देख रहे हैं। कितने प्रकाण्ड पंडित कहलाने वाले, कट्टर धर्मावलम्बी कहे जाने वाले, शास्त्रों के शब्द जाल में उलझे अपने शंका समाधान के लिए श्रीमठ में नही आते रहे हैं। जब तक आप स्वयं शास्त्र निष्णात नहीं होंगे, अध्यात्म के गूढ़ तत्वों के अधिकारी ज्ञाता नहीं होंगे, तब कैसे आप इन वाक् विदूषकों पर अपना गुरुत्व कैसे स्थापित कर सकते हैं?

प्रभु आपको सद्बुद्धि दे। परम शक्ति दे स्वस्थ जीवन दे। दीर्घायु दे। याद रहे आप को आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक दायित्व संभालते हुए, समाज जीवन को नेतृत्व देना है। इसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप श्रीमठ से जुड़े हैं। श्रीमठ ने आपकी शक्तियों को पहचान उचित समादर दिया है। श्रीमठ आपको औरों से भिन्न लगा होगा। यहां न कोई आडम्बर है न कोई वाक् छल। शुद्ध हृदय का वास है। साथ ही अपनी बात विश्वास एवं निर्भयता से कहने का साहस है। यहाँ की भक्ति में सच्चा प्रभु प्रेम है, प्रभु मिलन की उत्कट आकांक्षा है तथा नाम की जप साधना है। उसके परिणाम आपने देखे हैं। विश्वास के साथ साधना में जुटें। अपना भविष्य सुधारें समाज का भविष्य बनाये। सच्चे गुरु बने। आपसे मेरा यही कहना है। आचार्य अनन्तानंद स्वामी जी को गुहा में ले गये।

श्रोता एक दूसरे को चकित आँखों से देख रहे थे। बोल नहीं रहे थे। आँखों आँखों से बोल रही थीं। स्वामी जी ने साधना का तात्त्विक निचोड़ रख, साधक को अपना भविष्य बनाने तथा कुशलता से समाज जीवन जीने का संदेश दे दिया था। सब अपने भीतर बैठ कर्त्तव्य का स्वयं बोध करने लगे थे। एक तुष्टि का भाव सबके आनन पर झलक रहा था, जैसे कुछ और सुनने को शेष नहीं हो।

अनुष्ठान का आज अंतिम दिन था। सभी आयोजन विधिवत् हुए। आज यज्ञ का विशेष आयोजन होना था। उसके लिए पृथक से आंगन में व्यवस्था की गई थी। नगर के प्रसिद्ध याज्ञिक आमंत्रित किये गये थे। सुगन्धित हविष्यात्र के षड अक्षर मंत्र के

साथ आहुतियाँ दी गई। मंत्र ध्वनि वातावरण में दिव्यता तथा पवित्रता का संचार कर रही थी। विशेषता यही रही कि सभी कार्यक्रमों में स्वामी जी आशीर्वाद के लिए स्वयं उपस्थित हुए। जिस समय सभी मंत्रोच्चार में डूबे थे, स्वामी जी चुपचाप पधारे। वे अपना दाहिना करतल आशीर्वाद की मुद्रा में याज्ञिकों की ओर उठा खड़े हो गये। करतल से निकल चेतना सम्पन्न आध्यात्मिक ऊर्जा कर्ता साध में समाती रही। यज्ञ की अग्नि शिखाओं में गुरुदेव खड़े दिखे। इस स्थिति को देख सब अपने को धन्य मान रहे थे। यज्ञ में आज जिस अलौकिक आनंद की उपलब्धि हुई, उस संदर्भ को सोच, साधकों को हृदय में बौद्धिक स्तर पर यह आभास होने लगा कि गुरुदेव ही ब्रह्म हैं क्योंकि वह तो रामावतार ही हैं। इस विश्वास ने समर्पण का भाव नस नस में दौड़ा दिया।

अपराह्न में प्रवचन कक्ष में यथा समय स्वामी जी पधारे। इस बार विशेषता यह थी, कि सभी वरिष्ठ सन्त स्वामी जी के साथ उनके पीछे-पीछे चलते हुए आये। सन्त पद्मावती भी उनमें थीं। सभी सन्तों की ग्रीवा झुकी हुई थी। सबके मुखों पर एक उदासी खेल रही थी। आचार्य अनन्तानंद अवश्य यथावत् स्वामी जी के आगे आगे चल रहे थे। किन्तु उदासी उनके मुख पर भी झलक रही थी। स्वामी जी सहज मुद्रा में थे। उनके मुख पर न राग था न द्वेष था। न हर्ष था न विषाद था। सन्त सुरसुरानंद ने जैसे ही स्वामी जी को आते देखा, रामधुन बंद कर, स्वयं मंच के नीचे आ खड़े हो गये। स्वामी जी ने मंच पर चढ़ जैसे ही आशीर्वादी मुद्रा में खड़े हो दर्शन दिये एक अकल्पित चेतना साधकों की देह में व्याप्त हो गई। प्रातः यज्ञ के समय देखी छवि ही आंखों के सामने मूर्त हो गई। जब तक स्वामी जी नहीं विराजे, सामने खड़े साधक भक्त प्रातः एवं अभी देखी छवि की एकता अनुभव कर भाव विह्वल हो आनंद सिंधु में डूबे रहे। राम शब्द का स्वामी जी ने जैसे ही उच्चारण किया, साधक मेरुदण्ड सीधा कर दत्तचित्त भाव से प्रवचन सुनने को व्यग्र हो गये। स्वामी जी ने कहा-

ब्रह्म सर्वथा निर्गुण है। वह माया संवलित नहीं है। बह्म में तीन तत्त्व सत् चित् आनंद सर्वदा वर्तमान रहते हैं। तात्त्विक दृष्टि से जीव में दो तत्त्व ही है सत् और चित्। जीव उस आनंद रूप को प्राप्त करने हेतु सतत् व्याकुल रहता है। लेकिन माया अपने आकर्षण से इन्द्रियों को वशीभूत कर मन को अन्तर्मुखी होने ही नहीं देती। आन्तरिक आनन्द की ओर पूर्णता की ओर, मन को देखने ही नहीं देती। मन पारमार्थिक नित्य पदार्थ नहीं है अतः भौतिक है। इसलिए इसकी अप्रतिहत बाह्य गति को उर्ध्वमुखी अन्तर्मुखी बनाना ही ध्यान साधना है। इसीलिए सत्संग हैं। भजन कीर्त्तन है।

यह सम्पूर्ण प्रकृति आण्विक है। प्रत्येक अणु परमाणु त्रिगुणात्मक है। जिन्हें सत् रज एवं तम नाम से शास्त्रों ने व्याख्यायित किया है। परमात्म शक्ति के संस्पर्श से प्रकृति जब सचेतन होता है, तब वास्तविक रूप में अणु के ये त्रिगुण ही सक्रिय हो घूर्णन करने लगते हैं। यह ही उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के कारण हैं। इसी आण्विक त्रिगुणात्मक शक्ति को माया कहा गया है। यह नितान्त भौतिक है और भौतिक मन को आकर्षण की रज्जु से उसे बांधे रखने में समर्थ है। साधना संदर्भ में जब गुणातीत या मायातीत होने की बात कही जाती है, तब इसी आणविक त्रिगुणत्मिका माया से मुक्त होने के लिए कही जाती है। इससे मुक्ति मिले, तभी तो जीव की परमात्मा से मिलने की ललक सार्थक हो। वैराग्य इसलिए परमार्थ पथ की पहली सीढ़ी है। सत्संग इसीलिए एक आवश्यक उपादान तत्त्व है। भजन कीर्त्तन भौतिक आकर्षण को भुलाने या मारने की साधन इसीलिए माने गये हैं। गुरु इसीलिए आवश्यक है। माया उसकी वशवर्तिनी है। उसके सामने पानी भरती है। गुरु मंत्र गुरु की अपराजेय शक्ति का प्रवाह ही है, जो साधक में संचरण कर मन की बाह्य गति को अन्तर्मुखी करने में सहयोग करती है। इसीलिए गुरु की महिमा है। उसे परमात्मा से मिलाने की शक्ति वाला ही नही स्वयं परमात्म रूप माना जाता है। गुरु परमार्थ पथ की दूसरी सीढी है। शेष रहती है आपकी सुरति। विरहिणी का सा अकुलाता प्रेम। मिलन की तीव्र इच्छा तथा निरालस सचेतन साधना जिसमें जितनी लगन, टीस, प्रेम तथा निर्व्याज सक्रियता होगी, वह उतना ही जल्दी उसे प्राप्त कर सकेगा। नर से नारायण बन सकेगा। शब्द को ब्रह्म कहा जाता है। मंत्र में प्रयुक्त शब्द, शब्द नहीं साक्षात् ब्रह्म रूप से। शब्द अमर है। शब्द उर्ध्व मुखी है। सिद्ध शब्द कारक बन जाता है। इसलिए मंत्र में प्रयुक्त शब्द का कभी निरादर न करे। कभी उसकी असीम एवं अपरिमित शक्ति पर अविश्वास मन में न जगायें।

आपने वैराग्य का पथ स्वीकारा है। परमार्थ प्राप्ति का निश्चय धारण किया है। मंत्र शक्ति प्राप्त की है। आप में से बहुतों ने उस लक्ष्य को पा लिया है। कुछ प्राप्त करने वाले हैं। मेरा आपसे यही कहना है। उस ऊँचाई का सम्मान करें। अपने पैरों को कटा समाज को पंगु न बनाये। इसी में आपका और समाज का कल्याण है। श्रीमठ का सम्मान है।

कल श्री रामनवमी है। मैं अयोध्या के लिए प्रस्थान करूंगा। अकेला ही जाऊँगा। आप सब अपने अपने अपने स्थानों पर पधार अपने मंगल से लोक का मंगल करते रहे।

उस चिद् धाम में जा कोई लौटता नहीं। कदाचित मैं वहां से नहीं लौटूँ, तो आप विचलित न हों। अपने सारे प्रकल्पों, अपनी सारी गतिविधियों तथा अपनी साधनाओं को निरन्तर आगे बढ़ाते रहें। आज देश धर्म की आपसे यही मांग है।

मेरी त्रुटियाँ क्षमा करें। जै सियाराम, जै सियाराम, जै सियाराम।

जैसे ही स्वामी जी ने प्रवचन पूरा किया, स्वामी जी के भौतिक जगत से विदा की कल्पना ने सबकी आंखें सजल करदीं। सबके हृदय भर आये। एक दूसरे को खुली आंखों से देखने तक का साहस जाता रहा। सर्वत्र एक गहन मौन एक गहन शून्य एक गहन शांति व्याप गई।

आचार्य अनन्तानन्द स्वामी को लिवा ले गये। स्वामी जी के मुख पर वही सहजता विराज रही थी।

सन्ध्या से ही भंडारे का प्रसाद वितरण प्रारम्भ हो गया था। आचार्य अनन्तानंद के साथ स्वामी जी वहां भी पधार आये। स्वामी जी एक आसन पर बैठ अपने हाथों से प्रसाद बाँटने लगे। सबमें प्रसाद का दोना लेने से अधिक चरण स्पर्श कर आशीर्वाद का वरद हस्त पाने की लालसा अधिक थी। अनायास मुख से उच्चारित होते जयजय कार से सारा परिवेश गूंज रहा था।

स्वामी जी ने तीनों कार्यक्रमों में उपस्थित हो, अपनी दिव्य चेतना का प्रसाद बांटा, उससे सभी चकित थे। स्वामी जी के मुख पर न तो थकान थी, न उदासी की क्षीण रेखा।

स्वामी जी ने भंडारे से जा सन्त सुरसुरानंद के भजन कीर्तन का भी जीभरकर आनंद लिया। आपने अपनी उपस्थिति से सभी को गहराई तक प्रभावित किया, सन्तुष्ट किया।

आज संवत् 1515 की चैत्र सुदी नवमी सोमवार का प्रतीक्षित दिन था। स्वामी जी के कल के प्रवचन के बाद से ही शिष्य गण सशंकित तो थे ही, फिर भी चिर विदा किस रूप में हो, इस करुण एवं मार्मिक दृश्य के खुली आंखों साक्षी बनने, तथा अंतिम प्रणाम श्री चरणों में निवेदन करने के भाव से, सारे संत, शिष्य, साधक बड़े तड़के से ही श्री मठ में आ एकत्र हो गये थे। सबकी दृष्टि गुहा पर टिकी थी। सब हृदय में अंतिम दर्शनों की प्रबल इच्छा लिए थे। जैसे ही आचार्य अनन्तानंद वरिष्ठ अन्य सन्तों के साथ प्रांगण में आये, सब उनके गुहा प्रवेश की प्रतीक्षा करने लगे।

आचार्य अनन्तानंद तो सारी सम्भावित स्थिति से अवगत थे ही, श्रद्धालुओं की

सन्तुष्टि के लिए राम शब्द का उच्चारण करते हुए पर्दा हटा जैसे ही गुहा में प्रवेश किया, वहाँ स्वामी जी नहीं थें उनका वह दक्षिणावर्त शंख नहीं था। शेष सभी सामग्री, साहित्य, वस्तुएं यथा स्थान यथावत् थे। उनकी चरण पादुकाएं तक यथा स्थान रखी थी। आचार्य अनन्तानंद दाहिने हाथ को 'कुछ नही है' की मुद्रा में घुमाते हुए जैसे ही बाहर आये, श्रद्धालुओं ने उन्हें घेर लिया। उन्होंने इतना ही कहा- 'स्वामी जी सशरीर निज धाम पधार गये।'

जैसे ही यह संवाद नगर में फैला, काशी श्रीमठ की ओर उमड़ पड़ी आंसुओं की झड़ी कपोल गीले कर रही थी। पलकों एवं बरौनियों में उलझे अश्रु पौधे नहीं सूख रहे थे। सर्वत्र हाहाकार मचा था। स्थित प्रज्ञ, ज्ञानी, मर्मज्ञ सन्त तक इस वियोग दुःख को सह नहीं पा रहे थे। समत्व सिहर रहा था। स्थिति भी विचलित हो रही थी। करुणा अश्रु बन बह उठी थी। वेदना समुद्र वहाँ हिलोरे मारने लगा था। किसी को भी कुछ नहीं सूझ रहा था। चारों ओर थी, अपार भीड़, अजस्त्र बहती अश्रु धारा, हृदय हिलाती हाहाकारिता। तभी आकाश से शंख ध्वनि हुई। जिसे सुन, सबके मनों से मोह का आवरण हट गया। बुद्धि निर्मल हो गई। शोक के मेघ छंट गये। अश्रु की बर्षा रुक गई। शोक स्वतः सो गया।

आचार्य अनन्तानंद ने वरिष्ठ सन्त मंडली के परामर्शानुसार स्वामी जी की पादुकाओं को ले पंचगंगा के लिए घाट प्रस्थान किया। उनके पीछे बढ़ी नदी सी अपार भीड़ चल रही थी। सिद्ध सन्त थे। नगर के महा पंडित, महा महन्त थे, श्रद्धालु थे, सेवक थे, ब्रह्मचारी थे, विरक्त थे, गृहस्थ थे, पुरुष थे, महिलाएं थीं, आवाल वृद्ध थे। उस प्रमाण के साक्षी बनने को सब समुत्सुक थे। रोके नहीं रुक रहे थे।

आचार्य अनन्तानंद ने जैसे ही उन चरण पादुकाओं को अंतिम सीढी पर उतर गंगा की पवित्र धारा में प्रवाहित करना चाहा, वे काष्ट पादुकाएं प्रस्तर हो गई इस चमत्कार को जैसे ही आचार्य अनन्तानंद ने अनुभव किया, उनका गंगा प्रवाहन रोक वह सहसा उन पवित्र गंगा जल से प्रक्षालित प्रस्तर पादुकाओं को लेकर खड़े हो गये तथा आगे किये दोनों हाथों से थामें उन्होंने समाज के सम्मुख कर दिया। इस चमत्कार से चमत्कृत उपस्थित जन समाजने 'स्वामी रामानंद की जय' 'स्वामी रामनंद अमर रहें' जैसे प्रशंसा सूचक घोषों से धरती से लेकर आकाश तक गुंजा दिया। शोक का वातावरण हर्ष में बदल गया। इस परिवर्तन को गुरुदेव की इच्छा मान, स्नानादि के पश्चात् आचार्य अनन्तानंद उन प्रस्तर पादुकाओं को लिए श्रीमठ लौट आये।

सभी के परामर्श के पश्चात् वे प्रस्तर पादुकाएँ दर्शनों के लिए, प्रांगण में रेशमी चादर ढंके काष्ठासन पर रखी गई। फूल मालाओं से काष्ठासन पूरी तरह ढंका था।

वरिष्ठ सन्त आसन के आस पास बैठ गये। सन्त सुरसुरानंद रामधुन से वातावरण को सहज बनाने लगे। उपस्थित जन समाज ने एक एक कर अपना श्रद्धा अर्ध्य समर्पित किया। ऐसा करुण दृश्य था, जिसे देख करुणा को भी करुणा हो आये।

श्रीमठ की विशिष्टाद्वैती परम्परा का पूरी तरह पालन करते हुए सभी क्रियाएं यथावत् सम्पन्न होती रहीं।

यथा समय समारोह पूर्वक पद पीठ की स्थापना गुहा में कर वे चरण पादुकाएं उस पर विराजित की गईं। विशाल भंडारा हुआ। मार्गों पर पग धरने तक को स्थान शेष न था। सम्पूर्ण देश वहां उपस्थित हो श्री चरणो में अपनी श्रद्धा, निष्ठा तथा प्रीति समर्पित किया। अविस्मरणीय दृश्य था वह। बाहर से ऐसे ऐसे संत सिद्ध, पधारे थे, जिनके दर्शन तक दुर्लभ हैं।

सभी सन्तों ने आचार्य अनन्तानंद को सम्प्रदाय की चादर उढ़ा, श्रीमठ के उत्तराधिकारी महन्त के रूप में प्रतिष्ठित किया।

●



डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'

एम.ए. (हिन्दी), एल.एल.बी. पी-एच.डी., साहित्यरत्न

जन्म : ८ अप्रैल, १९२९ ई. ग्राम-छजावा, तहसील-अटरू, जिला-बाराँ (राजस्थान)

प्रकाशित साहित्य–काव्य : आञ्जनेय (पुरस्कृत महाकाव्य), कार्तिकेय (खण्डकाव्य), उत्तर हल्दी घाटी, एक अधूरा अश्वमेध, शब्द तक उतरी हुई अनुभूति (गजल संग्रह), राम की बहुरिया (गीतिकाव्य), श्वेत शिखरों पर धूप बिम्ब (कविता संग्रह), इन्द्रधनुष का आठवाँ रंग, आन्तरिका, श्रमधरा, मेरे भारत मेरे देश, क्षमा नहीं करोगी शकुन्तला, गीतायनी, धूप छाँही क्षण, त्रिपादिका (हाइकु संग्रह), एक और वामन।

कथा संग्रह : बड़ी मछली, स्वप्न और सत्य, उलझन, एक और क्रान्ति।

नाटक : आदि सम्राट, सिंहासन, छत्रपति शिवाजी, राग से विराग तक।

एकांकी संग्रह : सृष्टि का सगुण पक्ष, एकांकिनी।

शोध समीक्षा निबन्ध : राजस्थानी काव्य में शृंगार भावना, राजस्थानी काव्य साधना–अब और तब, गीता अनुशीलन, मानस मनीषा, विचारों के अमलतास, साहित्य संस्कृति और युग बोध, राजस्थान के हिन्दी महाकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, संस्कृति का वागर्थ, हिन्दी भाषा और महाकाव्य–एक अध्ययन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य, वर्तमान साहित्य और समाज निर्माण की भूमिका।

सम्मान एवं पुरस्कार : राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर का सर्वोच्च मीरा पुरस्कार आञ्जनेय महाकाव्य पर (सन् १९८०); उ.प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ का साहित्य भूषण सम्मान पुरस्कार (सन् १९९७); सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरीनाम में विश्व हिन्दी सम्मान पुरस्कार (सन् २००३); छोटी खाटू (राजस्थान) हिन्दी पुस्तकालय द्वारा; पण्डित दीनदयाल उपाध्याय साहित्य पुरस्कार (सन् १९९२); राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर द्वारा विशिष्ट साहित्य सम्मान पुरस्कार (सन् १९९५)।

सम्पर्क

२२८ बी, विजय भवन, सिविल लाइन्स, कोटा-३२४००१

मोबाइल : ९४६०५७०८८३, दूरभाष : ०७४४-२३२४६७७